गांधी की कहानी

•

लुई फिशर

सत्साहित्य
अल्पमोली
संस्करण

•

मूल्य : डेढ़ रुपया

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

अल्पमोली संस्करण

गांधी की कहानी

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार द्वारा लिखित

लेखक
लुई फिशर

अनुवादक
चंद्रगुप्त वार्ष्णेय

सत्साहित्य प्रकाशन

१९५९

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली-१

दूसरी बार : १९५९
अल्पमोली-संस्करण
मूल्य : डेढ़ रुपया

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

गांधीजी के जीवन-काल में तथा उनके उत्सर्ग के बाद भी भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में उनका और उनसे संबंधित बहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है। ऐसी पुस्तकों में, जो उनके निधन के बाद प्रकाशित हुई हैं, सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर की 'दि लाइफ़ ऑफ़ महात्मा गांधी' अपने ढंग की एक ही है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका हिंदी-रूपांतर है।

गांधीजी का जीवन अपने परिवार या देश तक ही सीमित नहीं था। वह सारी मानवता के लिए था। इसलिए यह पुस्तक केवल गांधीजी की कहानी नहीं है, बल्कि भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम और सारी मानवता के प्रति उनकी भावनाओं और कार्यों का अपने ढंग का इतिहास भी है।

लुई फिशर सिद्धहस्त पत्रकार हैं। सारी सामग्री को उन्होंने इस तरह से प्रस्तुत किया है कि पुस्तक पढ़ने में उपन्यास का-सा आनंद आता है। कुछ प्रसंग तो बड़े ही सजीव, मार्मिक और नाटकीय हैं। एक विदेशी की कलम से अंकित राष्ट्रपिता की जीवनी होने के कारण यह हमारे लिए और भी अधिक दिलचस्पी की चीज़ बन गई है।

ज्यादा-से-ज्यादा पाठकों के हाथ में पहुंचाने के लिए इस पुस्तक का 'अल्पमोली संस्करण' प्रकाशित किया जा रहा है। अधिक मूल्यवाले संस्करण का दाम ४) है, जबकि इसका केवल १·५० रुपया है। पहले संस्करण की समूची सामग्री इसमें मौजूद है।

हमें विश्वास है कि अब यह पुस्तक अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचेगी और इसके अध्ययन से पाठक लाभ उठायेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

(विशेष रूप से हिंदी-संस्करण के लिए)

दूसरे देशों की अक्सर यात्रा करते हुए मैं जितना अधिक इस दुनिया को देखता हूं, उतना ही मेरा विश्वास गहरा होता जाता है कि अमरीका, यूरोप, एशिया (जिसमें भारत भी शामिल है) तथा अन्य देशों का मार्ग-दर्शन, आध्यात्मिक अवलंबन तथा साहसपूर्ण कार्यों की मिसालों के लिए गांधीजी की ओर मुड़ने की आवश्यकता है। उनका जीवन मानवता की बहुत-सी समस्याओं का हल उपस्थित करता है, बशर्ते कि हम केवल वही करें, जो उन्होंने किया था।

३०३ लेक्सिंगटन एवेन्यू,
न्यूयार्क
१५ अगस्त, १९५४।

लुइस फ़िशर

विषय-सूची

तीसरा भाग

गांधी की कहानी

पहला भाग

अंत और प्रारंभ

: १ :

प्रार्थना से पहले मृत्यु

शाम को साढ़े चार बजे आभा भोजन लेकर आई। यही उनका अंतिम भोजन होनेवाला था। इस भोजन में बकरी का दूध, उबली हुई और कच्ची भाजियां, नारंगियां, ग्वारपाठे का रस मिला हुआ अदरक, नीबू और घी का काढ़ा—ये चीजें थीं। नई दिल्ली में बिड़ला भवन के पिछवाड़ेवाले भाग में जमीन पर बैठे हुए गांधीजी खाते जाते थे और स्वतंत्र भारत की नई सरकार के उप-प्रधान-मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल से बातें करते जाते थे। सरदार पटेल की पुत्री और उनकी सचिव मणिबहन भी वहां मौजूद थीं। बातचीत महत्वपूर्ण थी। पटेल और प्रधान-मंत्री नेहरू के बीच मतभेद की अफवाहें थीं। अन्य समस्याओं की तरह यह समस्या भी महात्माजी के पल्ले डाल दी गई थी।

गांधीजी, सरदार पटेल और मणिबहन के पास अकेली बैठी आभा बीच में बोलने में सकुचा रही थी। परंतु समय-पालन के बारे में गांधीजी का आग्रह वह जानती थी। इसलिए उसने आखिर महात्माजी की घड़ी उठा ली और उन्हें दिखाई। गांधीजी बोले—"मुझे अब जाना होगा।" यह कहते हुए वह उठे, पास के गुसलखाने में गये और फिर भवन के बाईं ओर बड़े पार्क में प्रार्थना-स्थल की ओर चल पड़े। महात्माजी के चचेरे भाई के पोते कनु गांधी की पत्नी आभा और दूसरे चचेरे भाई की पोती मनु उनके साथ चलीं। उन्होंने इनके कंधों पर अपने बाजुओं को सहारा दिया। वह इन्हें अपनी 'टहलने की छड़ियां' कहा करते थे।

प्रार्थना-स्थान के रास्ते में लाल पत्थर के खंभोंवाली लंबी गैलरी थी। इसमें से होकर प्रति दिन दो मिनट का रास्ता पार करते समय गांधीजी सुस्ताते और मजाक करते थे। इस समय उन्होंने गाजर के रस की चर्चा की, जो सुबह आभा ने उन्हें पिलाया था।

उन्होंने कहा—"अच्छा, तू मुझे जानवरों का खाना देती है !" और हँस पड़े।

आभा बोली—"बा इसे घोड़ों का चारा कहा करती थीं।"

गांधीजी ने विनोद करते हुए कहा—"क्या मेरे लिए यह शान की बात नहीं है कि जिसे कोई नहीं चाहता, उसे मैं पसंद करता हूं ?"

आभा कहने लगी—"बापू, आपकी घड़ी अपनेको बहुत उपेक्षित अनुभव कर रही होगी। आज तो आप उसकी तरफ निगाह ही नहीं डालते थे।"

गांधीजी ने तुरंत ताना दिया—"जब तुम मेरी समय-पालिका हो, तो मुझे वैसा करने की जरूरत ही क्या है ?"

मनु बोली—"लेकिन आप तो समयपालिकाओं को भी नहीं देखते।" गांधीजी फिर हँसने लगे।

अब वह प्रार्थना-स्थान के पासवाली दूब पर चल रहे थे। नित्य की सायंकालीन प्रार्थना के लिए करीब पांच सौ की भीड़ जमा थी। गांधीजी ने बड़बड़ाते हुए कहा—"मुझे दस मिनट की देर हो गई। देरी से मुझे नफरत है। मुझे यहां ठीक पांच पर पंहुंच जाना चाहिए था।"

प्रार्थना-स्थान की भूमि पर पहुंचनेवाली पांच छोटी सीढ़ियां उन्होंने जल्दी से पार कर लीं। प्रार्थना के समय जिस चौकी पर वह बैठते थे, वह अब कुछ ही गज दूर रह गई थी। अधिकतर लोग उठ खड़े हुए। जो नजदीक थे ये उनके चरणों में झुक गये। गांधीजी ने आभा और मनु के कंधों से अपने बाजू हटा लिये और दोनों हाथ जोड़ लिये।

ठीक इसी समय एक व्यक्ति भीड़ को चीरकर बीच के रास्ते में निकल आया ऐसा जान पड़ा कि वह झुककर भक्त की तरह प्रणाम करना चाहता है, परंतु चूंकि देर हो रही थी, इसलिए मनु ने उसे रोकना चाहा और उसका हाथ पकड़ लिया। उसने आभा को ऐसा धक्का दिया कि वह गिर पड़ी और गांधीजी से करीब दो फुट के फासले पर खड़े होकर उसने छोटी-सी पिस्तौल से तीन गोलियां दाग दीं।

ज्योंही पहली गोली लगी, गांधीजी का उठा हुआ पांव नीचे गिर गया, परंतु वह खड़े रहे। दूसरी गोली लगी, गांधीजी के सफेद वस्त्रों पर खून के धब्बे चमकने लगे। उनका चेहरा सफेद पड़ गया। उनके जुड़े हुए हाथ धीरे-धीरे नीचे खिसक गये और एक बाजू कुछ क्षण के लिए आभा की गरदन पर टिक गया।

गांधीजी के मुंह से शब्द निकले—"हे राम!" तीसरी गोली की आवाज हुई।

शिथिल शरीर धरती पर गिर गया। उनकी ऐनक जमीन पर जा पड़ी। चप्पल उनके पांवों से उतर गये।

आभा और मनु ने गांधीजी का सिर हाथों पर उठा लिया। कोमल हाथों ने उन्हें धरती से उठाया और फिर उन्हें बिड़ला भवन में उनके कमरे में ले गये। आंखें अधखुली थीं और शरीर में जीवन के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। सरदार पटेल, जो अभी महात्माजी को छोड़कर गये थे, उनके पास लौट आये। उन्होंने नाड़ी देखी और उन्हें लगा कि वह बहुत मंद गति से चलती हुई मालूम दे रही है। किसीने हड़बड़ाहट के साथ दवाइयों की पेटी में ऐड्रिनेलीन तलाश की, लेकिन वह मिली नहीं।

एक तत्पर दर्शक डा० द्वारकाप्रसाद भार्गव को ले आये। वह गोली लगने के दस मिनट बाद ही आ गये। डा० भार्गव का कहना है—"संसार की कोई भी वस्तु उन्हें नहीं बचा सकती थी। उन्हें मरे दस मिनट हो चुके थे।"

पहली गोली शरीर के बीच खींची गई रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर, नाभी से ढाई इंच ऊपर, पेट में घुस गई और पीठ में होकर बाहर निकल गई। दूसरी गोली इस मध्य-रेखा के एक इंच दाहिनी ओर पसलियों के बीच में होकर पार हो गई और पहली की तरह यह भी पीठ के पार निकल गई। तीसरी गोली दाहिने चूचुक से एक इंच ऊपर मध्य-रेखा के चार इंच दाहिनी ओर लगी और फेफड़े में ही धंसी रह गई।

डा० भार्गव का कहना था कि एक गोली शायद हृदय में होकर निकल गई और दूसरी ने शायद किसी बड़ी नस को काट दिया। उन्होंने बतलाया—"आंतों में भी चोट आई थी, क्योंकि दूसरे दिन मैंने देखा कि पेट फूल गया था।"

गांधीजी की निरंतर देखभाल करनेवाले युवक और युवतियां शव के पास बैठ गये और सिसकियां भरने लगे। डा० जीवराज मेहता भी आ पहुंचे और उन्होंने पुष्टि की कि मृत्यु हो चुकी। इसी समय उपस्थित समुदाय में सुरसुराहट फैली। जवाहरलाल नेहरू दफ्तर से दौड़े हुए आये। गांधीजी के पास घुटनों के बल बैठकर उन्होंने अपना मुंह खून से सने कपड़ों में छिपा लिया और रोने लगे। इसके बाद गांधीजी के सबसे छोटे पुत्र देवदास और मौलाना आजाद आये। इनके पीछे बहुत से प्रमुख व्यक्ति थे।

देवदास ने अपने पिता के शरीर को स्पर्श किया और उनके बाजू को धीरे से दबाया। शरीर में अभी तक हरारत थी। सिर अभी तक आभा की गोद में था।

गांधीजी के चेहरे पर शांत मुस्कराहट थी। वह सोये हुए-से मालूम पड़ते थे। देवदास ने बाद में लिखा था—"उस दिन हमने रात भर जागरण किया। चेहरा इतना सौम्य था और शरीर को चारों ओर आवृत्त करनेवाला दैवी प्रकाश इतना कमनीय था कि शोक करना मानो उस पवित्रता को नष्ट करना था।"

विदेशी कूटनीतिक विभागों के लोग शोक-प्रदर्शन करने के लिए आये, कुछ तो रो भी पड़े।

बाहर भारी भीड़ जमा हो गई थी और लोग महात्माजी के अंतिम दर्शन की मांग कर रहे थे। इसलिए शव को सहारा लगाकर बिड़ला भवन की छत पर रख दिया गया और उस पर रोशनी डाली गई। हजारों लोग हाथ मलते हुए और रोते हुए खामोशी के साथ गुजारने लगे।

आधी रात के लगभग शव नीचे उतार लिया गया। शोकग्रस्त लोग रात भर कमरे में बैठे रहे और सिसकियां भरते हुए गीता तथा अन्य मंत्रों का पाठ करते रहे।

देवदास के शब्दों में—"पौ फटने के साथ ही हम सबके लिए सबसे असह्य दर्द-भरा क्षण आ पहुंचा।" अब उस ऊनी दुशाले और सूती चादर को हटाना था, जिन्हें गोली लगते समय महात्माजी सरदी से बचने के लिए ओढ़े हुए थे। इन निर्मल शुभ्र वस्त्रों पर खून के दाग और धब्बे दिखाई दे रहे थे। ज्योंही दुशाला हटाया गया, एक खाली कारतूस निकलकर गिर पड़ा।

अब गांधीजी सबके सामने केवल घुटनों तक की सफेद धोती पहने हुए पड़े थे। सारी दुनिया उन्हें इसी तरह धोती पहने देखने की आदी थी। उपस्थित लोगों में बहुतों का धीरज छूट गया और वे फूट-फूटकर रोने लगे। इस दृश्य को देखकर लोगों ने सुझाव दिया कि मसाला लगाकर शव को कुछ दिन रखा जाय, ताकि नई दिल्ली से दूर के मित्र, साथी और संबंधी दाह से पहले उसके दर्शन कर सकें। परंतु देवदास, गांधीजी के निजी सचिव प्यारेलाल नैयर तथा अन्य लोगों ने इसका विरोध किया। यह चीज हिंदू धार्मिक भावना के प्रतिकूल थी और उसके लिए "बापू हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे।" इसके अलावा वे गांधीजी के भौतिक अवशेष को सुरक्षित रखने के किसी भी प्रस्ताव को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे। इसलिए शव को दूसरे दिन जलाने का निश्चय किया गया।

सुबह होते ही गांधीजी के अनुयायियों ने शव को स्नान कराया और गले में हाथ कते सूत की एक लच्छी तथा एक माला पहना दी। सिर, बाजुओं और सीने को

छोड़कर बाकी शरीर पर ढकी हुई ऊनी चादर के ऊपर गुलाब के फूल और पंखुड़ियां बिखेर दी गईं। देवदास ने बतलाया—"मैंने कहा कि सीना उघड़ा रहने दिया जाय। बापू के सीने से सुंदर सीना किसी सिपाही का भी न होगा।" शव के पास धूपदान जल रहा था।

जनता के दर्शनों के लिए शव को सुबह छत पर रख दिया गया।

गांधीजी के तीसरे पुत्र रामदास ११ बजे हवाई जहाज द्वारा नागपुर से आये। दाह-संस्कार उनके ही लिए रुका हुआ था। शव नीचे उतार लिया गया और उसे बाहर के चबूतरे पर ले गये। गांधीजी के सिर पर सूत की एक लच्छी लपेट दी गई थी। चेहरा शांत, किंतु बड़ा ही विषादपूर्ण, दिखाई दे रहा था। अर्थी पर स्वतंत्र भारत का तिरंगा झंडा डाल दिया गया था।

रात भर में एक १५-हंडरवेट सैनिक हथियार-गाड़ी के इंजनदार फ्रेम पर एक नया ऊंचा ढांचा खड़ा कर दिया गया था, ताकि खुली अर्थी पर रखा हुआ शव सब दर्शकों को नजर आता रहे। भारतीय स्थल-सेना, जल-सेना और वायु-सेना के दो सौ जवान चार मोटे रस्सों से गाड़ी को खींच रहे थे। एक छोटा सैनिक अफसर मोटर के चक्के पर बैठा। नेहरू, पटेल, कुछ अन्य नेता तथा गांधीजी के कुछ युवा साथी इस वाहन पर सवार थे।

नई दिल्ली में अलबुकर्क रोड पर बिड़ला-भवन से दो मील लंबा जुलूस पौने बारह बजे रवाना हुआ और मनुष्यों की अपार भीड़ के बीच एक-एक इंच आगे बढ़ता हुआ चार बजकर बीस मिनट पर साढ़े पांच मील दूर जमुना-किनारे पहुंचा। पंद्रह लाख जनता जुलूस के साथ थी और दस लाख दर्शक थे। नई दिल्ली के आलीशान छायादार पेड़ों की डालियां उन लोगों के बोझ से झुक रही थीं, जो जुलूस को अच्छी तरह देखने के लिए उन पर चढ़ गये थे। बादशाह जार्ज पंचम की ऊंची श्वेत प्रतिमा की चौकी, जो एक बड़ी तलैया के बीच बनी हुई है, सैंकड़ों लोगों से ढक गई थी। ये लोग पानी में होकर वहां जा पहुंचे थे।

कभी-कभी हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों, सिक्खों और ऐंग्लो-इंडियनों की आवाजें मिलकर 'महात्मा गांधी की जय' के नारे बुलंद करती थीं। बीच-बीच में भीड़ मंत्र-उच्चारण करने लगती थी। तीन डेकोटा वायुयान जुलूस के ऊपर उड़ रहे थे। ये सलामी देने के लिए झपकी खाते थे और गुलाब की असंख्य पंखुड़ियां बरसा जाते थे।

चार हजार सैनिक, एक हजार वायु सैनिक, एक हजार पुलिस के सिपाही

और सैनिक भांति-भांति की रंग-बिरंगी वरदियां और टोपियां पहने हुए अर्थी के आगे और पीछे फौजी ढंग से चल रहे थे। गवर्नर-जनरल लार्ड माउंटबेटन के अंग-रक्षक भालेधारी सवार, जो लाल और सफेद झंडियां ऊंची किये हुए थे, इनमें उल्लेखनीय थे। व्यवस्था कायम रखने के लिए बख्तरबंद गाड़ियां, पुलिस और सैनिक मौजूद थे। शव-यात्रा के संचालक मेजर जनरल राय बूचर थे। यह अंग्रेज थे, जिन्हें भारत सरकार ने अपनी सेना का प्रथम प्रधान सेनापति नियुक्त किया था।

जमुना की पवित्र धारा के किनारे लगभग दस लाख नर-नारी सुबह से ही खड़े और बैठे हुए स्मशान में अर्थी के आने का इंतजार कर रहे थे। सफेद रंग ही सबसे ज्यादा झलक रहा था—स्त्रियों की सफेद साड़ियां और पुरुषों के सफेद वस्त्र, टोपियां और साफे।

नदी से कई सौ फुट की दूरी पर पत्थर, ईंट और मिट्टी की नव-निर्मित वेदी तैयार थी। यह करीब दो फुट ऊंची और आठ फुट लंबी व चौड़ी थी। इस पर धूप छिड़की हुई चंदन की पतली लकड़ियां जमाई हुई थीं। गांधीजी का शव उत्तर की ओर सिर तथा दक्षिण की ओर पांव करके चिता पर लिटा दिया गया। ऐसी ही स्थिति में बुद्ध ने प्राण त्याग किये थे।

पौने पांच-बजे रामदास ने अपने पिता की चिता में आग दी। लकड़ियों में लपटें उठने लगीं। अपार भीड़ में से आह की ध्वनि निकली। भीड़ बाढ़ की तरह चिता की ओर बढ़ी और उसने सेना के घेरे को तोड़ दिया। परंतु उसी क्षण लोगों को भान हुआ कि वे क्या कर रहे हैं। वे अपने नंगे पांवों की उंगलियां जमीन में जमाकर खड़े हो गये और दुर्घटना होते-होते बच गई।

लकड़ियां चटखने लगीं और आग तेज होने लगी। लपटें मिलकर एक बड़ी लौ बन गई। अब खामोशी थी।...गांधीजी का शरीर भस्मीभूत होता जा रहा था।

चिता चौदह घंटे तक जलती रही। सारे समय में भजन गाये जाते रहे और पूरी गीता का पाठ किया गया। सत्ताईस घंटे बाद, जब आखिरी अंगारे ठंडे पड़ गये, तब पंडितों, सरकारी पदाधिकारियों, मित्रों और परिवार के लोगों ने चिता के चारों ओर पहरा लगे हुए तार के बाड़े के भीतर विशेष प्रार्थना की और भस्मी तथा अस्थियों के वे टुकड़े, जिन्हें आग जला नहीं पाई थी, एकत्र किये। भस्मी को स्नेह के साथ पर्सों में भर-भरकर हाथकते सूत के थैले में डाल दिया गया। भस्मी में एक गोली निकली। अस्थियों पर जमुना-जल छिड़ककर उन्हें तांबे के घड़े में बंद कर दिया गया। रामदास ने घड़े की गरदन में सुगंधित फूलों का हार पहनाया

उसे गुलाब की पंखुड़ियों से भरी टोकरी में रखा और छाती से लगाकर बिड़ला-भवन ले गये।

गांधीजी के कई घनिष्ट मित्रों ने भस्मी की चुटकियां मांगीं और दे दी गईं। एक ने भस्मी के कुछ कण सोने की मुहरदार अंगूठी में भरवा लिये। परिजनों तथा अनुयायियों ने छहों महाद्वीपों से भस्मी के लिए आई हुई प्रार्थनाओं को अस्वीकार करना तय किया। गांधीजी की कुछ भस्मी तिब्बत, लंका और मलाया भेजी गई। परंतु अधिकांश भस्मी हिंदू रिवाज के अनुसार, मृत्यु के ठीक चौदह दिन बाद, भारत की नदियों में विसर्जित कर दी गई।

भस्मी, प्रदेशों के मुख्य मंत्रियों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को दी गई। प्रादेशिक राजधानियों ने अपने हिस्सों की भस्मी छोटे शहरी केंद्रों में बांट दी। भस्मी का सार्वजनिक प्रदर्शन हर जगह भारी तीर्थयात्रा बन गया और नदियों में अथवा बंबई जैसी जगह समुद्र में, भस्मी का अंतिम विसर्जन भी इसी प्रकार हुआ।

अस्थि-विसर्जन का मुख्य संस्कार इलाहाबाद में गंगा, जमुना और सरस्वती के पुनीत संगम पर हुआ। ११ फरवरी को सुबह ४ बजे तीसरे दर्जे के पांच डिब्बों की एक स्पेशल ट्रेन दिल्ली से रवाना हुई। गांधीजी हमेशा तीसरे दर्जे में यात्रा किया करते थे। ट्रेन के बीच का डिब्बा, जिसमें भस्मी और अस्थियों का घट रखा हुआ था, छत तक फूलों से भरा था और आभा, मनु, प्यारेलाल नैयर, डा० सुशीला नैयर, प्रभावती नारायण और गांधीजी के अन्य दैनिक साथी घट की निगरानी पर थे। रास्ते में ट्रेन ग्यारह नगरों पर ठहरी; हर जगह लाखों नर-नारियों ने श्रद्धा से सिर झुकाये; प्रार्थनाएं कीं और गाड़ी पर फूलों के हार व गुलदस्ते चढ़ाये।

१२ तारीख को इलाहाबाद में यह घट लकड़ी की एक छोटी-सी पालकी पर रखा गया और बाद में मोटर-ट्रक पर आसीन कराकर शहर और आसपास के गांवों के पंद्रह लाख जन-समूह को चीरते हुए आगे ले जाया गया। सफेद वस्त्र धारण किये हुए नर-नारी ट्रक के आगे भजन गाते हुए चल रहे थे। एक गायक प्राचीन बाजा बजा रहा था। ट्रक गुलाब के चलते-फिरते बगीचे जैसा नजर आ रहा था। उत्तर-प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती सरोजिनी नायडू, आजाद, रामदास और पटेल आदि उस पर सवार थे। मुट्ठियां भींचे हुए और सीने तक चेहरा झुकाये हुए नेहरू पैदल चल रहे थे।

धीरे-धीरे ट्रक नदी के किनारे पहुंचा, जहां उसे सफेद रंगी हुई एक अमरीकन फौजी डक[1] पर रख दिया गया। अन्य डकें और नावें नदी के बहाव की ओर उसके साथ चलीं। गांधीजी की अस्थियों के नजदीक पहुंचने के लिए लाखों आदमी घुटनों पानी में दूर तक जा पहुंचे। जब घट उलटा गया और उसमें भरी हुई भस्मी और अस्थियां नदी में गिरीं, तब इलाहाबाद के किले से तोपों ने सलामी दी। भस्मी पानी पर फैल गई। अस्थियों के टुकड़े तेजी के साथ समुद्र की ओर बह चले।

गांधीजी की हत्या से सारे भारत में व्याकुलता तथा वेदना की लहर दौड़ गई। ऐसा जान पड़ता था कि जो तीन गोलियां गांधीजी के शरीर में लगी थीं, उन्होंने करोड़ों के मर्म को बेध डाला था। इस आकस्मिक समाचार ने कि इस शांतिदूत को, जो अपने शत्रुओं से प्रेम करता था और किसी कीड़े को भी मारने का इरादा नहीं रखता था, उसीके एक देशवासी तथा सहधर्मी ने गोली से मार डाला, राष्ट्र को चकित, स्तंभित और मर्माहत कर दिया।

आधुनिक इतिहास में किसी व्यक्ति के लिए इतना गहरा और इतना व्यापक शोक आज तक नहीं मनाया गया।

३० जनवरी १९४८ को शुक्रवार जिस दिन महात्माजी की मृत्यु हुई, उस दिन वह वही थे, जैसे सदा से रहे थे—अर्थात एक साधारण नागरिक, जिसके पास न धन था, न संपत्ति, न सरकारी उपाधि, न सरकारी पद, न विशेष प्रशिक्षण-योग्यता, न वैज्ञानिक सिद्धि और न कलात्मक प्रतिभा। फिर भी, ऐसे लोगों ने; जिनके पीछे सरकारें और सेनाएं थीं, इस अठहत्तर वर्ष के लंगोटीधारी छोटे-से आदमी को श्रद्धांजलियां भेंट कीं। भारत के अधिकारियों को विदेशों से समावेदना के ३४४१ संदेश प्राप्त हुए, जो सब बिनमांगे आये थे, क्योंकि गांधीजी एक नीति-निष्ठ व्यक्ति थे, और जब गोलियों ने उनका प्राणांत कर दिया, तो उस सभ्यता ने जिसके पास नैतिकता की अधिक संपत्ति नहीं है, अपने-आपको और भी अधिक दीन महसूस किया। अमरीकी संयुक्त राज्यों के राज्य-सचिव जनरल जार्ज मार्शल ने कहा था—"महात्मा गांधी सारी मानव-जाति की अंतरात्मा के प्रवक्ता थे।"

पोप पायस, तिब्बत के दलाई लामा, कैंटरबरी के आर्कबिशप, लंदन के मुख्य रब्बी, इंग्लैंड के बादशाह, राष्ट्रपति ट्रूमैन, च्यांगकाई शेक, फ्रांस के राष्ट्रपति और वास्तव में लगभग सभी महत्वपूर्ण देशों तथा अधिकतर छोटे देशों के राजनैतिक

१. नावनुमां मोटरगाड़ी, जो जमीन और पानी दोनों पर चलती है।

नेताओं ने गांधीजी की मृत्यु पर सार्वजनिक रूप से शोक प्रदर्शन किया।

फ्रांस के समाजवादी लियो ब्लम ने वह बात लिखी, जिसे लाखों लोग महसूस करते थे। ब्लम ने लिखा—"मैंने गांधी को कभी नहीं देखा। मैं उनकी भाषा नहीं जानता। मैंने उनके देश में कभी पांव नहीं रखा; परंतु फिर भी मुझे ऐसा शोक महसूस हो रहा है, मानो मैंने कोई अपना और प्यारा खो दिया हो। इस असाधारण मनुष्य की मृत्यु से सारा संसार शोक में डूब गया है।"

प्रोफेसर अलबर्ट आइन्स्टीन ने दृढ़ता से कहा—"गांधी ने सिद्ध कर दिया कि केवल प्रचलित राजनैतिक चालबाज़ियों और धोखाधड़ियों के मक्कारी-भरे खेल के द्वारा ही नहीं, बल्कि जीवन के नैतिकतापूर्ण श्रेष्ठतर आचरण के प्रबल उदाहरण द्वारा भी मनुष्यों का एक बलशाली अनुगामी दल एकत्र किया जा सकता है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद ने अपनी बैठक की कारर्रवाई रोक दी ताकि उसके सदस्य दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें। ब्रिटिश प्रतिनिधि फिलिप नोएल-बेकर ने गांधीजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें "सबसे गरीब, सबसे अलग और पथभ्रष्ट लोगों का हितचिंतक" बतलाया।... सुरक्षा परिषद के अन्य सदस्यों ने गांधीजी के आध्यात्मिक गुणों की बहुत प्रशंसा की और शांति तथा अहिंसा के प्रति उनकी निष्ठा को सराहा।...

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना झंडा झुका दिया।

मानवता ने अपनी ध्वजा नीची कर दी।

गांधीजी की मृत्यु पर संसार-व्यापी प्रतिक्रिया स्वयं ही एक महत्वपूर्ण तथ्य थी। उसने एक व्यापक मनःस्थिति और आवश्यकता को प्रकट कर दिया। न्यूयार्क के 'पीएम' नामक समाचार-पत्र में एल्बर्ट ड्यूत्श ने वक्तव्य दिया—"जिस संसार पर गांधी की मृत्यु की ऐसी श्रद्धापूर्ण प्रतिक्रिया हुई, उसके लिए अभी कुछ आशा बाकी है।"...

उपन्यास-लेखिका पर्ल एस. बक ने गांधीजी की हत्या को 'ईसा की सूली' के समान बतलाया।

जापान में मित्र-राष्ट्रों के सर्वोच्च सेनापत्ति जनरल डगलस मैकआर्थर ने कहा—"सभ्यता के विकास में, यदि उसे जीवित रहना है, तो सब लोगों को गांधी का यह विश्वास अपनाना ही होगा कि विवादास्पद मुद्दों को हल करने में बल के सामूहिक प्रयोग की प्रक्रिया बुनियादी तौर पर न केवल गलत है, बल्कि उसीके भीतर आत्म-विनाश के बीज विद्यमान हैं।"...

न्यूयार्क में १२ साल की एक लड़की कलेवे के लिए रसोईघर में गई हुई थी। रेडियो बोल रहा था और उसने गांधीजी पर गोली चलाई जाने का समाचार सुनाया। लड़की, नौकरानी और माली ने वहीं रसोईघर में सम्मिलित प्रार्थना की और आंसू बहाये। इसी तरह सब देशों में करोड़ों लोगों ने गांधीजी की मृत्यु पर ऐसा शोक मनाया, मानो उनकी व्यक्तिगत हानि हुई हो।...

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने लिखा था—"मैं किसी काल के और वास्तव में आधुनिक इतिहास के ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता, जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वासपूर्ण तरीके से सिद्ध किया हो।"

गांधीजी के लिए शोक करनेवाले लोगों को यही महसूस हुआ। उनकी मृत्यु की आकस्मिक कौंध ने अनंत अंधकार उत्पन्न कर दिया। उनके जमाने के किसी भी जीवित व्यक्ति ने, महाबली प्रतिपक्षियों के विरुद्ध लंबे और कठिन संघर्ष में सचाई, दया, आत्मत्याग, विनय, सेवा और अहिंसा का जीवन बिताने का इतना कठोर प्रयत्न नहीं किया और वह भी इतनी सफलता के साथ। वह अपने देश पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध और अपने ही देशवासियों की बुराइयों के विरुद्ध तीव्र गति के साथ और लगातार लड़े, परंतु लड़ाई के बीच भी उन्होंने अपने दामन को बेदाग़ रखा। वह बिना वैमनस्य या कपट या द्वेष के लड़े।

: २ :

गांधीजी की जीवन-झांकी

गांधीजी का नाम मोहनदास तथा पिता का नाम करमचंद गांधी था।

मोहनदास गांधी अपने पिता के चौथे और अंतिम विवाह की चौथी और अंतिम संतान थे। इनका जन्म २ अक्तूबर १८६९ को पोरबंदर में हुआ था। इसी साल स्वेज़ नहर खुली, टॉमस ए. एडिसन ने अपना पहला आविष्कार पेटेंट कराया, फ्रांस ने नेपोलियन बोनापार्ट के जन्म की शताब्दी मनाई और चार्ल्स डब्ल्यू. इलियट हारवर्ड विश्वविद्यालय का अध्यक्ष बना। कार्ल मार्क्स की 'कैपिटल' अभी प्रकाशित हुई थी। बिस्मार्क फ्रांस-जर्मन युद्ध आरंभ करने ही वाला था और विक्टोरिया इंग्लैंड तथा भारत पर राज कर रही थी।

मोहनदास का जन्म नगर के किनारे एक मामूली तिमंजिले मकान के ११ फुट चौड़े, १९½ फुट लंबे और १० फुट ऊंचे कमरे के अंधेरे, दाहिनी ओर वाले,

कोने में हुआ था। यह मकान अभी तक मौजूद है।

गांधीजी के बड़े भाई लक्ष्मीदास राजकोट में वकालत करते थे और बाद में पोरबंदर सरकार के खजाने के एक हाकिम बन गये। वह खूब खुलकर खर्च करते थे और उन्होंने अपनी पुत्रियों के विवाह छोटे-मोटे भारतीय रजवाड़ों जैसी शान-शौकत के साथ किये। दूसरे भाई करसनदास पोरबंदर में पुलिस के सब-इंस्पेक्टर रहे और अंत में ठाकुर के रनवास के सब-इंस्पेक्टर हुए।

गांधीजी के जीवन-काल में ही दोनों भाइयों की मृत्यु हो गई। बहन रलियात-बेन, जो इनसे चार वर्ष बड़ी थीं, इनके बाद भी जीवित रहीं और राजकोट में ही निवास करती रहीं।

जब मोहनदास बारह वर्ष के थे और राजकोट के एल्फ्रेड हाई स्कूल में दाखिल ही हुए थे, तब मि० जाइल्स नामक एक अंग्रेज इंस्पेक्टर विद्यार्थियों की परीक्षा लेने आये। विद्यार्थियों से पांच अंग्रेजी शब्दों के हिज्जे लिखवाये गये। गांधीजी ने 'केटल' (चायदानी) शब्द ठीक नहीं लिखा। डेस्कों के बीच इधर-से उधर टहलते हुए अध्यापक ने गलती देख ली और मोहनदास को इशारा किया कि पासवाले लड़के की स्लेट से नकल कर लो। मोहनदास ने इन्कार कर दिया। बाद में अध्यापक ने इस बेवकूफी के लिए डांटा, क्योंकि इससे कक्षा का रिकार्ड बिगड़ गया, बाकी सबने सारे शब्द ठीक लिखे थे।

जब मोहनदास का विवाह हुआ, तब वह हाई स्कूल में विद्यार्थी थे और उनकी आयु १३ वर्ष की थी। वधू का नाम कस्तूरबाई था। वह पोरबंदर के गोकुलदास मकनजी नामक व्यापारी की पुत्री थी।

१८८५ में करमचंद की मृत्यु होने पर मोहनदास की माता पुतलीबाई घरू मामलों में बेचरजी स्वामी नामक जैन-साधु से सलाह-मशविरा किया करती थी। इन्हीं जैन साधु ने इंग्लैंड जाने में गांधीजी की सहायता की। माता को संदेह था कि युवा पुत्र इंग्लैंड में सदाचारी न रह सकेगा। इस स्थिति में बेचरजी स्वामी ने रास्ता निकाल दिया। उन्होंने मोहनदास को शपथ दिलवाई और मोहनदास ने तीन प्रतिज्ञाएं कीं—मदिरा, स्त्री और मांस नहीं छुएंगे। इसपर पुतली बाई राजी हो गई।

जून १८८८ में गांधीजी अपने भाई के साथ बंबई को रवाना हो गये। ४ सितंबर को वह जहाज में बैठ गये। अभी वह १८ वर्ष के भी न थे। कुछ ही महीने पहले कस्तूरबाई ने एक बालक को जन्म दिया था और उसका नाम हरिलाल रखा गया था।

६ नवंबर १८८८ को गांधीजी इनर टेंपल[1] में विद्यार्थी की तरह दाखिल कर लिये गए और जून १८९० में उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास की। उन्होंने फ्रेंच तथा लैटिन भाषाएं सीखीं और भौतिक विज्ञान, साधारण कानून तथा रोमन कानून का अध्ययन किया।

अंतिम परीक्षाएं पास करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। १० जून १८९१ को उन्हें अदालत में पैरवी करने की अनुमति मिली, ११ जून को उन्होंने हाईकोर्ट में दाखिला कराया और १२ जून को भारत के लिए रवाना हो गये। वह इंग्लैंड में एक दिन भी अधिक नहीं बिताना चाहते थे।

शुरू में गांधीजी का खयाल था कि वह 'अंग्रेज' बन सकते हैं। इसलिए उन्होंने अंग्रेज बनने के साधनों—पोशाक, नाच, वक्तृत्व-कला के पाठ, आदि—को बड़ी व्यग्रता से अपनाया। फिर उन्हें पता लगा कि बीच की दीवार कितनी ऊंची थी। उन्होंने समझ लिया कि वह भारतीय ही रहेंगे और वह भारतीय हो गये।

इंग्लैंड में गांधीजी दो वर्ष और आठ महीने रहे। इससे उनके व्यक्तित्व का निर्माण अवश्य हुआ होगा, परंतु इसका प्रभाव शायद उतना नहीं पड़ा जितना साधारणतया पड़ना चाहिए था, क्योंकि गांधीजी विद्यार्थी की तरह नहीं थे। वह आवश्यक बातें अध्ययन से नहीं सीखते थे। वह कर्मी थे और कर्म के द्वारा विकास तथा ज्ञान प्राप्त करते थे। पुस्तकों, लोगों और परिस्थितियों का उन पर असर पड़ता था। लेकिन स्कूली पढ़ाई तथा अध्ययन के वर्षों में सच्चे गांधी का, इतिहास के गांधी का, प्रादुर्भाव नहीं हुआ, यहां तक कि उसके अस्तित्व का भी संकेत नहीं मिला।

गांधीजी कर्म के द्वारा महानता की ओर बढ़े। इसलिए गीता गांधीजी की धर्म-पुस्तक बन गई, क्योंकि उसमें कर्म की महिमा गाई गई है।

'यंग इंडिया' के ६ अगस्त १९२५ के अंक में गांधीजी ने लिखा था—"जब शंकाएं मुझे घेर लेती हैं, जब निराशाएं मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं और मुझे आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई देती, तब मैं भगवद्गीता का आश्रय लेता हूं और चित्त को शांति देनेवाला श्लोक पा जाता हूं, और मैं अत्यधिक विषाद के बीच भी तुरंत मुस्कराने लगता हूं। मेरा जीवन बाह्य दुखद घटनाओं से परिपूर्ण रहा है और यदि इनका मुझपर कोई प्रकट या अप्रकट प्रभाव बाकी

---

१. लंदन में कानून की शिक्षा देनेवाली एक संस्था।

नहीं रहा है, तो इसके लिए मैं भगवद्‌गीता के उपदेशों का ऋणी हूं।"

लंदन में गांधीजी 'लेविटिकस' और 'नंबर्स' (बाइबिल के प्रकरण) से आगे नहीं बढ़ पाये, 'पुराना करार' (ओल्ड टेस्टामेंट) के पहले हिस्सों से तो वह ऊब गये। 'नया करार' (न्यू टेस्टामेंट) उन्हें अधिक रुचिकर हुआ और ईसा का 'गिरि-प्रवचन' तो 'सीधा ही हृदय में पैठ गया'। इसमें तथा गीता में उन्हें सादृश्य दिखाई दिया। एक मित्र के सुझाव पर उन्होंने हजरत मुहम्मद पर टॉमस कारलाइल का निबंध पढ़ा। कुछ पुस्तकें थियॉसफी पर पढ़ीं। गांधीजी का धार्मिक अध्ययन आकस्मिक और असंबद्ध था। फिर भी स्पष्टतः उनकी एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हुई।

१८९१ की गर्मियों में गांधीजी भारत वापस लौटे। बंबई में जहाज से उतरने पर भाई ने सूचना दी कि माता पुतलीबाई का देहांत हो गया। यह समाचार पहले उनसे छिपाया गया था, क्योंकि परिवार के लोग माता के प्रति उनकी भक्ति से परिचित थे। गांधीजी को भारी आघात पहुंचा, परंतु उनका शोक, जो पिता की मृत्यु के समय से अधिक था, फूटने नहीं पाया।

बड़े भाई लक्ष्मीदास ने, अपने छोटे भाई पर बहुतेरी आशाएं बांध रखी थीं, परंतु क्या राजकोट में और क्या बंबई में, मोहनदास वकालत में नितांत असफल सिद्ध हुए, क्योंकि बंबई की अदालत में वह एक छोटे-से मामले में भी एक शब्द तक नहीं बोल सके थे।

इसी अर्से में पोरबंदर के एक मुसलमान व्यापारी की फर्म का संदेश मिला कि वह गांधीजी को अपना वकील बनाकर एक साल के लिए दक्षिण अफरीका भेजना चाहती है। नया देश देखने और नये अनुभव प्राप्त करने के इस अवसर को गांधीजी ने जाने नहीं दिया। इस प्रकार अपने देश में दो वर्ष से कुछ कम असफल रहने के बाद उसका भावी नेता जंजीबार, मोजंबिक और नेटाल के लिए जहाज पर सवार हो गया। पत्नी और दो बच्चों को उन्होंने यहीं छोड़ दिया। २८ अक्तूबर १८९२ को मणिलाल नामक दूसरा पुत्र जन्म ले चुका था।

जब मई १८९३ में गांधीजी डरबन बंदर पर जहाज से उतरे, तो उनका उद्देश्य केवल यह था कि मुकदमा जीतना, कुछ रुपया पैदा करना और शायद आखिर में अपनी जीविका शुरू करना। जिस समय वह अपने मालिक दादा अब्दुल्ला सेठ से मिलने के लिए नाव से उतरे, उस समय फैशनदार फ्रॉक कोट, इस्तरी की हुई पतलून, चमकदार जूते और पगड़ी पहने हुए थे।

मुकदमे के लिए गांधीजी का प्रिटोरिया जाना जरूरी था। डरबन में उनके लिए पहले दर्जे का टिकट खरीदा गया और वह गाड़ी में सवार हुए। ट्रांसवाल की राजधानी मेरित्सबर्ग में एक गोरा डिब्बे में चढ़ा और काले आदमी को बैठे देखकर दो रेलवे कर्मचारियों को बुला लाया। उन्होंने गांधीजी से तीसरे दर्जे में चले जाने को कहा। गांधीजी ने उतरने से इन्कार किया। इस पर वे लोग पुलिस के सिपाही को ले आये, जिसने सामान सहित उन्हें बाहर निकाल दिया।

गांधीजी चाहते तो तीसरे दर्जे में बैठ सकते थे; परन्तु उन्होंने वेटिंग रूम में पड़े रहना पसंद किया। उस पहाड़ी प्रदेश में सरदी थी। रात भर गांधीजी बैठे-बैठे ठिठुरते रहे और चिंतन करते रहे।

मेरित्सबर्ग में, कड़ाके की सरदी की उस रात में, गांधीजी के हृदय में सामाजिक प्रतिरोध का अंकुर पैदा हुआ, परंतु उन्होंने कुछ किया नहीं। वह अपने काम के लिए प्रिटोरिया चले गये।

प्रिटोरिया पहुंचने के एक सप्ताह के भीतर गांधीजी ने वहांके सब भारतीयों की एक सभा बुलाई। श्रोता लोग मुसलमान व्यापारी थे, जिनके बीच में कहीं-कहीं कुछ हिंदू बैठे थे। गांधीजी ने चार बातों पर जोर दिया, व्यापार में भी सत्य बोलो, अधिक सफाई से रहने की आदत डालो, जात-पांत और धर्म के भेद भूल जाओ, अंग्रेजी सीखो।

इसके बाद और सभाएं भी हुईं और गांधीजी बहुत जल्दी प्रिटोरिया के सब भारतीयों से परिचित हो गये। प्रिटोरिया के भारतीयों ने अपना एक स्थायी संगठन बना लिया।

मुकदमा तय होने के बाद गांधीजी डरबन लौट आये और भारत के लिए रवाना होने की तैयारी करने लगे। रवाना होने से पहले साथियों ने उन्हें बिदाई की एक पार्टी दी। समारोह के बीच किसीने उन्हें उस दिन का 'नेटाल मर्करी' पत्र दिया, जिसमें उन्होंने एक समाचार पढ़ा कि नेटाल सरकार विधान मंडल में सदस्य चुनने के अधिकार से भारतीयों को वंचित करने का एक बिल पेश करना चाहती है। गांधीजी ने इस कदम को रोकने की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके मित्र इसके लिए तैयार तो हो गये, परंतु कहने लगे कि आपके बिना हम कुछ नहीं कर सकते। गांधीजी एक महीना ठहरने के लिए राजी हो गये। भारतीयों के अधिकारों की लड़ाई लड़ते हुए वह वहां बीस वर्ष ठहरे। उन्हें विजय प्राप्त हुई।

दक्षिण अफरीका में तीन वर्ष में गांधीजी एक संपन्न वकील और प्रमुख भार-

तीय राजनैतिक नेता बन गये थे। वह गिरमिटिया मजदूरों के हिमायती मशहूर हो गये थे।

दक्षिण अफरीका में गांधीजी के संघर्ष का उद्देश्य यह नहीं था कि वहां के भारतीयों के साथ गोरों के समान बर्ताव किया जाय। वह तो एक सिद्धांत स्थापित करना चाहते थे—भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक हैं और इसलिए उसके कानून के अधीन उन्हें उसी समानता का अधिकार है।

हालांकि अभी तक उनमें इतिहास के महान गांधी का केवल जरा-सा संकेत दिखाई पड़ता था, परंतु उन्होंने अपने को एक प्रभावशाली नेता और सर्वोत्तम संगठनकर्ता सिद्ध कर दिया था। उनके भारतीय सहयोगी कार्यकर्ता तो तेजी के साथ यह महसूस करते ही थे, परंतु उनकी निगाहों से भी यह छिपा न था कि उनके बिना भारतीयों के अधिकारों का संघर्ष एकदम खत्म हो जायगा या कम-से-कम ढीला पड़ जायगा।

इसलिए गांधीजी ने छह महीने की छुट्टी ली और अपने परिवार को लिवा लाने के लिए भारत गये।

१८९६ के साल के मध्य में अपनी जन्मभूमि पहुंचकर सत्ताईस वर्ष के इस आदमी ने, जिसने एक महान कार्य पूरा करने का बीड़ा उठाया था, जबरदस्त हलचल पैदा कर दी। राजकोट में गांधीजी ने अपने परिवार की गोद में एक महीना दक्षिण अफरीका में भारतीयों की शिकायतों पर एक पुस्तिका लिखने में बिताया। इसकी दस हजार प्रतियां छपवाई गईं और अखबारों तथा प्रमुख भारतीयों को भेजा गईं।

राजकोट से गांधीजी बंबई गये और वहां उन्होंने दक्षिण अफरीका पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। सभा बुलानेवालों के नाम और चर्चा के विषय ऐसे थे कि इससे बंबई की इस सभा की सफलता जबरदस्त रही।

पूना में गांधीजी ने भारत के दो महापुरुषों से मुलाकात की। भारत सेवक समिति के अध्यक्ष गोपालकृष्ण गोखले और असाधारण मेधावी तथा उच्च राजनैतिक नेता लोकमान्य तिलक।

गांधीजी कलकत्ता में भी–बंबई, पूना और मद्रास जैसी–सभा करना चाहते थे, लेकिन एक संकट का मुकाबला करने के लिए उन्हें नेटाल जाने का तार से बुलावा आ गया। अतः वह बंबई दौड़े आये और पत्नी, दो पुत्रों तथा विधवा बहन के इकलौते पुत्र के साथ जहाज पर दक्षिण अफरीका के लिए रवाना हो गये।

डरबन में गांधीजी और उनके साथियों को जहाज से उतरने नहीं दिया गया।

गोरों की सभाओं में मांग की गई कि इन्हें भारत वापस भेज दिया जाय।

१३ जनवरी १८९७ को जहाजों को डॉक पर लगने दिया गया। लेकिन नेटाल सरकार के एटर्नी जनरज मि. हैरी एस्कंब ने गांधीजी को संदेश भेजा कि झगड़ा बचाने के लिए वह दिन-छिपे जहाज से उतरें। दादा अब्दुल्ला के कानूनी सलाहकार मि. लाटन ने इसके विरुद्ध सलाह दी और गांधीजी भी छिप-छिपाकर शहर में नहीं जाना चाहते थे। श्रीमती गांधी और दोनों बच्चे सामान्य रूप में जहाज से उतरे और उन्हें रुस्तमजी के घर पहुंचा दिया गया। गांधीजी और लाटन पैदल चले। हल्ला मचानेवाली भीड़ बिखर चुकी थी, लेकिन दो छोटे लड़कों ने गांधीजी को पहचान लिया और उनका नाम पुकारा। इसे सुनकर कई गोरे आ गये। ज्यों-ज्यों गांधीजी और लाटन आगे बढ़ते गये, भीड़ भी बढ़ती गई और हमला करने पर उतारू हो गई। लोगों ने उनपर पत्थर, ईंट और अंडे फेंके। फिर उन्होंने गांधीजी की पगड़ी छीन ली और उनपर मार और ठोकरें लगाईं।

एक भारतीय लड़का पुलिस को बुला लाया। गांधीजी ने पुलिस थाने में शरण लेने से इन्कार कर दिया, लेकिन इस बात पर राजी हो गये कि पुलिस उन्हें रुस्तमजी के घर तक पहुंचा दे।

शहर के लोगों को अब गांधीजी का ठिकाना मालूम हो गया था। गोरों के झुंडों ने रुस्तमजी के मकान को घेर लिया और चिल्लाने लगे कि गांधी को उनके हवाले कर दिया जाय।

रात को पुलिस सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडर ने गांधीजी को गुप्त संदेश भेजा कि वह वेष बदलकर निकल जायं। गांधीजी ने ऐसा ही किया और पुलिस थाने में पहुंच गये। यहां वह तीन दिन रहे।

आक्सफोर्ड के प्रोफेसर एडवर्ड टामसन ने लिखा है—"गांधी को चाहिए था कि जीवन भर हर एक गोरी शक्ल से नफरत करते।" लेकिन गांधीजी ने डरबन के उन गोरों को क्षमा कर दिया, जो उन्हें जिंदा जला डालने के लिए जमा हुए थे और उनको भी क्षमा कर दिया, जिन्होंने उन्हें घायल किया और मारा था।

दक्षिण अफरीका में १८९९से१९०२ तक जो बोअर युद्ध[1] हुआ, उसमें गांधीजी की व्यक्तिगत सहानुभूति पूरी तरह बोअरों के साथ थी। फिर भी उन्होंने अपनी सेवाएं अंग्रेजों को अर्पण कीं। गांधीजी का खयाल था कि बोअर-युद्ध में अंग्रेजों का

---

१. दक्षिण अफरीका में हालैंड से आकर बसनेवालों तथा अंग्रेजों के बीच युद्ध।

समर्थन करके ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीयों की स्थिति सुधारने का यह सुनहरी मौका है।

गांधीजी ने घायलों की सेवा के लिए एक टुकड़ी तैयार की, जिसमें ३०० स्वतंत्र भारतीय और ८०० गिरमिटिये मजदूर थे। जनता ने और सेना ने गांधीजी की टुकड़ी की सहनशीलता और हिम्मत की सराहना की।

'प्रिटोरिया न्यूज़' के अंग्रेज संपादक मि. वीयर स्टेंट ने जोहांसबर्ग 'इलस्ट्रेटेड स्टार' के जुलाई १९११ के अंक में स्पियां कोक की लड़ाई के मोर्चे का आंखों देखा हाल लिखा था। इसने बतलाया–"रात-भर काम करने के बाद, जिसमें बड़े-बड़े तगड़े आदमियों के अंजर-पंजर ढीले हो गये थे, मैंने सुबह गांधी को सड़क के किनारे बैठा देखा। बुलर के दल का हर एक आदमी सुस्त और हतोत्साह था और हर चीज पर लानत भेज रहा था। लेकिन गांधी अपने बर्ताव में विरागी जैसा और बातचीत में हंसमुख और निःशंक था और उसकी आंखों में दया थी। ... नेटाल अभियान के कितने ही रण-क्षेत्रों में मैंने इस आदमी को देखा और उसकी छोटी-सी टुकड़ी को देखा। जहां सहायता की जरूरत होती, ये लोग वहीं जा पहुंचते।"

सन १९०० में यह भारतीय ऐंबुलेंस टुकड़ी तोड़ दी गई। गांधीजी और उनके कई साथियों को तमगे मिले और टुकड़ी का जिक्र खरीतों में किया गया।

१९०१ में गांधीजी ने भारत लौटने का इरादा किया। परिवार के साथ बिदा होने की पूर्व संध्या को भारतीय समुदाय ने कृतज्ञता के मूर्त्त प्रदर्शनों की होड़ लगा दी। गांधीजी को सोने व चांदी की चीजें और हीरे के जड़ाऊ आभूषण भेंट किये गये। कस्तूरबाई के लिए सोने का एक कीमती हार था।

१८९६ में भी भारत जाते समय गांधीजी को उपहार मिले थे, परंतु वे इस प्रकार न थे। इनको न रखने की दुविधा में गांधीजी को रात भर नींद नहीं आई। सुबह होते-होते उन्होंने उन्हें वापस करने का निश्चय कर लिया, परंतु इस बात के लिए वह कस्तूरबा को बहुत मुश्किल से राजी कर सके।

अंत में गांधीजी ने घोषणा की कि १९०१ और १८९६ के उपहार ट्रस्टियों को सौंप दिये जायंगे। ऐसा ही हुआ और इससे जो कोष बना, उससे दक्षिण अफरीका के भारतीयों का बाद में कितने ही वर्ष काम चला।

भारत लौटकर गांधीजी ने बंबई में रहने का मकान और वकालत का कमरा किराये पर लिये।

गांधीजी बंबई में बस चुके थे, लेकिन १९०२ में उन्हें दक्षिण अफरीका से फिर

बुलावा आया। उन्होंने समझ लिया कि अब उन्हें दक्षिण अफरीका में बहुत दिन रहना पड़ेगा, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी और तीन पुत्रों को भी वहीं बुला लिया। सबसे बड़ा हरिलाल भारत में ही रह गया। गांधीजी ने जोहांसबर्ग में अपनी वकालत शुरू कर दी, जिससे खूब आमदनी होने लगी।

एक शाम को गांधीजी अपने प्रिय निरामिष रेस्ट्रां की मालकिन के 'एट-होम' में गये। वहां उनकी मुलाकात हेनरी एस०एल० पोलक नामक एक नवयुवक से हुई।

कुछ महीने पहले, १९०३ में, गांधीजी ने 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक पत्र शुरू किया था। पत्रिका पर कुछ कठिनाई आई और उसे वहीं निबटाने के लिए गांधीजी को डरबन जाना पड़ा, जहां से पत्रिका प्रकाशित होती थी। पोलक उन्हें स्टेशन पर पहुंचाने आये और लंबे रास्ते में पढ़ने के लिए उन्हें एक पुस्तक दे गये। वह जॉन रस्किन की 'अंटू दिस लास्ट' थी।

गांधीजी ने रस्किन की कोई रचना अभी तक नहीं पढ़ी थी। उन्होंने जोहांसबर्ग से गाड़ी छूटते ही इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया और रात भर पढ़ते रहे। अक्तूबर १९४६ में गांधीजी ने कहा था—"इस पुस्तक ने मेरे जीवन की धारा बदल दी।" उनका कहना था कि यह पुस्तक रक्त और आंसुओं से लिखी गई है। उन्होंने पुस्तक के आदर्शों के अनुसार अपना जीवन बनाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने सोच लिया कि अपने परिवार तथा सहयोगियों के साथ एक फार्म में जाकर रहेंगे।

डरबन से चौदह मील दूर फिनिक्स नगर के पास गांधीजी ने एक फार्म खरीदा। बहुत जल्दी 'इंडियन ओपीनियन' का छापाखाना और दफ्तर फार्म में पहुंचा दिये गये। यह पत्र इस स्थान से मणिलाल गांधी[1] द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

वासनाओं पर विजय पाने के प्रयत्नों में १९०६ का साल गांधीजी के जीवन में परिवर्तन-काल की भांति उल्लेखनीय है। अब उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। १९०६ से लेकर, जब वह सैंतीस वर्ष के थे, १९४८ तक मृत्यु-पर्यंत, गांधीजी ने ब्रह्मचर्य का पालन किया।

११ सितंबर १९०६। जोहांसबर्ग के इंपीरियल थियेटर में करीब तीन हजार आदमियों की भीड़ थी। यह सभा गांधीजी ने बुलाई थी। २२ अगस्त १९०६

---

१. श्री मणिलाल गांधी का स्वर्गवास हो गया है और अब पत्र उनकी पत्नी श्रीमती सुशीला गांधी चला रही हैं।—सं०

के 'ट्रांसवाल गवर्नमेंट गजट' में एक अध्यादेश का मसविदा छपा, जो विधान मंडल में पेश किया जानेवाला था। गांधीजी ने सोचा कि यदि यह स्वीकृत हो गया, तो दक्षिण अफरीका में भारतीयों का सर्वनाश हो जायगा। इस प्रस्तावित अध्यादेश के अनुसार सब भारतीय पुरुषों, स्त्रियों और आठ साल से ऊपर के बच्चों के लिए जरूरी था कि वे अधिकारियों के रजिस्टर में अपने नाम दर्ज करायें, उंगलियों की निशानियां दें और एक प्रमाण-पत्र प्राप्त करें, जिसे हर समय अपने साथ रखें।

सभापति द्वारा कार्रवाई शुरू की जाने से पहले ही थियेटर का आर्केस्ट्रा, बालकनी और गैलरी खचाखच भर गये थे। चार भाषाओं में क्रोध भरे भाषणों ने भड़क उठनेवाले श्रोताओं को आवेग के ऊंचे दर्जे तक थर्रा दिया था। तब सेठ हाजीसाहब ने गांधीजी की सहायता से तैयार किया हुआ प्रस्ताव पढ़ा, जिसमें मांग की गई थी कि रजिस्टर में नाम दर्ज करवानेवाले कानून की अवज्ञा की जाय।

इसके बाद गांधीजी बोले। पहले तो उन्होंने लोगों को चेतावनी दी फिर उन्हें उत्तेजित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—"सरकार ने भलमनसाहत की सारी बुद्धि को तिलांजलि दे दी है।...लेकिन मैं हिम्मत और निश्चय के साथ घोषित करता हूं कि जबतक अपनी प्रतिज्ञा पर सचाई के साथ डटे रहनेवाले मुट्ठीभर लोग भी रहेंगे, तबतक संघर्ष का एक ही अंत हो सकता है—वह है विजय।"

सभापति के संयत शब्दों के बाद मत लिया गया। सब उपस्थित लोगों ने खड़े होकर हाथ उठाये और ईश्वर की शपथ ली कि यदि प्रस्तावित भारतीय विरोधी अध्यादेश कानून बन गया तो उसे नहीं मानेंगे।

दूसरे दिन १२ सितंबर को, इंपीरियल थियेटर आग में जलकर भस्म हो गया। बहुत से भारतीयों ने इसे शकुन समझा कि अध्यादेश का भी यही हाल होगा। परंतु गांधीजी के लिए यह एक संयोग की बात थी। ऐसे शकुनों में उनका विश्वास नहीं था। नियति गांधीजी को ऐसे मूक संकेतों से आह्वान नहीं करती थी। उनकी अंतरात्मा में तो नियति उस हिमालय-जैसे आत्म-विश्वास के जरिये बोलती थी, जो उन्होंने सभा में प्रकट किया था। वह जानते थे कि उन्हें अकेले लड़ना पड़ेगा।

इंपीरियल थियेटर में सम्मिलित प्रतिज्ञा के बाद गांधीजी ने सरकारी अनौचित्य के प्रति इस नई किस्म के सामूहिक पर व्यक्तिगत विरोध के अच्छे से नाम के लिए इनाम देने की घोषणा की।

मगनलाल गांधी ने सदाग्रह (सद्+आग्रह) सुझाया। गांधीजी ने इसे सत्याग्राह (सत्य+आग्रह) का संशोधित नाम दिया।

सत्याग्रह से सरकार का मुकाबला करने से पहले गांधीजी ने लंदन जाना उचित समझा। इंग्लैंड में उन्होंने उपनिवेशों के राज्य-सचिव लार्ड एल्गिन से और भारत के राज्य-सचिव मि० जान मार्ले से भेंट की और पार्लामेंट के सदस्यों की एक सभा में भाषण दिया।

दक्षिण अफरीका को लौटते समय रास्ते में लंदन से तार मिला कि लार्ड एल्गिन ट्रांसवाल के एशियाई विरोधी बिल को स्वीकृति नहीं देंगे। परंतु बाद में पता लगा कि यह केवल एक चाल थी।

ट्रांसवाल सरकार ने एशियायियों की रजिस्ट्री का कानून पास कर दिया, जो ३१ जुलाई १९०७ से अमल में आनेवाला था। भारतीयों ने सत्याग्रह की तैयारी शुरू कर दी।

कुछ भारतीयों ने कानून के मातहत परमिट ले लिये, परंतु अधिकांश ने नहीं लिये। इसलिए कुछ भारतीयों को नोटिस दिये गये कि या तो वे रजिस्टर में नाम दर्ज करायें, अन्यथा ट्रांसवाल छोड़कर चले जायं। ऐसा न करने पर ११ जनवरी १९०८ को उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। इनमें गांधीजी भी थे। जज जार्डन ने उन्हें दो महीने की सादी कैद की सजा सुनाई।

गांधीजी की यह पहली जेल-यात्रा थी।

जनरल स्मट्स ने एल्बर्ट कार्टराइट को समझौते का प्रस्ताव लेकर जेल में गांधीजी से मिलने भेजा। प्रस्ताव यह था कि भारतीय लोग अपनी मर्जी से रजिस्टर में नाम दर्ज करा लें। उसके बाद 'काला कानून' वापस ले लिया जायगा।

३० जनवरी को स्मट्स ने गांधीजी को मिलने के लिए बुलाया। स्मट्स ने आश्वासन दिया कि जब अधिकांश भारतीय अपने-आप रजिस्टर में नाम दर्ज करा लेंगे, तब एशियाटिक कानून मंसूख कर दिया जायगा।

स्मट्स उठ खड़े हुए।

"मैं कहां जाऊं ?" गांधीजी ने पूछा।

"आप इसी क्षण से स्वतंत्र हैं।"

"दूसरे कैदियों का क्या होगा ?"

"मैं जेल-अधिकारियों को फोन कर रहा हूं कि दूसरे कैदियों को कल सुबह छोड़ दिया जाय।"

जोहांसबर्ग आने पर गांधीजी को तूफानी विरोध का सामना करना पड़ा।

लोगों ने तर्क किया कि अगर स्मट्स विश्वासघात करे तो क्या होगा। गांधीजी ने कहा कि सत्याग्रही निर्भय होता है।

एक पठान खड़ा होकर कहने लगा—"हमने सुना है कि तुमने कौम के साथ धोखा किया है और उसे पंद्रह हजार पौंड में जनरल स्मट्स के हाथ बेंच दिया है। मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूं कि जो कोई रजिस्ट्री कराने जायेगा, मैं उसे मार डालूंगा।"

गांधीजी ने १० फरवरी को अपना नाम रजिस्टर में दर्ज कराने का इरादा किया। जब वह रजिस्ट्री के दफ्तर की ओर चले, तो पठानों के झुंड ने उनका पीछा किया। दफ्तर पहुंचने से पहले मीर आलम पठान ने आगे बढ़कर पूछा—"किधर जाते हो?"

"मेरा इरादा रजिस्ट्री का सर्टिफिकेट लेने का है।" गांधीजी ने जवाब दिया।

गांधीजी के शब्द पूरे भी न हुए थे कि एक डंडा उनके सिर पर जोर से पड़ा। गांधीजी ने लिखा है—"मेरे मुंह से 'हे राम' शब्द निकले और मुझे गश आ गया।"

३० जनवरी १९४८ को मृत्यु के समय भी यही उनके अंतिम शब्द थे।

जब गांधीजी जमीन पर गिर पड़े, तो उनपर और भी चोटें पड़ीं और पठानों ने उनके खूब ठोकरें लगाईं।

लोग उन्हें उठाकर एक दफ्तर में ले गये। होश में आते ही उन्होंने कहा—"मीर आलम कहां है?"

"उसे दूसरे पठानों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया है।"

"उन्हें छोड़ देना चाहिए," गांधीजी ने धीरे-धीरे कहा—"मैं उन पर मुकदमा नहीं चलाना चहाता।"

ठीक होने के बाद गांधीजी ने बराबर यह प्रचार किया कि रजिस्ट्री के बारे में उन्होंने जो समझौता किया है, उस पर ईमानदारी से अमल करना चाहिए। इसलिए जब स्मट्स ने 'काला कानून' मंसूख करने का वादा पूरा करने से इन्कार किया, तो गांधीजी को कितनी परेशानी हुई होगी!

१६ अगस्त १९०८ को जोहांसबर्ग की हमीदिया मस्जिद में सभा बुलाई गई। चार पायों पर टिकी हुई लोहे की एक बड़ी कड़ाही ऊंची जगह पर सबकी निगाह के सामने रखी हुई थी।

भाषणों के समाप्त होते ही दर्शकों से एकत्र किये गये दो हजार से अधिक रजिस्ट्री के सर्टिफिकेट कड़ाही में डाल दिये गये और मिट्टी का तेल छिड़ककर

जला दिये गये। भीड़ ने भारी हर्ष-ध्वनि की।

ट्रांसवाल की सरकार के साथ होनेवाले संघर्ष के लिए गांधीजी ने अपने साधन जुटाने शुरू कर दिये।

गांधीजी के तमाम, काले व गोरे, सहयोगियों में सबसे ज्यादा घनिष्ट थे हेनरी एस० एल० पोलक, जोहांसबर्ग का एक अत्यंत धनी शिल्पकार हर्मन केलेन-बेक और स्काटलैंड से आई हुई सोन्या श्लेशिन।

गिरफ्तार होने की अनुमति चाहनेवाले लोगों ने गांधीजी को घेर लिया। गांधीजी भी गिरफ्तार हो गये और वोल्कस्रस्ट जेल में रखे गये। उनका जेल कार्ड मणिलाल के पास सुरक्षित है। वह क्रीम रंग का है और उसका आकार २$\frac{७}{८}$ × ३$\frac{१}{८}$ इंच का है। उस पर उनका नाम, गलती से, एम० एस० गांधी दिया हुआ है। "पेशा, सालिसिटर।" "दंड और तारीख, २५ पौंड जुरमाना या २ मास की सजा।" "छूटने की तारीख, दिसंबर १३, १९०८।" कार्ड के पीछे 'जेल अपराध' के नीचे खाली जगह है। वह आदर्श कैदी थे।

अक्सर यह कहा गया है कि सत्याग्रह की कल्पना गांधीजी ने थॉरो से ली, परंतु १० सितंबर १९३५ को भारत सेवक समिति के श्री कोदंड राव को लिखे गये पत्र में गांधीजी ने इससे इन्कार किया है। उन्होंने लिखा था—"यह कथन कि मैंने सविनय अवज्ञा की अपनी कल्पना थॉरो की पुस्तकों से प्राप्त की है, गलत है। सविनय अवज्ञा पर थॉरो का निबंध मेरे हाथ में पड़ने से पहले दक्षिण अफरीका में सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध काफी आगे बढ़ गया था। लेकिन उस समय यह आंदोलन 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के नाम से प्रसिद्ध था। चूंकि वह शब्द अपूर्ण था, इसलिए गुजराती पाठकों के लिए मैंने 'सत्याग्रह' शब्द गढ़ा। जब मैंने थॉरो के महान निबंध का शीर्षक देखा, तो अंग्रेजी पाठकों को अपने संघर्ष की व्याख्या करने के लिए मैंने उसका प्रयोग किया। लेकिन मुझे लगा कि 'सविनय अवज्ञा' से भी संघर्ष का पूरा अर्थ व्यक्त नहीं होता है। अतः मैंने 'निष्क्रिय प्रतिरोध' शब्द प्रयुक्त किया।"

: ३ :

पुत्र को पत्र

गांधीजी की दूसरी जेल-अवधि १३ दिसंबर १९०८ को समाप्त हुई; लेकिन चूंकि आवास-प्रतिबंध के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध चल रहा था, उन्हें तीसरी बार तीन मास की सजा मिली और वह २५ फरवरी १९०९ को फिर वोल्कस्रस्ट जेल में लौट आये। पांच दिन बाद कुछ सामान सिर पर लादे घोर वर्षा में उन्हें प्रिटोरिया पहुंचाने के लिए रेल पर ले जाया गया, जहां उन्होंने नव-निर्मित प्रायश्चित्त-शाला में अपनी अवधि व्यतीत की। वहां पहुंचने पर जेल के वार्डर ने पूछा—"क्या आप गांधी के बेटे हैं ?" देखने में गांधीजी इतने जवान लगते थे कि अफसर ने भूल से उन्हें उनका लड़का मणिलाल समझ लिया। मणिलाल भी उस समय छह महीने की जेल वोल्कस्रस्ट में काट रहे थे। तब गांधीजी ४० वर्ष के थे।

गांधीजी ने जेल से मणिलाल को एक पत्र भेजा था, जिसे मणिलाल ने आजतक सुरक्षित रखा है। यह पत्र जेल के क्रीम रंग के फुलस्केप कागज के पांच कागजों पर दोनों ओर कापिंग पेंसिल से हाथ का लिखा हुआ है और अंग्रेजी में है। साधारण तौर पर गांधीजी मणिलाल को गुजराती में लिखते, परंतु हर एक पृष्ठ के बायें हाशिये पर अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं में हिदायतें छपी हुई थीं कि पत्र-व्यवहार अंग्रेजी, डच, जर्मन, फ्रेंच या काफिर भाषाओं में किया जाना चाहिए। पत्र पर २५ मार्च १९०९ की तारीख है। गांधीजी का नंबर ७७७ था, सेंसर ने पत्र को दो दिन बाद नामांकित किया था।

मणिलाल की आयु सत्रह वर्ष की थी और चूंकि उनके बारे में किसी और को चिंता नहीं थी, इसलिए वह अपने धंधे तथा भविष्य के बारे में चिंतित थे। उनकी स्कूली शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। इस समय यह फार्म पर तथा 'इंडियन ओपीनियन' में अपने पिता के कारकुन थे और शायद बहुत ही परेशान नवयुवक थे।

गांधीजी ने लिखा था :

प्रिय बेटे, मुझे हर महीने एक पत्र लिखने का और एक पत्र पाने का अधिकार है। मेरे सामने यह सवाल आया कि मैं किसको लिखूं। मुझे मि० रिच ('इंडियन ओपीनियन' के संपादक) का, मि० पोलक का और तुम्हारा खयाल आया। मैंने तुम्हें चुना, क्योंकि मेरे मन के सबसे अधिक निकट तुम्हीं रहे हो।

जहां तक मेरा संबंध है, मुझे अधिक नहीं कहना चाहिए और अधिक कहने की इजाजत भी नहीं है। मैं बिल्कुल निश्चिंत हूं और मेरे लिए किसीको परेशान होने की जरूरत नहीं है।

मुझे आशा है कि तुम्हारी माता की तबीयत अब बिल्कुल ठीक है। मैं जानता हूं कि तुम्हारे कई पत्र आ चुके हैं, परंतु मुझे नहीं दिये गये हैं। किंतु डिप्टी गवर्नर ने भलमनसाहत करके मुझे बता दिया है कि वह अच्छी तरह है। क्या वह आराम से चल-फिर सकती है? मैं आशा करता हूं कि वह और तुम सब सुबह साबूदाना और दूध लेते रहोगे। और चंची[1] का क्या हाल है? उससे कहना कि वह मुझे रोज याद आती है। उसके सारे फोड़ों को आराम हो गया होगा और वह तथा रामी[2] अच्छी तरह होंगी।

आशा है, रामदास और देवदास भी अच्छी तरह होंगे, अपनी पढ़ाई करते होंगे और परेशानी का कारण नहीं बनते होंगे। रामदास की खांसी जाती रही या नहीं?

मुझे आशा है कि जब विली तुम्हारे पास था, तब तुम सबने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया होगा। मैं चाहता था कि मि० कोर्डेज जो कुछ खाने का सामान छोड़ गये हों, वह उन्हें वापस लौटा दिया गया होता।

और अब तुम्हारे बारे में। तुम कैसे हो? हालांकि मेरे खयाल से तुम उस सारे बोझ को अच्छी तरह झेल सकते हो, जो मैंने तुम्हारे कंधों पर डाल दिया है और तुम हंसी-खुशी के साथ इसे झेल रहे हो, फिर भी मुझे कई बार लगता है कि जितना व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन मैं तुम्हें दे सका हूं, उससे अधिक की तुम्हें आवश्यकता थी। मैं यह भी जानता हूं कि कभी-कभी तुम महसूस करते हो कि तुम्हारी शिक्षा की उपेक्षा की गई है। जेल में मैंने बहुत-कुछ पढ़ डाला है। मैं इमर्सन, रस्किन और मेज़िनी की रचनाएं पढ़ता रहा हूं। मैंने उपनिषद् भी पढ़ लिये हैं। सब इस मत को पुष्ट करते हैं कि शिक्षा का अर्थ अक्षर-ज्ञान नहीं हैं, बल्कि चरित्र-निर्माण है। इसका अर्थ है कर्तव्य का ज्ञान। अगर यह मत सही है, और मेरे विचार से सही मत केवल यही है, तो तुमको सबसे अच्छा शिक्षण मिल रहा है। इससे अच्छी शिक्षा और क्या हो सकती है कि तुम्हें अपनी माता की परिचर्या का और उसके कर्कश

१. हरिलाल की पत्नी गुलाब का मुंहबोला नाम।
२. हरिलाल की छोटी बच्ची।

स्वभाव को सहन करने का अवसर मिल रहा है, या यह कि तुम चंची की देखभाल करते हो और उसकी जरूरतों को पहचान लेते हो और उसके साथ ऐसा बर्ताव करते हो कि उसे हरिलाल की अनुपस्थिति न खले, और यह कि तुम रामदास और देवदास के अभिभावक हो ? अगर तुम इन कामों को अच्छी तरह करने में सफल हो जाओगे तो तुम्हारी आधी से ज्यादा शिक्षा पूरी हो जायगी ।

नाथूरामजी की उपनिषदों की प्रस्तावना का एक अंश मेरे हृदय में समा गया है। वह कहते हैं कि ब्रह्मचर्य आश्रम अर्थात पहली सीढ़ी आखिरी सीढ़ी अर्थात संन्यास आश्रम के समान है। यह सही है। खेल-कूद भोलेपन की आयु में ही, अर्थात केवल बारह वर्ष की आयु तक, चलता है। समझदारी की आयु पर पहुंचते ही लड़के को अपनी जिम्मेदारियां महसूस करना सिखाया जाता है। इस आयु के बाद से हर एक लड़के को मन और कर्म से संयम का अभ्यास करना चाहिए। इसी प्रकार सत्य का और जीव-हिंसा से बचने का भी अभ्यास करना चाहिए। उसके लिए यह सीखना और अभ्यास करना झंझट नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वाभाविक होना चाहिए। यह उसके लिए आनंदप्रद होना चाहिए। राजकोट के ऐसे कई लड़के मुझे याद आते हैं। मैं तुम्हें बता दूं कि जब मैं तुमसे भी छोटा था, तब सबसे ज्यादा आनंद मुझे अपने पिताजी की सेवा में मिलता था। बारह वर्ष की आयु के बाद खेल-कूद से तो मेरा वास्ता ही नहीं रहा। यदि तुम तीन गुणों का पालन करो, यदि ये तुम्हारे जीवन का अंग बन जायं, तो जहां तक मेरा ताल्लुक है, तुम अपनी शिक्षा, अपनी ट्रेनिंग, पूरी कर लोगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि इन हथियारों को लेकर तुम संसार में कहीं भी अपनी रोटी कमा सकोगे और आत्मा का, अपना तथा परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त कर सकोगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम पढ़ना-लिखना न सीखो। यह तुम्हें करना चाहिए और तुम कर भी रहे हो, परंतु यह ऐसी बात है, जिस पर तुम्हें झुंझलाना नहीं चाहिए। इसके लिए तुम्हारे पास बहुत समय पड़ा है और आखिर यह शिक्षा तो तुम्हें प्राप्त करनी ही है ताकि तुम्हारी ट्रेनिंग दूसरों के काम आ सके।

याद रखो कि आज से हमारे भाग्य में गरीबी लिखी है। जितना अधिक मैं इस बात को सोचता हूं, उतना ही अधिक मुझे लगता है कि धनवान होने के बजाय गरीब होने में अधिक सुख है; गरीबी के उपयोग धन के उपयोग से बहुत अधिक मीठे हैं।

(इसके बाद फिनिक्स आश्रम के लोगों के लिए आदेशों, संदेशों और अभिवादनों की १०५ पंक्तियां हैं। फिर लिखा है :)

ग्रौर ग्रब फिर तुम्हारे बारे में। बागबानी, ग्रपने हाथों से जमीन खोदना, खुरपी चलाना ग्रादि काम खूब करना। भविष्य में हमको इसी पर गुजारा करना है ग्रौर तुमको परिवार का कुशल बागबान बन जाना चाहिए। ग्रपने ग्रौजारों को उनकी निर्धारित जगहों पर ग्रौर बिल्कुल साफ रखा करो। ग्रपने पाठों में तुम्हें गणित ग्रौर संस्कृत पर बहुत ग्रधिक ध्यान देना चाहिए। संस्कृत तो तुम्हारे लिए परमावश्यक है। इन दोनों का ग्रध्ययन बड़ी उम्र में मुश्किल होता है। संगीत की भी उपेक्षा मत करना। तुम्हें पुस्तकों के सारे उत्तम ग्रंशों, भजनों ग्रौर पद्यों को—चाहे वे ग्रंग्रेजी में हों या गुजराती में, या हिंदी में—छांटकर उन्हें ग्रपने हाथ से सुंदर लिपि में एक कापी में उतार लेना चाहिए। साल भर के बाद यह बहुमूल्य संग्रह हो जायगा। ग्रगर तुम कायदे से काम करो, तो इन सब चीजों को ग्रासानी से कर सकते हो। उद्विग्न कभी मत होना ग्रौर न कभी यह सोचना कि तुम्हारे सामने बूते से बाहर का काम है ग्रौर फिर चिंता करने लगना कि पहले क्या करना चाहिए। ग्रगर तुम धैर्य से काम लोगे ग्रौर समय के प्रत्येक क्षण का ध्यान रखोगे, तो व्यवहार में तुम्हें पता लग जायगा कि कौनसा काम पहले करना है। मुझे ग्राशा है कि घर खर्च में उठनेवाली पाई-पाई का तुम वैसा ही सही हिसाब रखते होगे जैसाकि रखा जाना चाहिए।

मगनलालभाई से कहना कि मैं उन्हें इमर्सन के निबंध पढ़ने की सलाह देता हूं। डरहम में यह पुस्तक नौ पेंस में मिली सकती है। ये निबंध ग्रध्ययन करने योग्य हैं। वह इन्हें पढ़ें, महत्वपूर्ण ग्रंशों पर निशान लगायें ग्रौर ग्रंत में एक नोट-बुक में इनकी नकल उतार लें। मेरे विचार से इन निबंधों में एक पश्चिमी गुरु द्वारा भारतीय ग्रनुभव-ज्ञान की शिक्षा है। कभी-कभी ग्रपनी खुद की वस्तु को इस प्रकार भिन्न सांचे में ढली हुई देखकर कौतूहल होता है। उन्हें टाल्स्टाय की 'प्रभु का साम्राज्य तुम्हारे हृदय में है' (किंगडम ग्रॉव गाड इज़ विदिन यू) भी पढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। यह ग्रत्यंत तर्कयुक्त पुस्तक है। ग्रनुवाद की ग्रंग्रेजी बहुत सरल है। सबसे बड़ी बात यह है कि टाल्स्टाय जो उपदेश देते हैं, उस पर ग्रमल करते हैं।

बीजगणित की एक पुस्तक भेज देना। किसी भी संस्करण से काम चल जायगा।

—तुम्हारा बापू

पत्र-लेखक की चिंता पत्र पानेवाले को कभी-कभी खिझा देती है। मणिलाल को ग्रपने-जैसे सांचे में ढालने के लिए गांधीजी की हार्दिक ग्रौर स्नेहपूर्ण उत्कंठा

मणिलाल को शायद ऐसे धर्मोपदेश के समान लगी हो, जिसके बीच-बीच में अखरने-वाले अनगिनती घरू कामों की चर्बी के पुट हों। गांधीजी के निःस्वार्थ आदेश अपने पुत्र के भले के लिए थे, परंतु भंडार में औजारों को करीने से जमाने की बात कहनेवाले कठोर कामलेवा की निगरानी में ब्रह्मचर्य, गरीबी और कठिन श्रम की संभावना, जीवन की देहली पर खड़े हुए नौजवान के सामने पुलकित करनेवाली कोई चीज नहीं हो सकती थी।

गांधीजी अब उस स्थिति पर पहुंच गये थे कि उनकी नजर एक दूरवर्ती, भव्य लक्ष्य पर जमी हुई थी, इसलिए कभी-कभी वह अपने निकटतम लोगों को नहीं देख पाते थे। वह उनसे यह चाहते थे कि जिन कठोर मर्यादाओं की कैद उन्होंने प्रसन्नता से खुद अपने ऊपर लगा ली है, उसे वे लोग भी निभायें। परंतु वह निष्ठुर न थे। बहुत संभव है, उन्हें कभी यह कल्पना भी न हुई हो कि उनके पत्र में गहरे प्रेम तथा पिता तुल्य खबरदारी के सिवा कोई अन्य भावना है।

: ४ :

टाल्स्टाय और गांधी

मध्य रूस में एक स्लाव रईस उन्हीं आध्यात्मिक समस्याओं से जूझ रहा था, जिन पर दक्षिण अफरीका में इस हिंदू वकील का ध्यान लग रहा था। महाद्वीपों के उस पार से काउंट लिओ टाल्स्टाय मोहनदास करमचंद गांधी का मार्ग-दर्शन करता था और उसके संघर्ष में शांति प्राप्त करता था।

टाल्स्टाय से गांधीजी का परिचय टाल्स्टाय की पुस्तक 'दि किंगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' के द्वारा हुआ।

गांधीजी ने टाल्स्टाय से प्रथम व्यक्तिगत संपर्क एक लंबे पत्र के द्वारा किया। यह पत्र अंग्रेजी में वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटल, ४ विक्टोरिया स्ट्रीट, एस० डब्ल्यू० लंदन से १ अक्तूबर १९०९ को लिखा गया था और वहां से मध्य रूस में टाल्स्टाय के पास यासनाया पोलियाना रवाना किया गया था। इस पत्र में गांधीजी ने इस रूसी उपन्यासकार को ट्रांसवाल के सविनय अवज्ञा आंदोलन से अवगत कराया था।

टाल्स्टाय ने अपनी डायरी के २४ सितंबर १९०९ (रूसी तारीखें उन दिनों पश्चिमी तारीखों से तेरह दिन पीछे चलती थीं) के विवरण में लिखा था—"ट्रांस-वाल के एक हिंदू (भारतीय) से मनोहारी पत्र प्राप्त हुआ।" चार दिन बाद

टाल्स्टाय ने अपने एक घनिष्ठ मित्र व्लादिमीर जी० शर्टकॉफ को, जिसने बाद में उनकी संग्रहीत रचनाओं का संपादन किया, पत्र में लिखा—"ट्रांसवाल के हिंदू के पत्र ने मेरे हृदय को छुआ है।"

यास्नाया पोल्याना से ७ अक्तूबर (२० अक्तूबर) १९०९ के पत्र में टाल्स्टाय ने रूसी भाषा में गांधीजी को उत्तर भेजा। टाल्स्टाय की पुत्री ताशियाना ने इसे अंग्रेज़ी में अनुवाद करके गांधीजी को भेजा। टाल्स्टाय ने लिखा था—"मुझे अभी आपका बड़ा दिलचस्प पत्र मिला, जिसे पढ़कर मुझे बहुत आनंद हुआ। ट्रांसवाल के हमारे भाइयों तथा सहकर्मियों की ईश्वर सहायता करे। कठोरता के विरुद्ध कोमलता का और अहंकार तथा हिंसा के विरुद्ध विनय तथा प्रेम का यह संघर्ष हमारे यहां हर साल अपनी अधिकाधिक छाप डाल रहा है।...मैं बंधुत्व की भावना से आपका अभिवादन करता हूं और आपसे संपर्क होने में मुझे हर्ष है।"

टाल्स्टाय को गांधीजी का दूसरा पत्र जोहांसबर्ग से ४ अप्रैल १९१० को लिखा गया और उसके साथ गांधीजी की छोटी-सी पुस्तिका 'इंडियन होम रूल' ('हिंद स्वराज्य') भेजी गई। इस पत्र में गांधीजी ने लिखा था—"आपका एक नम्र अनुयायी होने के नाते मैं आपको अपनी लिखी हुई एक पुस्तिका भेज रहा हूं। यह मेरी गुजराती रचना का मेरा ही किया हुआ (अंग्रेज़ी) अनुवाद है।...मैं आपको बिल्कुल परेशान नहीं करना चाहता, परंतु यदि आपका स्वास्थ्य इजाज़त दे, और यदि आपको यह पुस्तिका पढ़ने का समय मिल सके, तो कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तिका पर आपकी आलोचना की मैं बहुत ही कद्र करूंगा।"

१९ अप्रैल १९१० को टाल्स्टाय ने अपनी डायरी में लिखा—"आज सुबह दो जापानी आये, यूरोपीय सभ्यता पर दीवाने होनेवाले उत्तेजित आदमी। दूसरी ओर हिंदू का पत्र और पुस्तक यूरोपीय सभ्यता की तमाम कमियों का, और उसकी संपूर्ण अपूर्णता का भी, बोध प्रकट करते हैं।"

दूसरे दिन टाल्स्टाय की डायरी में एक और उल्लेख है—"कल मैंने सभ्यता पर गांधी के विचार पढ़े। बहुत बढ़िया।" और फिर अगले दिन—"गांधी के बारे में एक पुस्तक पढ़ी, बहुत महत्वपूर्ण। मुझे उनको लिखना चाहिए।" गांधीजी के बारे में पुस्तक थी जे०जे० डोक की लिखी हुई 'बायोग्राफी ऑव गांधी' जो उन्होंने टालसस्टाय को भेजी थी।

एक दिन बाद टाल्स्टाय ने अपने मित्र शर्टकॉफ को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने गांधीजी को 'हमारा, 'मेरा' बहुत नजदीकी व्यक्ति' बतलाया।

टाल्स्टाय ने २५ अप्रैल (८ मई) १९१० को यास्नाया पोल्याना से पत्र भेजा। उन्होंने लिखा :

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र और आपकी पुस्तक 'इंडियन होम रूल' अभी मिले। जिन बातों और प्रश्नों की आपने अपनी पुस्तक में विवेचना की है, उनके कारण मैंने उसे बहुत दिलचस्पी के साथ पढ़ा। निष्क्रिय प्रतिरोध केवल भारत के ही लिए नहीं, बल्कि सारी मानवता के लिए सर्वाधिक महत्व का प्रश्न है। मैं आपके पिछले पत्र नहीं ढूंढ़ सका, लेकिन जे० डोस (यहां टाल्स्टाय ने गलती कर दी) का लिखा हुआ आपका जीवन-चरित्र मेरे देखने में आया। इसने भी मुझे बहुत आकर्षित किया और आपके पत्र को जानने और समझने की संभावना प्रदान की। इन दिनों मेरी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए आपकी पुस्तक और आपके कार्यों के संबंध में, जिनकी मैं बहुत सराहना करता हूं, मुझे जो कुछ कहना है वह लिखने से रुक गया हूं। परंतु तबीयत ठीक होते ही लिखूंगा।

आपका मित्र और भाई,
एल. टाल्स्टाय

यह है हिंदी रूपांतर टाल्स्टाय की उत्कृष्ट रूसी भाषा के अंग्रेजी अनुवाद का, जो गांधीजी को भेजा गया था।

गांधीजी का तीसरा पत्र १५ अगस्त १९१० को, २१-२४ कोर्ट चैंबर्स, कार्नर रिसिक ऐंड ऐंडरसन स्ट्रीट्स, जोहांसबर्ग से भेजा गया। इसमें गांधीजी ने टाल्स्टाय के ८ मई १९१० के पत्र की धन्यवाद के साथ प्राप्ति स्वीकार की और लिखा—"पुस्तक की जिस ब्यौरेवार आलोचना का वादा आपने कृपापूर्वक अपने पत्र में किया है, उसकी मैं प्रतीक्षा करूंगा।" गांधीजी ने टाल्स्टाय को उस टाल्स्टाय-फार्म की भी सूचना दी जो केलेनबेक ने तथा उन्होंने स्थापित किया था। उन्होंने कहा कि फार्म के बारे में केलेनबेक उन्हें (टाल्स्टाय को) अलग पत्र लिख रहे हैं। गांधीजी तथा केलेनबेक के पत्रों ने, जिनके साथ 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक के कई अंक भेजे गये थे, गांधीजी के प्रति टाल्स्टाय की दिलचस्पी बहुत बढ़ा दी। ६ (१९) सितंबर की अपनी डायरी में टाल्स्टाय ने लिखा था : "निष्क्रिय प्रतिरोध उपनिवेश के बारे में ट्रांसवाल से हर्षदायक समाचार।" इस समय टाल्स्टाय गंभीर आध्यात्मिक निराशा की हालत में और शरीर से रुग्ण थे। फिर भी उन्होंने गांधीजी के पत्र का उसी दिन उत्तर दे दिया। टाल्स्टाय ने यह उत्तर ५ व ६ (१८ व

१९) सितंबर को शाम के वक्त लिखाया था। ७वीं (२०वीं) को टाल्स्टाय ने पत्र की गलतियां सुधारीं और रूसी भाषा में उसे शर्टकॉफ के पास अंग्रेजी अनुवाद के लिए भेज दिया।

टाल्स्टाय का यह पत्र गांधीजी के पास शर्टकॉफ ने भिजवाया था। इस पत्र के साथ शर्टकॉफ ने अपना भी एक पत्र रख दिया था, जिसमें उसने लिखा था—"मेरे मित्र लियो टाल्स्टाय ने मुझसे अनुरोध किया है कि आपके १५ अगस्त के पत्र की प्राप्ति स्वीकार करूं और आपके नाम उनके ७ सितंबर के रूसी भाषा में लिखे गये पत्र का अंग्रेजी अनुवाद कर दूं।

"मि० केलेनबेक के बारे में जो कुछ आपने लिखा, उससे टाल्स्टाय को बहुत दिलचस्पी हुई है और उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं उनकी ओर से मि० केलेनबेक के पत्र का उत्तर दे दूं। आपको तथा आपके सहकारियों को टाल्स्टाय हार्दिक अभिवादन तथा आपके कार्य की सफलता के लिए आंतरिक शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं। आपके कार्य की टाल्स्टाय जो सराहना करते हैं, उसका पता आपको उनके पत्र के संलग्न अनुवाद से लगेगा। अंग्रेजी अनुवाद में अपनी भूलों के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूं। परंतु रूस के देहात में रहने के कारण मैं अपनी गलतियां सुधरवाने में किसी अंग्रेज की सहायता का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

"टाल्स्टाय की अनुमति से उनका आपके नाम यह पत्र एक छोटी-सी पत्रिका में, जिसे लंदन के हमारे कुछ मित्र निकालते हैं, प्रकाशित किया जायगा। पत्रिका की एक प्रति पत्र के साथ आपके पास भेजी जायगी और 'फ्री एज प्रेस' द्वारा प्रकाशित टाल्स्टाय की रचनाओं के कुछ अंग्रेजी प्रकाशन भी।

"चूंकि मुझे यह अत्यंत वांछनीय प्रतीत होता है कि आपके आंदोलन के बारे में अंग्रेजी में अधिक जानकारी उपलब्ध हो, मैं अपनी तथा टाल्स्टाय की एक बड़ी मित्र, ग्लासगो की मिसेज मेयो, को सुझाव भेज रहा हूं कि वह आपसे पत्र-व्यवहार करें।..."

शर्टकॉफ ने मि० केलेनबेक को अलग पत्र भेजा।

गांधीजी को टाल्स्टाय का यह पत्र सारे पत्र-व्यवहार में सबसे अधिक लंबा था। ७ (२० सितंबर) की तारीखवाला और शर्टकॉफ द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित यह पत्र गांधीजी के पास भिजवाने के लिए इंगलैंड में एक मध्यस्थ के पास भेजा गया था। यह व्यक्ति उस समय बीमार था और पत्र १ नवंबर की डाक में छोड़ा

गया। इसलिए ट्रांसवाल में यह पत्र गांधीजी को काउंट टाल्स्टाय की मृत्यु के कई दिन बाद मिला।

टाल्स्टाय ने लिखा था—"ज्यों-ज्यों मेरी आयु बीतती जाती है, और खासकर अब जबकि मैं मृत्यु की निकटता को स्पष्ट महसूस कर रहा हूं, मैं सबसे वह बात कहना चाहता हूं, जो मैं अत्यंत स्पष्ट रूप से अनुभव करता हूं और जो मेरे विचार से बड़े महत्व की है—यानी वह चीज जो निष्क्रिय प्रतिरोध कहलाती है, परंतु जो वास्तव में उस प्रेम की शिक्षा के सिवा और कुछ नहीं है, जो झूठी व्याख्या से कलुषित हुआ है।

"वह प्रेम...सर्वोच्च है तथा मानव-जीवन का एकमात्र नियम है, और अपनी आत्मा की गहराई में हर मानव-जीव (जैसाकि हम बालकों में बिल्कुल स्पष्ट देखते हैं) इसे महसूस करता है और जानता है; वह इसे जानता है जबतक कि वह संसार की झूठी शिक्षाओं में उलझ नहीं जाता। इस सिद्धांत की घोषणा संसार के भारतीय तथा चीनी, हिब्रू, यूनानी, रोमन आदि सभी ऋषियों ने की है।...

"'वास्तव में जैसे ही प्रेम में बल का प्रवेश हुआ, जीवन के सिद्धांत के रूप में प्रेम बाकी नहीं रहा और न रह सकता है। और चूंकि प्रेम का सिद्धांत बाकी नहीं रहा, इसलिए कोई सिद्धांत बाकी नहीं रहा, सिवा हिंसा अर्थात बलवत्तम की शक्ति के। ईसाई मनुष्य-जाति उन्नीस सदियों से इस प्रकार जीवित है।..."

मृत्यु के द्वार पर खड़ा यह बहुत बूढ़ा आदमी एक नवयुवक को इस प्रकार लिख रहा था। गांधीजी युवा थे, आत्मा में अपनी आयु से पच्चीस वर्ष कम बूढ़े थे। टाल्स्टाय को गहरा आंतरिक विषाद था। 'वार एंड पीस'[1] की अंतर्दृष्टि-वाला कोई भी व्यक्ति, जो यह महसूस करता हो कि ईसा के उपदेशों में उपलब्ध आनंद की कुंजी का उपयोग करने में मानवता ने इन्कार किया है या असमर्थता दिखाई है, दुखी हुए बिना नहीं रह सकता। परंतु गांधीजी का विश्वास था कि वह अपना और दूसरों का सुधार कर सकते हैं। वह ऐसा कर भी रहे थे। यह चीज उन्हें आनंद प्रदान करती थी।

---

१. टाल्स्टाय का सुप्रसिद्ध उपन्यास। 'मंडल' से इसका अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।—सं०

: ५ :

भावी का पूर्वाभास

गांधीजी बुरे-से-बुरे व्यक्ति के बारे में भी हताश नहीं होते थे। दक्षिण अफरीका के सत्याग्रह के दौरान में उन्हें पता लगा कि उनका एक निकट भारतीय सहयोगी सरकारी मुखबिर है। बाद में इस व्यक्ति ने गांधीजी का खुला विरोध किया, लेकिन जब वह बीमार पड़ा और खर्च से तंग हो गया, तो गांधीजी उसके यहां गये और उसे धन की सहायता दी। समय पाकर यह पतित अपनी भूल पर पछताया।

जल्दी ही एक नया खतरा नजर आने लगा। दक्षिण अफरीका के संयुक्त संघ का नक्शा बन रहा था। संभावना थी कि यह भी ट्रांसवाल की तरह का भारत-विरोधी कानून बना डाले। गांधीजी ने लंदन में पार्लमिंट के सदस्यों को समझाने का विचार किया। जनरल बोथा और जनरल स्मट्स वहां पहले ही पहुंच चुके थे और संघ के निर्माण की व्यवस्था कर रहे थे।

गांधीजी की दृष्टि हमेशा ऊंची रहती थी। इस बार उन्होंने मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर और १६०४ में भारत के कार्यवाहक वाइसराय लार्ड एंप्टहिल का क्रियात्मक सहयोग प्राप्त कर लिया। १० जुलाई १६०९ को इंग्लैंड पहुंचने से लगाकर नवंबर में दक्षिण अफरीका को वापस आने तक गांधीजी संपादकों, पार्लमिंट के सदस्यों, सरकारी अफसरों तथा सब जातियों के नागरिकों से मिले, उनकी उत्कटता ने बहुतों को मोहित और प्रभावित किया।

इसके अलावा और जाहिरा तौर पर पहली बार, गांधीजी ने इस लंदन-निवास में भारत की स्वाधीनता की समस्या से अपना संबंध जोड़ना शुरू किया। इंग्लैंड में उन्होंने सब रंगों के राजनैतिक विचारोंवाले भारतीयों को पकड़ा—राष्ट्रवादी, होमरूलवादी, अराजकतावादी और हत्या का समर्थन करनेवाले। एक ओर तो वह इनके साथ रातों बहस करते थे, दूसरी ओर उनके खुद के राजनैतिक विचार और दर्शन रूप ग्रहण कर रहे थे। ६ अक्तूबर १६०९ को वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटल से लार्ड एंप्टहिल के नाम भेजे गये पत्र में गांधीजी के कुछ वे तत्व पहली बार अभिव्यक्त हुए, जो बाद में उनके सिद्धांत के तंतु बने।

अपने-आपको भारत को आजाद करानेवाला निमित्त या नेता समझने का कोई दावा करने से बहुत दिन पहले गांधीजी जानते थे कि उनका लक्ष्य केवल यह नहीं

था कि ब्रिटिश शासन के स्थान पर भारतीय शासन हो जाय। इसका संकेत उन्होंने एंप्टहिल को लिखे गये इस पत्र में भी किया था। उनकी दिलचस्पी सरकारों में नहीं, बल्कि साधनों और साध्यों में थी, इसमें नहीं थी कि अधिकार की गद्दी पर कोई विलियम बैठता है या चंद्र, बल्कि इसमें थी कि किसके क्रिया-कलाप अधिक सभ्यतापूर्ण हैं।

अक्तूबर १९१२ में अंग्रेजी तथा अर्थशास्त्र के प्रोफेसर और भारत सेवक समिति के अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले एक महीने के लिए दक्षिण अफरीका आये। उनके आने का उद्देश्य था भारतीय समुदाय की अवस्था का अनुमान करना और उसके सुधारने में गांधीजी की सहायता करना।

बहुत से भाषण देने के बाद और बहुत से भारतीयों तथा गोरों से बातचीत करने के बाद गोखले ने जनरल बोथा और जनरल स्मट्स से दो घंटे मुलाकात की।

जब गोखले मुलाकात करके वापस आये, तो उन्होंने सूचना दी कि आवास-कानून का जातीय प्रतिबंध बिल्कुल हटा दिया जायगा और गिरमिट समाप्त होने के बाद दक्षिण अफरीका में बसनेवाले गिरमिटिया मजदूरों से लिया जानेवाला तीन पौंड का टैक्स भी उठा लिया जायगा।

गांधीजी ने ताना दिया—"मुझे इसमें बहुत शंका है, आप मंत्रियों को उतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूं।"

: ६ :

विजय

स्मट्स ने असेंबली भवन में यह घोषणा करके, कि नेटाल के यूरोपीय लोग भूतपूर्व गिरमिटियों पर से तीन पौंड वार्षिक का कर हटाये जाने के लिए तैयार नहीं हैं, अंतिम संघर्ष निकट ला दिया। सविनय अवज्ञा के दुबारा शुरू होने के लिए यह इशारा था। गिरमिटिया मजदूरों और गिरमिट से छूटे हुए मजदूरों ने इसे गोखले को दिये गये वचन का भंग माना। वे सामूहिक रूप में सत्याग्रह के लिए आगे-आने लगे।

नये अभियान में पहला कदम यह था कि स्वयंसेविकाओं की एक टुकड़ी ट्रांस-वाल को पार करके नेटाल में जाकर गिरफ्तार होनेवाली थी। इन 'नेटाली' बहनों को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इस पर रोष फैला और नये सत्याग्रही

सामने आये। ट्रांसवाली बहनों को गिरफ्तार नहीं किया गया। ये न्यूकासल पहुंच गईं और वहां उन्होंने भारतीय मजदूरों को औजार डालने के लिए राजी कर लिया। तब सरकार ने उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया। नतीजा यह हुआ कि खनिकों की हड़ताल फैल गई।

गांधीजी फिनिक्स से न्यूकासल दौड़े गये। उन्होंने हड़तालियों को सलाह दी कि मिस्टर और मिसेज डी० एम० लाज़रस के घर के बाहर कैंप लगायें। कुछ ही दिनों में लाज़रस के मकान के नजदीक पांच हजार हड़ताली जमा हो गये।

न्यूकासल से रवाना होने का दिन १३ अक्तूबर नियत किया गया। सब लोग बिना किसी घटना के चार्ल्सटाउन जा पहुंचे। सरकार ने चार्ल्सटाउन में उन्हें गिरफ्तार नहीं किया, न तीन पौंडवाला कर हटाया। तब गांधीजी ने बीस मील रोज चलकर आठ दिन में टाल्स्टाय फार्म पहुंचने का इरादा किया।

गांधीजी ने अपनी सेना की गिनती की। उसमें २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे। गांधीजी ने लिखा है—"६ नवंबर१९१३ को सुबह ६-३०बजे हमने प्रार्थना की और भगवान का नाम लेकर कूच कर दिया।"

पहला पड़ाव पामफोर्ड में डाला गया।

गांधीजी सोने की तैयारी कर रहे थे कि उन्होंने पुलिस के सिपाही को लालटेन लिये अपनी ओर आते देखा।

पुलिस अफसर ने कहा—"मेरे पास आपकी गिरफ्तारी का वारंट है। मैं आपको गिरफ्तार करना चाहता हूं।"

गिरफ्तार करके गांधीजी को वोल्कस्रस्ट ले जाया गया और वहां अदालत में उन पर मुकदमा चलाया गया। न्यायाधीश ने गांधीजी को जमानत पर छोड़ दिया। केलेनबेक उन्हें मोटर में बिठाकर फिर भारतीय 'सेना' में ले गये।

दूसरे दिन भारतीयों ने स्टैंडर्टन में पड़ाव डाला। जब गांधीजी रोटियां और मुरब्बा बांट रहे थे, तब एक मजिस्ट्रेट आया और बोला—"आप मेरे कैदी हैं।"

"ऐसा लगता है कि मुझे तरक्की मिल गई है," गांधीजी ने हंसते हुए विनोद किया—"केवल पुलिस अफसर के स्थान पर अब मजिस्ट्रेट को मुझे पकड़ने का कष्ट उठाना पड़ रहा है।"

इस बार गांधीजी को फिर जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनके पांच साथियों को जेल भेज दिया गया।

दो दिन बाद, ९ नवंबर को, जबकि गांधीजी और पोलक भारतीयों की लंबी

कतार के आगे-आगे चल रहे थे, एक अफसर ने गांधीजी को फिर गिरफ्तार कर लिया।

इस तरह चार दिन में गांधीजी तीन बार गिरफ्तार हुए।

१० नवंबर को बालफोर में सारे सत्याग्रही पोलक-सहित गिरफ्तार कर लिये गये। पोलक को वोल्कस्रस्ट जेल भेजा गया, जहां केलेनबेक पहले ही मौजूद थे।

१४ नवंबर को वोल्कस्रस्ट में गांधीजी को अदालत में पेश किया गया। उन्होंने अपना जुर्म कबूल किया। लेकिन अदालत एक कैदी को सिर्फ जुर्म स्वीकार करने पर ही सजा देने को तैयार नहीं हुई। इसलिए उसने गांधीजी से कहा कि अपने विरुद्ध गवाह पेश करें। गांधीजी ने ऐसा ही किया और केलेनबेक तथा पोलक ने उनके विरुद्ध गवाही दी।

चौबीस घंटे बाद गांधीजी ने केलेनबेक के विरुद्ध गवाही दी और इसके दो दिन बाद गांधीजी और केलेनबेक ने पोलक के विरुद्ध बयान दिये। इसलिए न्यायाधीश ने अनिच्छा से इन तीनों को तीन-तीन महीने की सख्त कैद की सजा दी और इन्हें वोल्कस्रस्ट जेल में रखा गया।

हड़ताली खनिकों का इससे बुरा हाल हुआ। उन्हें रेलगाड़ियों में भरकर वापस खानों पर पहुंचा दिया गया। लेकिन कोड़े, लाठियां और ठोकरें पड़ने पर भी उन्होंने कोयले की खान में जाने से इन्कार कर दिया।

प्रतिरोध की लहर दिन-दिन बढ़ती गई। करीब पचास हजार गिरमिटिया मजदूर हड़ताल पर थे। कई हजार स्वतंत्र भारतीय जेलों में थे। भारत से धन की नदी चली आ रही थी। वाइसराय के दफ्तर तथा लंदन के बीच और लंदन तथा दक्षिण अफरीका के बीच लंबे-लंबे सरकारी संदेशों के तार खटखटा रहे थे।

१८ दिसंबर १९१३ को सरकार ने अचानक गांधीजी, केलेनबेक और पोलक को छोड़ दिया।

वाइसराय तथा व्हाइट हाल के ब्रिटिश अधिकारियों का दबाव पड़ने पर दक्षिण अफरीका के भारतीयों की शिकायतों की जांच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया।

परंतु जेल से रिहा होने पर गांधीजी ने एक सार्वजनिक वक्तव्य में कहा कि यह कमीशन एक दल के प्रतिनिधियों से भरा हुआ है और इसके पीछे इंग्लैंड तथा भारत दोनों की सरकारों और जनमत की आंखों में धूल झोंकने की नीयत है।

स्मट्स ने कमीशन में भारतीयों को या भारतीय-समर्थकों को लेने का गांधीजी का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

तदनुसार गांधीजी ने घोषणा की कि १ जनवरी १९१४ को वह भारतीयों की एक टुकड़ी के साथ गिरफ्तार होने के लिए डरबन से कूच करेंगे।

जिस समय भारतीयों के सामूहिक कूच का यह परेशान करनेवाला खतरा सरकार के सिर पर लटक रहा था, उसी समय दक्षिण अफ्रीका की रेलों के तमाम गोरे-कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। गांधीजी ने अपने कूच का कार्यक्रम तुरंत स्थगित कर दिया। उन्होंने बतलाया कि प्रतिद्वंद्वी को तंग करना, चोट पहुंचाना, नीचा दिखाना या मिटाना, या उसे कमजोर करके विजय प्राप्त करना, सत्याग्रह की कार्य-प्रणाली का अंग नहीं है।

यद्यपि स्मट्स रेलवे हड़ताल में व्यस्त थे, तथापि उन्होंने गांधीजी को बात-चीत के लिए बुलाया। एक के बाद दूसरी बात चलती रही। अंततः सरकार ने समझौते का सिद्धांत स्वीकार कर लिया।

स्मट्स तथा गांधीजी ने अपनी-अपनी सारी बातें और मसविदे सामने रख दिये। इसमें तब हर एक शब्द तौला गया, हर एक वाक्य यथार्थता की दृष्टि से तोला-तराशा गया। ३० जून १९१४ को दोनों युद्ध-विचारी समझौताकारों ने पूर्ण समझौते की शर्तों को व्यक्त करनेवाले पत्रों का आदान-प्रदान किया।

लड़ाई जीतने पर गांधीजी १८ जुलाई १९१४ को श्रीमती गांधी तथा केलेन-बेक के साथ इंग्लैंड के लिए रवाना हो गये।

दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़ने से पहले गांधीजी ने मिस श्लेसिन और पोलक को चप्पलों की एक जोड़ी, जो उन्होंने जेल में बनाई थी, दी और कहा कि यह जनरल स्मट्स को भेंट के रूप में दे दी जाय। जनरल स्मट्स ने अपने फार्म पर हर साल गर्मियों में उन चप्पलों का इस्तेमाल किया। बाद में 'गांधी-अभिनंदन ग्रंथ' के अपने एक लेख में जनरल स्मट्स ने अपने को एक पीढ़ी पहले गांधी का प्रति-द्वंद्वी बताया और कहा—'महात्मा-जैसे व्यक्ति हमें मामूली और निस्सारता की भावना से बचाते हैं और भलाई करने से कभी न थकने की प्रेरणा देते हैं।

'दक्षिण अफ्रीका के यूनियन के प्रारंभिक दिनों में इन लोगों के संघर्ष की कहानी स्वयं गांधी ने बताई है और उसे सब जानते हैं। एक ऐसे व्यक्ति का विरोध करना मेरे भाग्य में बदा था, जिसके लिए उस समय भी मेरे मन में अत्य-धिक सम्मान था। ...वह कभी भी किसी स्थिति के मानवीय पक्ष को नहीं भूले, न

था। कुछ हुए, न कुछ ने मर्यादाहीन हुए और सबसे कठिन परिस्थितियों में भी उनकी विनोद-भावना स्थिर रही। हमारे आज के युग में जो निर्दय बर्बरता पाई जाती है, उससे उनका स्वभाव और उनकी भावना उस समय भी सर्वथा भिन्न थी और बाद में भी रही।...

“मुझे, साफ स्वीकार करना चाहिए,” स्मट्स ने आगे लिखा—“कि उस समय उनकी क्रियाएं मेरे लिए बड़ी परेशानी की थीं। ...गांधी की एक नई कला थी। उनकी पद्धति जान-बूझकर कानून तोड़ने और अपने अनुयायियों को एक जन-आंदोलन के रूप में संगठित करने की थी।...दोनों प्रदेशों में एक असंतोष और बेचैनी-भरी उत्तेजना पैदा हो गई। बहुत बड़ी संख्या में भारतीय गैर-कानूनी व्यवहार के लिए गिरफ्तार करने पड़े और गांधी को जेल में आराम और शांति का समय मिल गया, जो कि निस्संदेह वह चाहते थे। उनके लिए सारी चीज योजना-बद्ध रूप से हुई। लेकिन मेरे लिए, जिस पर कि कानून और व्यवस्था के संरक्षण का दायित्व था, सदा की भांति निश्चय हो गया कि कानून की सारी जिम्मेदारी को निभाऊं, उस कानून की, जिसे भारी लोकमत का समर्थन नहीं था। अंत में जब कानून वापस लेना पड़ा, तो उनकी बेचैनी भी मुझे सहन करनी पड़ी।” १९३९ में गांधीजी के सत्तरवें जन्म-दिन पर स्मट्स ने मित्रता के प्रतीक रूप उन चप्पलों को गांधीजी को लौटा दिया।

गांधीजी की इस भेंट का जिक्र करते हुए स्मट्स ने लिखा था—“तबसे मैंने बहुत-सी गर्मियों में ये चप्पलें पहनी हैं, हालांकि मैं महसूस करता हूं कि मैं ऐसे महापुरुषों के जूतों में खड़े होने[1] के योग्य भी नहीं हूं।”

ऐसी विनोद-प्रियता और उदारता ने सिद्ध कर दिया कि वह गांधी से टक्कर लेनेवाले योग्य पात्र थे।

गांधीजी की बहुत-कुछ प्रभावशालिता इसीमें थी कि वह अपने प्रतिद्वंद्वी के हृदय में उच्चतम गांधीवादी प्रेरणाएं जाग्रत कर देते थे।

गांधीजी के उपायों की दृढ़ता के कारण स्मट्स के लिए उनका विरोध करना कठिन हो गया था। गांधीजी को विजय इसलिए नहीं प्राप्त हुई कि स्मट्स में

---

१. अंग्रेजी में 'स्टैंड इन वन्स शूज' (stand in one's shoes) एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है—किसी व्यक्ति का स्थान लेना। स्मट्स ने यहां इस वाक्य का शाब्दिक अर्थ में प्रयोग किया है।—सं०

उनसे लड़ने की शक्ति नहीं रही थी, बल्कि इसलिए प्राप्त हुई कि स्मट्स का हृदय उनसे लड़ना ही नहीं चाहता था।

ग्राक्सफोर्ड के प्रोफेसर गिल्बर्ट मरे ने लिखा था—"इस ग्रादमी से व्यवहार करने में सावधान रहो, क्योंकि यह न तो भोगों की तनिक भी परवाह करता है, न शरीर-सुख की या प्रशंसा की वृद्धि की परवाह करता है, बल्कि यह तो वह काम करने पर कटिबद्ध रहता है, जिसे वह ठीक समझता है। वह एक खतरनाक ग्रौर परेशान करनेवाला शत्रु है, क्योंकि उसका शरीर, जिसे ग्राप कभी भी जीत सकते हैं, उसकी ग्रात्मा को जरा भी पकड़ में नहीं ग्राने देता।"

यह था गांधी—जिसमें नेतृत्व का गुण था।

दूसरा भाग

गांधीजी भारत में

: १ :

घर वापस

"क्या मैं अपनी बात का विरोध करता हूं ?" गांधीजी ने पूछा—"जड़ता तो भूत है।" गांधीजी किसी भी वाद में बंधे न थे। उनके विचारों या कार्यों का संचालन किसी बद्धमूल सिद्धांत के अनुसार नहीं होता था। उन्होंने कभी किसी धारा के अनुरूप अपने को काट-छांटकर नहीं बनाया। अपने-आपसे भी विरुद्ध जाने का अधिकार उन्होंने सुरक्षित रखा।

गांधीजी कहते थे कि उनका जीवन तो अनंत प्रयोग है। सत्तर वर्ष की उम्र में भी वह प्रयोग करते रहे। उनमें अनुदारता नहीं थी। वह रूढ़ि-बद्ध हिंदू या राष्ट्रीयतावादी अथवा शांतिवादी नहीं थे।

वह स्वाधीन-चेता, बंधन-मुक्त थे और उनके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी। इसलिए लोग उनसे उभड़ते थे और सहज पार नहीं पा सकते थे। उनसे बातचीत करना मानो खोज-संबंधी यात्रा करने जैसा था। वह बिना किसी बाहरी सहायता के जहां चाहे जाने का साहस कर सकते थे।

जब उन पर आक्रमण होता था, तो शायद ही कभी अपना बचाव करते थे। भारत के साथ वह एकरूप थे और कभी किसीकी निंदा नहीं करते थे। वह विनम्र और सीधे-सादे थे और उनमें किसी प्रकार का दिखावा न था। इस प्रकार अनुत्पादक मानसिक श्रम से बचे रहकर वह सदा क्रियात्मक कार्यों के लिए खुले रहते थे। केवल लोकप्रियता प्राप्त करने अथवा अपने अनुयायियों को जीतने या खुश करने के लिए उन्होंने न कभी कोई काम किया, न कुछ कहा। वह अक्सर किसी भी चीज को नई दिशा देते थे। अपने कार्य को पूरा करने की उनकी आंतरिक आवश्यकता प्रमुख होती थी, भले ही उसका प्रभाव उनके अनुयायियों पर कुछ भी क्यों न पड़े।

गांधीजी, श्रीमती गांधी और केलेनबेक दक्षिण अफरीका से इंग्लैंड पहुंचे। उसके दो ही दिन बाद प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। गांधीजी ने महसूस किया कि भारतीयों को भी ब्रिटेन की कुछ सहायता करनी चाहिए। तदनुसार उन्होंने अपने नेतृत्व में घायलों की परिचर्या के लिए एक टुकड़ी तैयार करने का बीड़ा उठाया।

गांधीजी द्वारा युद्ध का समर्थन व्यक्तिगत रूप से दुखप्रद और राजनैतिक दृष्टि से हानिकर था, परंतु वह आराम की अपेक्षा सत्य को श्रेयस्कर मानते थे।

जिस समय गांधीजी के युद्ध-समर्थक रुख के कारण छोटा-सा तूफान उनके सिर पर मंडरा रहा था, उनकी फुस्फुस-प्रदाह (प्लूरिसी) की बीमारी ने, जो उपवासों के कारण बढ़ गई थी, गंभीर रूप धारण कर लिया। डाक्टरों ने उन्हें आदेश दिया कि वह भारत चले जायं। तदनुसार ९ जनवरी १९१५ को कस्तूरबा के साथ वह बंबई आ पहुंचे। जर्मन होने के कारण केलेनबेक को भारत आने की अनुमति नहीं दी गई और वह दक्षिण अफरीका वापस चले गये।

गांधीजी की फिनिक्स-फार्म से बिदाई के साथ-ही-साथ उनका परिवार भी, अन्य परिवारों के साथ दक्षिण अफरीका से भारत आ गया। इस दल के लड़कों के अस्थायी निवास के लिए गांधीजी ने रवींद्रनाथ ठाकुर के शांति-निकेतन को सबसे अच्छा स्थान पसंद किया।

गांधीजी और ठाकुर समकालीन थे और भारत के बीसवीं सदी के पुनर्जीवन के मुख्य हेतुओं के रूप में निकट संबद्ध थे। परंतु गांधीजी गेहूं का खेत थे और ठाकुर गुलाब का बाग; गांधीजी काम करनेवाले हाथ थे और ठाकुर गानेवाली आवाज; गांधीजी सेनापति थे और ठाकुर अग्रगामी दूत; गांधीजी मुंडे हुए सिर और चेहरेवाले कृश तपस्वी थे और ठाकुर विशालकाय, लंबे सफेद बाल और सफेद दाढ़ीवाले रईस-मनस्वी, जिनके चेहरे पर उच्च कोटि का पितृतुल्य सौंदर्य था; गांधीजी शुद्ध त्याग के उदाहरण थे, ठाकुर स्वतंत्रता के आलिंगन को आह्लाद के सहस्र बंधनों में अनुभव करते थे। परंतु भारत और मानवना के लिए प्रेम के कारण दोनों एक थे। ठाकुर भारत को दूसरे लोगों के कचरा-पात्रों से चीथड़े बटोरनेवाला देखकर रोते थे और सब मानव-जातियों की भव्य समस्वरता के लिए प्रार्थना करते थे।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के ये दो महानतम भारतीय, गांधी और ठाकुर, एक-दूसरे का बड़ा सम्मान करते थे। मालूम होता है कि गांधीजी को 'महात्मा' की उपाधि ठाकुर ने ही दी थी। गांधीजी ठाकुर को 'गुरुदेव' कहते थे। मनोभावों में अपृथक् तथा अंत तक आत्मीय रहते हुए भी दोनों में शाब्दिक युद्ध चलते रहते थे, क्योंकि दोनों न्यारे-न्यारे थे। गांधीजी का मुख अतीत की ओर रहता था और वह उसमें से भावी इतिहास का निर्माण करते थे। धर्म,जाति तथा हिंदू पौराणिक गाथाएं उनके रोम-रोम में व्याप्त थीं। ठाकुर यांत्रिक तथा पश्चिमी संस्कृतिवाले वर्तमान

को अंगीकार करते थे, परंतु इसके बावजूद पूर्वी कविता रचते थे। चूंकि भारत में प्रांतीय मूल इतना महत्व रखते हैं, इसलिए शायद यह भेद विलग गुजरात तथा उदारमना बंगाल का था। गांधीजी मितव्ययी थे। ठाकुर अपव्ययी थे। गांधीजी ने ठाकुर को लिखा था—"आपत्तिग्रस्त जनसमूह केवल शक्तिप्रद भोजन की ही एक मात्र कविता की मांग करता है।" ठाकुर उन्हें संगीत देते थे। शांतिनिकेतन में ठाकुर के छात्र नाचते और गाते थे, मालाएं गूंथते थे और जीवन को मधुर तथा सुंदर बनाते थे।

भारत लौटने के कुछ ही दिन बाद जब गांधीजी वहां यह देखने के लिए पहुंचे कि उनके फिनिक्स-फार्म के लड़कों का क्या हाल-चाल है, तो उन्होंने वहां की काया ही पलट दी। दक्षिण अफरीका के अपने मित्र चार्ल्स फ्रीअर एंड्रयूज तथा विलियम डब्ल्यू० पीयर्सन की सहायता से उन्होंने १२५ लड़कों और शिक्षकों के सारे समुदाय को समझा-बुझाकर रसोई का प्रबंध करने, कचरा उठाने, टट्टियां साफ करने, अहाते में झाड़ू लगाने और व्यापक रूप से, संगीत को तिलांजलि देकर भिक्षु बनने के लिए तैयार कर लिया। ठाकुर सहनशीलता के साथ संमत हो गये और बोले—"इस प्रयोग में स्वराज्य की कुंजी है।" परंतु कठोर तपस्या उनके स्वभाव के प्रतिकूल थी, इसलिए जब गांधीजी गोखले के अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिए चले गये, तो यह प्रयोग ठप्प हो गया।

गांधीजी अपने निजी आश्रम की खोज में थे, जहां वह, उनका परिवार और मित्रगण त्याग और सेवा के वातावरण में अपना स्थायी घर बनायें। गांधीजी के जीवन में अब निजी वकालत अथवा पत्नी और पुत्रों के साथ खानगी संबंधों के लिए स्थान नहीं था। एक विदेशी ने एक बार गांधीजी से पूछा—"आपके कुटुंब का क्या हाल है?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"सारा भारत मेरा कुटुंब है।"

इस प्रकार उत्सर्ग करके गांधीजी ने पहले कोचरब में और फिर स्थायी रूप से साबरमती में सत्याग्रह आश्रम की नींव डाली।

: २ :

"गांधी, बैठ जाओ"

सितंबर १९१५ में एक निराली अंग्रेज महिला श्रीमती एनी बेसेंट ने होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा की और वयोवृद्ध दादाभाई को उसका अध्यक्ष बनने के लिए राजी कर लिया।

१८९२ में श्रीमती बेसेंट ने बनारस में एक स्कूल प्रारंभ किया था और १९१६ में इस संस्था ने मालवीयजी के मार्ग-दर्शन में बढ़ते-बढ़ते हिंदू विश्वविद्यालय सेंट्रल कालेज का रूप ले लिया था। फरवरी १९१६ में इसके तीन दिवसीय उद्घाटन-समारोह में अनेक उल्लेखनीय तथा सुविख्यात व्यक्तियों ने भाग लिया। वाइसराय वहां उपस्थित थे और अनेक रत्नाभूषित राजे-महाराजे, रानियां और उच्चाधिकारी अपनी चमचमाती पोशाकों में मौजूद थे।

४ फरवरी को गांधीजी ने इस सभा में भाषण दिया। उनका भाषण समाप्त होने से पहले ही सभा भंग हो गई।

भारत ने ऐसी खरी और बिना लाग-लपेट की वक्तृता पहले कभी नहीं सुनी थी। गांधीजी ने किसीको नहीं बख्शा, उपस्थित जनों को तो सबसे कम। गांधीजी ने कहा—"हमारी कल की मंत्रणाओं का सभापतित्व करनेवाले महाराजा ने भारत की गरीबी का जिक्र किया था। अन्य वक्ताओं ने भी उस पर खूब जोर दिया। परंतु जिस पंडाल में वाइसराय (लार्ड हार्डिंग) ने शिलान्यास का संस्कार संपन्न किया, वहां हमने क्या देखा? निश्चय ही एक बड़ा भारी भड़कदार तमाशा और रत्नाभूषणों की एक प्रदर्शिनी थी, जो पेरिस से आने का कष्ट उठानेवाले बड़े-से-बड़े जौहरी की आंखों के लिए भी तृप्ति का भव्य दृश्य बनी हुई थी। बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजे-सजाये इन रईसों के साथ मैं करोड़ों गरीबों की तुलना करता हूं। मुझे इन रईसों से कहने की आंतरिक इच्छा होती है: 'जब तक आप लोग इन आभूषणों को बिल्कुल उतार न देंगे और इन्हें भारत के अपने देशवासियों की अमानत के रूप में नहीं रखेंगे, तब तक भारत का निस्तार नहीं है।' "

श्रोताओं में से विद्यार्थियों ने पुकारा—"वाह, वाह!" बहुतों ने असहमति प्रकट की। कुछ राजे तो उठकर भी चले गये।

पर इससे गांधीजी रुके नहीं। वह कहते गये—"जब कभी मैं भारत के किसी

बड़े शहर में, चाहे वह ब्रिटिश भारत में हो, चाहे बड़े राजाओं द्वारा शासित भारत में, किसी विशाल महल के निर्माण की खबर सुनता हूं, तब मुझे ईर्ष्या होने लगती है, और मैं कहता हूं—हाय, यह वह रुपया है, जो किसानों से प्राप्त हुआ है। यदि हम किसानों के श्रम का सारा फल छीन लेते हैं या दूसरों को छीन लेने देते हैं, तो हमारे आस-पास स्वराज्य की कुछ अधिक भावना नहीं मानी जा सकती। हमारा निस्तार किसानों द्वारा ही हो सकता है। उसे प्राप्त करानेवाले न तो वकील होंगे, न डाक्टर और न धनी जमींदार।"

गांधीजी अपना झंडा भारत के शक्तिशाली लोगों के सामने फहरा रहे थे। यह झंडा दीन-हीन जनों का था।

विद्यार्थियों को संबोधित करके गांधीजी ने आगे कहा—"अगर आप विद्यार्थी-जगत के लोग, जिनके लिए आज का मेरा भाषण रखा गया है, क्षण भर के लिए भी समझते हों कि आध्यात्मिक जीवन, जिसके लिए यह देश विख्यात है और इस देश की तुलना करनेवाला कोई नहीं है, मौखिक शब्दों द्वारा दूसरों तक पहुंचाया जा सकता है, तो कृपया विश्वास कीजिये कि आप भूल करते हैं। केवल जबानी बातों से आप लोग वह संदेश कभी नहीं दे सकेंगे, जो मुझे आशा है कि एक दिन भारत सारे संसार में पहुंचायेगा। ... मैं आपको बतलाने का साहस करता हूं कि भाषण-बाजी में अब हम अपने साधनों के छोर पर जा पहुंचे हैं। यह काफी नहीं है कि हमारे कानों की तृप्ति हो, या हमारी आंखों की तृप्ति हो, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि हमारे हृदय झंकृत हो उठें और हमारे हाथ-पैरों में गति उत्पन्न हो जाय।"

गांधीजी ने फिर कहा—"हमारे लिए यह घोर अपमान और लज्जा की बात है कि आज मुझे इस महान कालेज की छाया में और इस पुनीत नगर में, अपने देशवासियों को ऐसी भाषा में संबोधित करना पड़ रहा है, जो मेरे लिए विदेशी है।"

गांधीजी ने आगे कहा—"कल्पना कीजिये कि पिछले पचास वर्षों में हमको अपनी-अपनी मातृभाषा में शिक्षा दी गई होती। ऐसी अवस्था में आज हम क्या होते? आज हमारा भारत आजाद होता, हमारे शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह न होते, बल्कि राष्ट्र के हृदय से बातें करते हुए जान पड़ते, वे लोग दीन-से-दीन जनों में काम करते हुए दिखाई देते और गत पचास वर्षों में उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया होता वह राष्ट्र की विरासत होता।"

इस विचार पर छुट-पुट हर्ष-ध्वनि हुई।

अपने दर्शन का तत्व बतलाते हुए और एकत्र रईसों को स्तब्ध करनेवाले शब्दों का उपयोग करते हुए गांधीजी ने कहा :

"कोई भी कागजी लेख हमको कभी स्वराज्य नहीं दे सकता। कितने भी भाषण हमको कभी स्वराज्य के योग्य नहीं बना सकते। केवल हमारा आचरण ही हमको उसके योग्य बनायेगा। और हम अपने ऊपर शासन करने के क्या प्रयत्न कर रहे हैं?...अगर आपको लगे कि आज मैं बिना वाक्-संयम के बोल रहा हूं, तो कृपया यह समझिये कि उस आदमी के विचारों में शरीक हो रहे हैं, जो अपने दिल की बात सुनाने की आजादी ले रहा है। यदि आप समझते हों कि मैं शिष्टाचार-सम्मत मर्यादाओं का उल्लंघन कर रहा हूं, तो मैं जो अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूं, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये। कल शाम को मैं विश्वनाथ के मंदिर में गया था और जब मैं उन गलियों में चल रहा था, तब इन विचारों ने मेरे हृदय को स्पर्श किया। ...क्या यह उचित है कि हमारे पवित्र मंदिरों की गलियां इतनी गंदी हों? गलियां संकरी और टेढ़ी-मेढ़ी हैं। यदि हमारे मंदिर ही पवित्रता और सफाई के नमूने नहीं हैं, तो हमारा स्वराज्य कैसा हो सकता है? क्या अंग्रेजों के भारत छोड़ते ही हमारे मंदिर धार्मिक पवित्रता, सफाई और शांति के आलय बन जायंगे?"

गांधीजी धरती के नजदीक रहते थे। नाजुक-से-नाजुक कानों को भी जीवन के तथ्य सुनने चाहिए। उन्होंने कहा—"यह बात कुछ सुखदाई नहीं है कि बंबई के बाजारों में घूमनेवाले लोगों को हमेशा यह डर रहता है कि ऊंची-ऊंची इमारतों में रहनेवाले कहीं उन पर थूक न दें।" बहुत से भारतीयों की त्यौरियां चढ़ गईं। क्या अंग्रेजों की उपस्थिति में किसी भारतीय को ऐसा कहना उचित था? और बनारस विश्वविद्यालय या स्वतंत्रता का थूकने से क्या संबंध था?

गांधीजी ने श्रोताओं की विरोधी-भावना महसूस कर ली, फिर भी वह ढीले न पड़े।

अरुचिकर विचारों की उस दिन की खुराक अभी पूरी नहीं हुई थी। अभी तो न कहनेवाली बात बाकी थी। गांधीजी ने जोर देकर कहा :

"मेरा कर्तव्य मजबूर करता है उस चीज का जिक्र करने के लिए, जो पिछले दो-तीन दिनों से हमारे दिमागों को परेशान कर रही है। जब वाइसराय बनारस के बाजारों में निकल रहे थे, तब हम सबों के लिए कितने ही चिंतापूर्ण क्षण गुजरे थे। अनेक स्थानों पर जासूस तैनात थे।"

इस पर आमंत्रित महमानों में हलचल मच गई। यह बात सार्वजनिक रूप से

कहने की नहीं थी। गांधीजी ने बतलाया–"हम थर्रा उठे। हमने अपने मन में सवाल किया—'यह अविश्वास क्यों ? क्या यह श्रेयस्कर नहीं है कि लार्ड हार्डिंग मर जायें, बजाय इसके कि इस तरह जीवित मृत्यु का जीवन बितायें ?' परंतु एक शक्तिशाली सम्राट का प्रतिनिधि ऐसा नहीं कर सकता। उनके लिए शायद ऐसा जीवन भी आवश्यक हो, परंतु इन जासूसों को हम पर थोपना क्यों आवश्यक था ?"

गांधीजी ने यह अरुचिकर प्रश्न केवल पूछा ही नहीं, इसका और भी अरुचिकर उत्तर दिया। भारतवासियों पर जासूसों की प्रतिक्रिया के बारे में गांधीजी ने कहा–"भले ही हम ताव खा जायं, हम खीझें, हम रोष करें, लेकिन हमको भूलना नहीं चाहिए कि आज के भारत ने अधीरतावश विप्लवकारियों की एक सेना पैदा कर दी है। मैं खुद भी विप्लववादी हूं, परंतु दूसरी किस्म का। ... उनका विप्लववाद... भय का चिह्न है। यदि हम ईश्वर में विश्वास रखें और उससे डरें, तो हमको किसी-से भी डरने की जरूरत नहीं है, न महाराजाओं से, न वाइसराय से, न जासूसों से और न बादशाह जार्ज तक से।"

श्रोतागण बेकाबू होते जा रहे थे और सभा में जगह-जगह तकरार होने लगी। गांधीजी ने कुछ ही वाक्य और कहे होंगे कि श्रीमती बेसेंट ने, जो अध्यक्ष पद पर आसीन थीं,[1] उन्हें पुकारकर कहा—"कृपा करके इसे बंद कीजिये।"

गांधीजी ने उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—"मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हूं। यदि आप सोचती हैं कि मेरे बोलने से देश और साम्राज्य का हित-साधन नहीं हो रहा है, तो मैं अवश्य बंद कर दूंगा।"

श्रीमती बेसेंट ने रुखाई से उत्तर दिया—"कृपया अपना उद्देश्य बताइये।"

गांधीजी बोले—"मैं अपना उद्देश्य बता रहा हूं। मैं केवल..."

शोर इतना बढ़ गया कि उनकी आवाज सुनाई नहीं दे सकी।

किसीने चिल्लाकर कहा—"बोले जाओ !"

दूसरों ने चीखा—"गांधी, बैठ जाओ !"

शोर बंद हुआ तो गांधीजी ने श्रीमती बेसेंट का बचाव किया। "इसका कारण यह था", गांधीजी ने कहा—"कि यह भारत को बहुत प्रेम करती हैं और उनका विचार है कि आप युवकों के सामने अपने विचार रखकर मैं भूल कर रहा

---

१. इस सभा के अध्यक्ष महाराजा दरभंगा थे, श्रीमती बेसेंट उनके पास बैठीं थीं। —सं०

हूं।" लेकिन फिर भी उन्होंने अपनी बात साफ-साफ कहना ही पसंद किया। उन्होंने कहा—"मैं प्रकाश को अपने लोगों की ओर ही कर रहा हूं।...कभी-कभी दोष अपने ऊपर लेना अच्छा होता है।"

इतने में कुछ विशेष लोग मंच से उठकर चल दिये। शोर बढ़ा और गांधीजी को अपना भाषण बंद करना पड़ा। श्रीमती बेसेंट ने सभा स्थगित कर दी।[1]

बनारस से गांधीजी साबरमती चले गये।

भारत में एक जगह दूसरी से दूर है और यातायात के साधन अच्छे नहीं हैं। कम लोग पढ़े-लिखे हैं और बहुत कम लोगों के पास रेडियो है। इसलिए भारत के कान बहुत लंबे और ग्रहणशील हैं। सन १९१६ में वे कान एक व्यक्ति का स्वर सुनने लगे, जो हिम्मतवाला था, पर विवेकशील नहीं—मामूली-सा व्यक्ति, जो गरीबों की तरह रहता था और धनिकों के मुकाबले में गरीबों की रक्षा करता था—आश्रम में रहनेवाला एक पवित्र पुरुष।

गांधीजी अभी तक राष्ट्रीय विभूति नहीं बने थे। करोड़ों व्यक्ति उन्हें नहीं जानते थे। लेकिन नये महात्मा की ख्याति फैलती जा रही थी। भारत शक्ति और धन के भय के चंगुल में फंसा है, पर वह गरीबों के विनम्र सेवक को प्रेम करता है। धन-दौलत, हाथी-घोड़े, हीरे-जवाहिरात, पल्टन, महल भारत का आदर पाते हैं, बलिदान और त्याग को भारत का हृदय मिलता है।

मैकॉले ने लिखा है—"पूर्व पश्चिम के सामने झुका; धैर्य और गहरी घृणा से।

"और वह इसी घृणा से उस पूर्व के आगे झुका, जो धन और शक्ति का लोभी है।"

इसलिए भारत त्याग की महिमा भली प्रकार जानता और मानता है। भारत में बहुत से साधु-संत हैं, लेकिन गांधीजी के त्याग की प्रतिध्वनि अधिक हुई, क्योंकि उन्होंने महज त्याग की खातिर किये गये त्याग का विरोध किया। एक पत्र में उन्होंने लिखा—"मां राजी से कभी वे भीगे बिस्तर पर नहीं सोयेगी, लेकिन अपने बेटे

---

१. श्रीमती बेसेंट ने सभा स्थगित नहीं की थी। महाराजा दरभंगा ही सभापति का आसन छोड़कर चले गये थे। उनके जाते ही गांधीजी ने अपना भाषण बंद कर दिया। बाद में गांधीजी के एक मित्र ने कहा था—"मैंने श्रोतागण को ऊबकर चले जाते हुए देखा है। मैंने यह भी देखा है कि वक्ताओं को बैठा दिया गया, लेकिन खुद अध्यक्ष को सभा छोड़कर जाते हुए कभी नहीं देखा।"—सं०

की खातिर वह सूखे बिस्तर को उसके लिए छोड़कर स्वयं गीले पर खुशी-खुशी सो जायगी।"

गांधीजी ने सेवा के लिए त्याग किया।

: ३ :

हरिजन

एक अछूत परिवार ने साबरमती-आश्रम में स्थायी रूप से रहने की इच्छा प्रकट की। गांधीजी ने उन्हें आश्रम में दाखिल कर लिया।

इस पर तूफान उठ खड़ा हुआ।

आश्रम की स्त्रियों ने अछूत स्त्री को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। कस्तूरबा को तो इस विचार से ही घृणा हुई कि दानीबहन रसोई में भोजन बनाये और बरतन साफ करे। गांधीजी ने समझा-बुझाकर उन्हें राजी कर लिया।

कुछ ही समय बाद गांधीजी ने घोषणा की कि उन्होंने अछूत कन्या लक्ष्मी को अपनी पुत्री बना लिया है। इस प्रकार कस्तूरबा एक अछूत की माता बन गईं!

गांधीजी ने जोर दिया कि अस्पृश्यता प्रारंभिक हिंदू धर्म का अंग नहीं है। वस्तुतः अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका संघर्ष हिंदू धर्म के नाम पर ही हुआ। उन्होंने लिखा है—"मैं फिर से जन्म नहीं लेना चाहता, लेकिन यदि लेना ही पड़े, तो मैं अस्पृश्य के रूप में पैदा होना चाहूंगा, जिससे मैं उनकी वेदनाओं, कष्टों और उनके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारों में साझीदार हो सकूं और जिससे मैं अपने को और उनको दुखदायी स्थिति से मुक्त कर सकूं।"

लेकिन अगले जन्म में अछूत पैदा होने से पहले इस जन्म में ही वह अस्पृश्य की भांति रहने लगे। वह आश्रम के पाखाने साफ करने लगे। उनके संगी-साथी भी साथ हो गये। अब अछूत कोई न रहा, क्योंकि बिना छूत-छात के विचार के हर कोई अछूत का काम करता था।

नीच जाति के लोग अछूत कहलाते थे। गांधीजी ने उनके मनोविज्ञान को समझा और अपने को 'हरिजन' कहना शुरू कर दिया। बाद में उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र का नाम 'हरिजन' रखा। धीरे-धीरे 'हरिजन' शब्द प्रयोग में आकर गौरवशाली बन गया।

धर्मांध हिंदुओं ने अछूतों को प्रेम करने के लिए गांधीजी को कभी क्षमा नहीं

किया। अपने जीवन में गांधीजी को जिन राजनैतिक बाधाओं का सामना करना पड़ा, उनमें से बहुतों के लिए धर्मांध हिंदू जिम्मेदार थे। लेकिन बहुसंख्यक लोगों के लिए वह महात्मा थे। वे उनसे आशीर्वाद मांगते थे, खुशी-खुशी उनके पैर छूते थे। इसलिए उन्हें इस बात को दरगुज़र करना पड़ा और वे भूल गये कि वह अछूतों की भांति कलुषित हैं, क्योंकि वह सफाई का काम करते हैं और अछूतों के साथ रहते हैं और उनके पास एक अछूत लड़की रहती है। बरसों तक लाखों सवर्ण हिंदू गांधीजी के आश्रम में उनसे मिलने, उनके साथ खाना खाने और टहलने आते रहे। उनमें से कुछने अपने को बाद में शुद्ध किया; लेकिन अधिकांश लोग इतने कायर नहीं थे। अस्पृश्यता का थोड़ा-बहुत अभिशाप दूर हो गया। गांधी-विचार-धारा के लोग अछूतों को अपने घरों में रखने लगे। गांधीजी ने अपने उदाहरण से शिक्षा दी।

शहरी जीवन और औद्योगीकरण के कारण हरिजनों के प्रति अत्याचारों में कमी आई। देहात में लोग एक-दूसरे को जानते हैं; लेकिन अछूत कुछ और तरह का तो लगता नहीं है। रेल-मोटर में सवर्ण हिंदू उनके साथ सटकर बैठते हैं और उन्हें पता भी नहीं चलता। इस प्रकार के अनिवार्य संपर्क से भी हिंदुओं को हरि-जनों के सथा मिलने-जुलने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

फिर भी हरिजनों की गरीबी बनी रही और उनकी ओर से किये गये गांधी-जी के प्रारंभिक कार्यों, संकेतों और वक्तव्यों से छुआछूत दूर नहीं हुई। इसलिए गांधीजी को अपना प्रयत्न निरंतर जारी रखना पड़ा।

गांधीजी के ऊपर ही यह भार क्यों आकर पड़ा कि वह हरिजनोद्धार का आंदो-लन चलायें? और कोई क्यों नहीं?

दक्षिण अफरीका में बहुत से गिरमिटिया मजदूर अछूत थे और सन १९१४ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के अंतिम चरण के नायक थे। इसके अलावा गांधीजी का दक्षिण अफरीका का २१वर्ष का संघर्ष एक बुराई को दूर करने के लिए था, जिसकी जड़ में, आर्थिक प्रश्नों के साथ-साथ रंग-भेद भी था। असमान दैवी देनों के साथ सब मनुष्यों का जन्म होता है, पर उनके अधिकार समान होते हैं। समाज का कर्तव्य है कि वह उन्हें अपनी योग्यता के विकास तथा स्वतंत्र रहने के लिए समान, अथवा कम-से-कम, खुले अवसर प्रदान करे। तब गांधीजी, जो दक्षिण अफरीका में भारतीयों की समानता के लिए लड़कर ताजे लौटे थे, अपने देश में ही देशवासियों द्वारा देशवासियों पर थोपी हुई क्रूर असमानता को कैसे सहन कर सकते थे?

जहां कोई भी व्यक्ति अपने धर्म, विश्वास अथवा अपने पूर्वजों या संबंधियों के कार्य, नाक की शक्ल, खाल के रंग, नाम-बोध अथवा अपने जन्म-स्थान के कारण समान अधिकारों से वंचित किया जाता है, वहां आजादी की नींव खोखली हो जाती है।

भारत के लिए गांधीजी की आजादी की कल्पना में हिंदू-अनैतिकता तथा ब्रिटिश शासकों के लिए कोई स्थान न था। उन्होंने २५ मई १९२१ के 'यंग इंडिया' में लिखा—"यदि हम भारत के पांचवें अंग को सतत गुलामी में रखते हैं, तो स्वराज्य अर्थहीन है। यदि हम स्वयं अमानवीय रहेंगे, तो भगवान के दरबार में हम दूसरों की अमानवीयता से छुटकारे के लिए कैसे याचना कर सकते हैं ?"

अछूतों के प्रति गांधीजी का रुख साफ था और वह यह, कि अस्पृश्यता को वह सहन नहीं कर सकते थे। सच तो यह है कि मनुष्यों के इस अमानवीय बहिष्कार से वह इतने व्यथित थे कि उन्होंने कहा—"यदि मेरे सामने यह सिद्ध हो जाय कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का आवश्यक अंग है, तो मैं अपने को ऐसे धर्म के प्रति विद्रोही घोषित कर दूंगा।" लोकप्रियता का इच्छुक कोई भी व्यक्ति ऐसा सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दे सकता था, विशेषकर ऐसे देश में, जहां रूढ़िवादी हिंदुओं का बहुमत था। लेकिन उन्होंने कहा कि ऐसा उन्होंने हिंदू की हैसियत से अपने धर्म को परिष्कृत करने के लिए किया। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता एक बड़ी व्याधि थी।...

धर्मभीरु हिंदू हरिजनों को अलग रहते देखकर संतुष्ट थे। फिर भी पृथकता में ऐक्य साधने का भारतीय आदर्श तो था ही, और उन्हें जोड़नेवाली तीन बातें हैं : संस्कृति की अखंड रेखा; जो धुंधले अतीत से आज दिन तक चली आती है, इतिहास की शृंखला, और रक्त तथा धर्म के बंधन।

रक्त हिंदुओं को मुसलमानों और सिखों से जोड़ता है। धर्म इस संबंध को कमजोर करता है, भूगोल जोड़ता है, यायायात के भद्दे साधन विभाजन कर देते हैं, भाषाओं की विविधता भी उन्हें अलग करती है।

इन सब तत्वों के बीच से गांधीजी और उनकी पीढ़ी को एक राष्ट्र का निर्माण करना था।

: ४ :

नील

जब मैं १९४२ में सेवाग्राम आश्रम में गांधीजी से पहली बार मिला, तो उन्होंने मुझसे कहा—"मैं तुम्हें बतलाऊंगा कि वह कौन-सी घटना थी, जिसके कारण मैंने अंग्रेजों के भारत छोड़ने पर जोर देने का निश्चय किया। यह घटना १९१७ की है।"

गांधीजी कांग्रेस के दिसंबर १९१६ के लखनऊ-अधिवेशन में शामिल होने के लिए गये थे। गांधीजी ने लिखा है—"जब कांग्रेस की कार्रवाई चल रही थी, एक किसान, भारत के अन्य किसानों की तरह गरीब और कृश-तन दिखाई देनेवाला, मेरे पास आया और बोला—'मैं राजकुमार शुक्ल हूं। मैं चंपारन से आया हूं और चाहता हूं कि आप मेरे जिले में चलें।'" गांधीजी ने चंपारन का नाम पहले कभी नहीं सुना था।

बहुत दिनों से चली आ रही व्यवस्था के अनुसार चंपारन के किसान 'तीन कठिये'[1] थे। राजकुमार शुक्ल भी ऐसे किसानों में थे। वह कांग्रेस-अधिवेशन में चंपारन की इस जमींदारी-प्रथा के विरुद्ध शिकायत करने आये थे और शायद किसीने उसे सलाह दी थी कि गांधीजी से बात करें।

गांधीजी इस किसान की दृढ़ता और गाथा से प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—"मैं अमुक तारीख को कलकत्ता में रहूंगा। वहां मुझसे मिलना और मुझे ले चलना।"

शुक्ल गांधीजी से कलकत्ता में मिले और दोनों रेल में बैठकर पटना पहुंचे। शुक्ल उन्हें राजेंद्रप्रसाद के घर ले गये। राजेंद्रबाबू बाहर गये हुए थे। उनके नौकर ने गांधीजी को कुएं से पानी नहीं भरने दिया।

गांधीजी ने पहले चंपारन के मार्ग में पड़नेवाले मुजफ्फरपुर जाने का निश्चय किया। उन्होंने मुजफ्फरपुर के आर्ट्स कालेज के प्रोफेसर जे० बी० कृपलानी को तार दिया। १५ अप्रैल १९१७ को रात के १२ बजे गाड़ी मुजफ्फरपुर पहुंची।

---

१. चंपारन के किसान अपनी जमीन के $\frac{३}{२०}$ हिस्से में नील की खेती करने के लिए कानूनन बाध्य थे। यह नील उन्हें निलहे गोरों की नील की कोठियों के लिए देना पड़ता था। यह प्रथा 'तीन कठिया' कहलाती थी।

स्टेशन पर कृपलानी मिले और गांधीजी को प्रोफेसर मलकानी के घर पर ठहराया गया।

गांधीजी के आने और उनकी यात्रा के उद्देश्य की खबर मुजफ्फरपुर और चंपारन में बहुत जल्दी फैल गई। चंपारन से 'तीन कठिया' किसान उनसे मिलने के लिए आने लगे।

कुछ दिन पहले जर्मनीवालों ने नकली नील बना लिया था और निलहे गोरों को इसका पता लग गया था। इसलिए उन्होंने किसानों से इकरारनामे लिखवा लिये कि तीन कठिया व्यवस्था से छुटकारा पाने के लिए वे मुआवजा दे देंगे। जब इन किसानों ने नकली नील का समाचार सुना, तो उन्होंने मांग की कि मुआवजे की रकम उन्हें वापस की जाय।

गांधीजी चंपारन पहुंचे और वहां पहले निलहे गोरों की एसोसिएशन के मंत्री से मिले। उसने एक बाहर के आदमी को कोई जानकारी देने से इन्कार कर दिया।

तब गांधीजी तिरहुत डिवीजन के अंग्रेज कमिश्नर से मिले। उसने गांधीजी को डांट बतलाई और तुरंत तिरहुत छोड़ देने की सलाह दी।

गांधीजी ने तिरहुत इलाका नहीं छोड़ा और मोतीहारी जा पहुंचे। यहां उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वह चंपारन छोड़कर चले जायं। गांधीजी ने आज्ञा-प्राप्ति की रसीद पर लिख दिया कि वह इसकी अवज्ञा करेंगे। इस पर उन्हें अदालत में हाजिर होने का सम्मन मिला।

गांधीजी को रात भर नींद नहीं आई। उन्होंने राजेंद्रबाबू को तार दिया कि प्रभावशाली मित्रों के साथ आ जायं। आश्रम को भी उन्होंने हिदायतें भेज दीं और वाइसराय को पूरे विवरण का तार भेज दिया।

सुबह सारा मोतीहारी किसानों से भर गया। गांधीजी ने भीड़ को संभालने में अधिकारियों को सहायता दी। सरकार चक्कर में पड़ गई। सरकारी वकील ने अदालत से प्रार्थना की कि मुकदमा मुल्तवी कर दिया जाय।

गांधीजी ने इस देरी का विरोध किया। उन्होंने अदालत के सामने बयान में अपना अपराध स्वीकार किया।

मजिस्ट्रेट ने कहा कि फैसला दो घंटे बाद सुनाया जायगा और इतने समय के लिए गांधीजी जमानत दें। गांधीजी ने इन्कार किया। इस पर मजिस्ट्रेट ने उन्हें बिना जमानत के ही छोड़ दिया।

दो घंटे बाद अदालत जब फिर बैठी, तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि फैसला कुछ दिन बाद सुनाया जायगा।

राजेंद्रबाबू, ब्रजकिशोरबाबू, मौलाना मजहरुल हक आदि कई प्रमुख वकील आ पहुंचे। गांधीजी ने पूछा कि अगर मैं जेल चला जाऊं, तो आप लोग क्या करेंगे? उन्होंने जवाब दिया कि वापस चले जायंगे।

गांधीजी ने पूछा—"तब किसानों पर जो अन्याय हो रहा है, उसका क्या होगा?" वकीलों ने आपस में सलाह करके जवाब दिया कि वे भी उनके पीछे जेल जाने को तैयार हैं। गांधीजी बोले—"चंपारन की लड़ाई फतह हो गई।"

जून में गांधीजी को बिहार के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एडवर्ड गेट का बुलावा आया। गवर्नर से बातचीत के फलस्वरूप तीन कठिया किसानों की अवस्था की जांच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया।

सरकारी जांच में निलहे गोरों के विरुद्ध गवाहियों का पहाड़ जमा हो गया और इसे देखकर कमीशन ने यह सिद्धांत मान लिया कि किसानों को मुआवजे का रुपया वापस किया जाय।

निलहे गोरों ने २५ प्रतिशत लौटाने का प्रस्ताव रखा। गांधीजी ने इसे मान लिया और उलझन मिट गई।

कुछ ही वर्षों में निलहे गोरों ने अपनी जमींदारियां छोड़ दीं और ये किसानों को मिल गईं। तीन कठिया प्रथा का अंत हो गया।

गांधीजी ने कभी बड़े राजनैतिक या आर्थिक समाधानों से संतोष नहीं माना। उन्होंने देखा कि चंपारन के गांव सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। उनकी इच्छा हुई कि वहां तत्काल कुछ करना चाहिए। उन्होंने अध्यापकों के लिए अपील की। छः गांवों में प्रायमरी स्कूल खोले गये।

सफाई का हाल तो बहुत ही बुरा था। गांधीजी ने छः महीने तक सेवा करने के लिए एक डाक्टर तैयार किया। वहां सिर्फ तीन दवाइयां मिलती थीं। अंडी का तेल, कुनैन और गंधक का मरहम। जिसकी जीभ गंदी होती थी, उसे अंडी का तेल दिया जाता था। मलेरिया में कुनैन और अंडी का तेल तथा खुजली के लिए गंधक का मरहम और अंडी का तेल।

चंपारन में गांधीजी काफी दिन रहे। लेकिन उनकी निगाह दूर से ही बराबर आश्रम पर रही। वह डाक से निरंतर अपने आदेश भेजते थे और हिसाब मंगाते थे। एक बार उन्होंने आश्रमवासियों को लिखा कि पुराने पाखाने के गड्ढों को भर दें।

नये खोदने का समय आ गया है, नहीं तो पुरानों में से बदबू आना शुरू हो जायगी।

चंपारन की घटना ने गांधीजी के जीवन की धारा बदल दी। उन्होंने बतलाया—"जो कुछ मैंने किया, वह बहुत मामूली चीज थी। मैंने घोषणा कर दी कि मेरे ही देश में अंग्रेज लोग मुझ पर हुक्म नहीं चला सकते।"

चंपारन का मामला किसी प्रतिरोध के फल स्वरूप नहीं निकला। वह तो बहुत से गरीब किसानों के कष्ट-निवारण के प्रयत्न में से उपजा। यह विशुद्ध गांधी-नमूना था। उनकी राजनीति व्यावहारिक और लाखों की दैनिक समस्याओं से जुड़ी हुई थी। वह किसी तत्व से नहीं बंधे थे। उनकी वफादारी जीवित प्राणियों के प्रति थी।

गांधीजी ने जो कुछ किया, उसके द्वारा नये स्वतंत्र भारतवासी का निर्माण किया, जो अपने पैरों पर खड़ा हो सके और इस प्रकार देश को आज़ाद कर सके।

चंपारन की लड़ाई के शुरू में गांधीजी के अनन्य अनुयायी एंड्रयूज फिजी जाने से पहले गांधीजी से मिलने वहां आये। गांधीजी के वकील मित्रों ने सोचा कि एंड्रयूज ठहरे रहें और उन्हें मदद दें, तो बड़ा अच्छा होगा। अगर गांधीजी अनुमति दे दें, तो वह रहने को तैयार थे। लेकिन गांधीजी ने इसका तीव्र विरोध किया। उन्होंने कहा—"आप सोचते हैं कि इस असमान संघर्ष में अगर एक अंग्रेज हमारी तरफ हो तो हमें मदद मिलेगी। इससे आपके दिलों की कमजोरी मालूम होती है। पक्ष न्यायसंगत है और लड़ाई जीतने के लिए आपको अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। आपको एंड्रयूज का सहारा इसलिए नहीं लेना चाहिए कि वह एक अंग्रेज हैं।"

: ५ :

पहला उपवास

चंपारन के किसानों की दशा सुधारने के लिए गांधीजी कुछ दिन वहां और ठहरते, परंतु अहमदाबाद की कपड़ा-मिलों के मजदूरों में असंतोष फैलने के कारण उन्हें अहमदाबाद लौटना पड़ा। वहां की मिलों के मजदूरों को पैसा कम मिलता था और काम अधिक करना पड़ता था।

मजदूरों की समस्या का अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने मिल-मालिकों से झगड़े का पंच-फैसला कराने को कहा। उन्होंने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

तब गांधीजी ने मजदूरों को हड़ताल की सलाह दी । उन्होंने गांधीजी की सलाह मान ली । गांधीजी ने उसका संचालन किया ।

गांधीजी ने मजदूरों से वचन ले लिया था कि जबतक मालिक उनकी मांग स्वीकार न कर लें या पंच-फैसले के लिए राजी न हो जायं, वे काम पर न जायं। प्रतिदिन वह साबरमती के किनारे वट-वृक्ष के नीचे मजदूरों से मिलते थे और हजारों आदमी उनका भाषण सुनने आते थे। वह उनसे शांति रखने और वचन-पालन की बात कहते थे। इस बीच गांधीजी मालिकों के संपर्क में रहे। क्या वह पंच-फैसले के लिए तैयार होंगे ? उन्होंने फिर इन्कार कर दिया।

हड़ताल खिचती ही चली गई। मजदूर लोग ढीले पड़ने लगे। कुछ मिलों में हड़ताल-तोड़क काम करने लगे थे। गांधीजी को भय था कि कहीं मार-पीट न हो जाय। उन्हें यह भी डर था कि प्रतिज्ञाओं के बावजूद मजदूर कहीं काम पर न चले जायं।

गांधीजी असमंजस में पड़ गये। एक दिन सवेरे ही वट के नीचे हड़तालियों की सभा में गांधीजी के मुंह से निकल गया—"जब तक फैसला न हो जाय, तब-तक अगर मजदूर हड़ताल न चलायंगे तो मैं उपवास करूंगा।"

गांधीजी का कोई इरादा न था कि उपवास की घोषणा करेंगे। बिना किसी सोच-विचार के ये शब्द अपने-आप मुंह पर आ गये। उनके श्रोताओं को जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही उन्हें भी हुआ। बहुत से तो चीख उठे।

"आपके साथ हम भी उपवास करेंगे।" कुछ मजदूरों ने कहा।

"नहीं," गांधीजी ने उत्तर दिया—"आप लोग सिर्फ हड़ताल किये जायं।"

धार्मिक या निजी कारणों से गांधीजी ने पहले भी उपवास किया था, लेकिन सार्वजनिक हित के लिए यह उनका पहला उपवास था।

गांधीजी ने देखा कि उनके उपवास ने उन्हें असमंजस में डाल दिया है। यह उपवास मजदूरों को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रखने के उद्देश्य से किया गया था, परंतु इससे मिल-मालिकों पर दबाव पड़ा। गांधीजी ने उनसे कह भी दिया कि वे उनके उपवास से प्रभावित न हों। यह उनके विरुद्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि मैं तो एक हड़ताली और हड़तालियों का प्रतिनिधि हूं और यही मानकर मेरे साथ व्यवहार होना चाहिए। लेकिन उनके लिए तो वह महात्मा गांधी थे। उपवास शुरू होने के तीन दिन बाद मिल-मालिकों ने पंच-फैसले की बात मान ली और इक्कीस दिन की हड़ताल समाप्त हो गई।

गांधीजी ने सोचा कि उन्होंने उपवास हड़तालियों को दृढ़ रखने के लिए किया था। यदि हड़ताल असफल रहती, तो उससे इन तथा दूसरे मजदूरों में कमजोरी आती और गांधीजी कायरों को नापसंद करते थे। उनकी सहानुभूति गरीबों और पद-दलितों के साथ थी, जिनमें वह गौरवशाली और शांतिपूर्ण प्रतिरोध की भावना जाग्रत करना चाहते थे। यदि मजदूरों ने पंच-फैसले की बात का विरोध किया होता, तो वह उनके विरुद्ध उपवास कर डालते। गांधी-दर्शन में पंच-फैसले का सिद्धांत आवश्यक है, क्योंकि उससे हिंसा तथा दबाव दूर होते हैं, जो शांतिपूर्ण संघर्षों में भी पाये जा सकते हैं। इससे लोगों को धैर्य तथा समझौते की शिक्षा मिलती है। गांधीजी ने उपवास किसी व्यक्ति के लिए अथवा किसीके विरुद्ध नहीं किया था, बल्कि एक क्रियात्मक विचार के लिए किया था।

"निजी लाभ के लिए उपवास करना तो धमकी देने के समान है," गांधीजी ने कहा। स्पष्टतः इस उपवास से गांधीजी को निजी लाभ क्या होना था! मिल-मालिक इस बात को जानते थे। फिर भी वे शायद उससे डर गये। वे गांधीजी की मृत्यु का कारण नहीं बनना चाहते थे। यदि बंबई का गवर्नर उपवास कर रहा होता, तो वे कह देते—"मर जाने दो!" गांधीजी ने बाद में एक अवसर पर कहा—"जो मुझे प्रेम करते थे, उन्हें सुधारने के लिए मैंने यह उपवास किया था। आप किसी अत्याचारी के विरुद्ध उपवास नहीं कर सकते।" मिल-मालिक डर गये, क्योंकि गांधीजी के लिए उनके हृदय में अगाध स्नेह था और जब उन्होंने उनका निस्वार्थ त्याग देखा, तो वे अपनी स्वार्थपरायणता पर लज्जित हो उठे। निजी स्वार्थ के लिए किये गये उपवास से ऐसी भावनाओं का उदय नहीं हो सकता था।

"मैं अपने पिता के दोष को दूर करने के लिए उनके विरुद्ध उपवास कर सकता हूं," गांधीजी ने समझाते हुए कहा—"लेकिन उनसे पैतृक संपत्ति लेने के लिए नहीं।"

वस्तुतः इस उपवास से पंच-फैसले की नींव पड़ी। जब मैं १९४८ में अहमदाबाद गया, तो मुझे मालूम हुआ कि पूंजीपति और ट्रेड यूनियन, दोनों ही इस पद्धति की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं।

: ६ :

बकरी का दूध

खेड़ा के किसानों को लगान की छूट दिलवाने के लिए गांधीजी ने मार्च १९१८ में वहां सत्याग्रह का संचालन किया। यह सविनय अवज्ञा-आंदोलन आंशिक रूप में सफल हुआ।

इसी साल जुलाई में गांधीजी खेड़ा जिले में युद्ध के लिए रंगरूटों को भरती करने गये। किसानों ने उन्हें अपनी बैलगाड़ियां किराये पर नहीं दीं और उनको तथा उनके छोटे से दल को भोजन तक देने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी का यह प्रयत्न तो असफल रहा। हां, वह भयंकर रूप से बीमार पड़ने में जरूर सफल हो गये। वह कुटी हुई मूंगफलियों और नीबुओं पर गुजारा करते आरहे थे। इस अधूरी खुराक और परिश्रम के कारण, और साथ ही असफलता की मायूसी के कारण, उन्हें पेचिश हो गई।

उन्होंने उपवास किया। दवा लेने से इन्कार कर दिया। इंजेक्शन लगवाने से भी इन्कार कर दिया।

उनके जीवन में यह पहली गंभीर बीमारी थी। उनका शरीर दुबला होता जा रहा था। शक्ति क्षीण होती जा रही थी, उन्होंने समझ लिया कि मृत्यु नज़दीक आ गई है।

डाक्टरों ने दूध लेने की सलाह दी। गाय-भैंस के फूंका लगाकर दूध निकालने के निर्दय तरीके के कारण गांधीजी ने जीवन भर दूध न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी। इसलिए उन्होंने दूध से भी इन्कार कर दिया।

कस्तूरबा ज़रा कठोरता के साथ बोल उठीं—"परंतु बकरी के दूध से तो आपको कोई ऐतराज नहीं हो सकता!"

गांधीजी जीना चाहते थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि वह 'सेवा के मोह' को नहीं छोड़ सके।

बाद में गांधीजी ने लिखा था कि दूध लेना 'प्रतिज्ञा का भंग' था। यह बात उन्हें परेशान करती रही। यह कमजोरी जाहिर करनेवाली थी। फिर भी अपने अंतिम भोजन तक वह बकरी का दूध पीनेवाले बने रहे।

प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए तैयार होने की कुंजी शायद कस्तूरबा के इसरार में

थी। गांधीजी न मनुष्य से डरते थे, न सरकार से, न जेल से या गरीबी से, न मृत्यु से। परंतु वह अपनी पत्नी से जरूर डरते थे।

जी० रामचंद्रन् ने गांधीजी के जीवन की बहुत-सी घटनाएं लिखी हैं, जिनकी सत्यता सी० राजगोपालाचार्य ने प्रमाणित की है। रामचंद्रन् साबरमती आश्रम में एक साल रहे थे। उन्होंने बतलाया है कि एक दिन जब दोपहर के भोजन के बाद रसोई घर की सफाई करके बा झपकी लेने के लिए पास के कमरे में चली गई थीं, तब गांधीजी रसोई-घर में आये और बा के सहकारी से बहुत धीमी आवाज में कहने लगे कि एक घंटे में कुछ मेहमान आनेवाले हैं, जिन्हें खाना खिलाना होगा। बा के कमरे की तरफ झांककर उन्होंने ओठों के सामने अंगुली रखी और उस लड़के को जरूरी हिदायत देकर बोले—"बा को मत जगाना...उसे तभी बुलाना जब जरूरत हो। और ध्यान रखना कि वह नाराज न हो जायं। अगर वह मुझ-पर नहीं बिगड़ेगी तो तुम्हें इनाम दिया जायगा।"

रामचंद्रन् ने लिखा है—"गांधीजी कुछ घबड़ा रहे थे कि कहीं बा एकाएक जाग न उठें और उन पर बरस न पड़ें।" इसलिए वह रसोईघर में चुपचाप खिसक गये। परंतु जब उनकी टक्कर से पीतल की एक थाली जमीन पर गिरकर झनझना उठी, तो रसोईघर के इस अपराध से, बिना पता लगे, बच निकलने की उनकी आशा चकनाचूर हो गई! शाम को प्रार्थना के बाद बा दोनों हाथ बगल में दबाये उनके सामने आ खड़ी हुईं। उनका मिजाज बड़ा तेज था।

"आपने मुझे जगाया क्यों नहीं?"

गांधीजी ने क्षमा मांगते हुए कहा—"बा, ऐसे मौकों पर मुझे तुमसे डर लगता है।"

बा अविश्वास के साथ हंसी पड़ीं—"आप मुझसे डरते हैं?"

रामचंद्रन् ने विचार प्रकट किया है कि यह बात सच थी।

ब्रिटिश सेना के लिए रंगरूट भरती करने की उद्यतता गांधीजी की दूसरी कमजोरी थी। १९४२ में मैंने इसके बारे में उनसे पूछा था। उन्होंने स्पष्ट किया—"मैं उसी समय दक्षिण अफरीका से लौटा था और तबतक यह नहीं जान पाया था कि मैं कहां खड़ा हूं।" वह राष्ट्रीयता और शांतिवाद की असेतुबंध खाई के किनारे पर थे और समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें।

वह सरल मार्ग अपना सकते थे और युद्ध का समर्थन करने से इन्कार कर सकते थे। अधिकतर राष्ट्रवादियों ने ऐसा ही किया था। वे कहते थे कि भारत आज़ाद

नहीं है, इसलिए हम नहीं लड़ेंगे। परंतु यह कोरा राष्ट्रवाद था, जो शांतिवाद के झीने घाघरे में छिपा हुआ था। इसका अर्थ यह था कि अगर भारत को स्वराज्य मिल गया होता, तो हम फौज में भरती होकर शत्रु को मारते।

१९१८ में गांधीजी के सामने जो मुद्दा था, वह सार्वभौम और शाश्वत था। जब देश पर हमला हो, तो कोई नागरिक क्या करे ? अपनी अंतरात्मा की संतुष्टि के लिए कोई शांतिवादी अपने शरीर को कष्ट देकर जेल चला जाय, या वह लाम-बंदी और अन्य सैनिक कार्रवाईयों का बहादुरी के साथ विरोध करे ? लोगों को शिक्षित करने की दृष्टि से यह एक मूल्यवान प्रदर्शन हो सकता है। मगर मान लो कि सारा राष्ट्र उसके उदाहरण का अनुकरण करके लड़ने से इन्कार कर दे तो ? (फर्ज कीजिये कि १९४० में अंग्रेजों ने लड़ने से इन्कार कर दिया होता तो ?)

१९१८ में भारतीयों के लिए दो विकल्प संभव थे।

शत-प्रति-शत शांतिवादी युद्ध से अलग रहता और सदा के लिए भारत का औपनिवेशक दर्जा पसंद करता, क्योंकि उपनिवेश रहते हुए भारत अपने को गुलाम बनानेवाले देश को युद्धकालीन सहायता देने से इन्कार कर सकता था। इसके विपरीत यदि भारत राष्ट्र होता, तो उसे या तो युद्ध के लिए तैयार होना पड़ता या विनाश का सामना करना पड़ता।

गांधीजी यह रुख नहीं ले सकते थे, क्योंकि वह आजाद भारतीय राष्ट्र चाहते थे।

शत-प्रति-शत राष्ट्रवादी प्रथम महायुद्ध से यह कहकर अलग रहता कि यह ब्रिटेन का युद्ध है, परंतु भारत को स्वतंत्र कराने के लिए वह ब्रिटेन से युद्ध के लिए तैयार हो जाता।

गांधीजी यह रुख भी नहीं ले सकते थे, क्योंकि उन्हें अभी तक आशा थी कि भारत के भविष्य के बारे में ब्रिटेन से शांतिपूर्ण समझौता हो जायगा।

इसलिए १९१८ में गांधीजी ने साम्राज्य को स्वीकार करके, और धीरे-धीरे शांतिपूर्ण उपायों से आजादी प्राप्त करने की आशा में, अपने राष्ट्रवाद को संकट में डाल दिया। ऐसा होने के बाद उनकी प्रेरणात्मक ईमानदारी ने उन्हें अपना शांतिवाद संकट में डालने तथा युद्ध के लिए रंगरूट भरती करने के लिए मजबूर कर दिया।

इस प्रकार राजनैतिक गांधी राष्ट्रवाद और शांतिवाद के ऐसे संघर्ष में फंस गया, जिसका मूलोच्छेद असंभव था। धार्मिक गांधी ने अहिंसा तथा विश्व-भ्रातृत्व

का प्रचार करके और इन पर आचरण करके उसे हल करने का प्रयत्न किया।

इसी द्वैधता में गांधीजी के जीवन-नाटक की दुखांत घटनाएं निहित थीं।

: ७ :

गांधीजी राजनीति में

१९१४ में तिलक (मांडले जेल से) छूटकर आये और उन्होंने राजभक्ति का वचन दिया। गांधीजी जनवरी १९१५ में लंदन होकर भारत लौटे और उन्होंने ब्रिटिश सेना के लिए रंगरूट भरती किये। परंतु निष्क्रियता और ईस्टर १९१६का आयरिश विद्रोह तिलक के प्रचंड स्वभाव को बरदाश्त नहीं हुए और वह होमरूल के पक्ष में एक क्रोधभरे ब्रिटिश-विरोधी आंदोलन के लिए भड़क उठे। उनकी आंदोलनकारी साथिन श्रीमती ऐनी बेसेंट थीं, जो और कुछ नहीं तो वक्तृत्व और गाली-गलौज की भाषा में उनसे भी बढ़ी-चढ़ी थीं। इनके जोरदार सहायकों में सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर और मुहम्मद अली जिन्ना थे।

भारत की धरती भीतर के ज्वालामुखी की आवाज से गड़गड़ा उठी। केवल राजनैतिक लोग ही नहीं,बल्कि सेना के सिपाही और किसान तक भी महसूस करने लगे कि ब्रिटेन की लड़ाई में वे जो खून बहा रहे थे, उसका मुआवजा मिलना चाहिए। अतः २०अगस्त१९१७को भारत के राज्य-सचिव एडविन एस० मांटेग्यू ने लोक सभा में घोषणा की कि ब्रिटिश नीति यह दृष्टि में रखती है कि न केवल प्रसाशन के हर विभाग में भारतीयों का उत्तरोत्तर अधिक संसर्ग हो, बल्कि स्वशासित संस्थाएं भी प्रदान की जायं, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहते हुए भारत को क्रमोन्नति से उत्तरदायी सरकार की प्राप्ति हो। इसे औपनिवेशिक दर्जे का वादा समझा गया।

तिलक का विचार था कि कभी-कभी राज्य के यंत्र में अधिकार के पद ग्रहण करना भी वांछनीय हो सकता है। एक बार उन्होंने गांधीजी को पचास हजार रुपये का चैक भेजकर शर्त लगाई कि अगर वह वाइसराय से यह वचन ले सकें कि फौज में भरती होनेवालों में से कुछ को अफसरों के पद दे दिये जायंगे, तो वह ब्रिटिश सेना के लिए पांच हजार मराठे भरती कर सकते हैं। गांधीजी ने चेक लौटा दिया। शर्त लगाना उन्हें पसंद नहीं था। वह तो यह महसूस करते थे कि अगर कोई आदमी कोई काम करता है तो इसलिए करता है कि उसमें उसका विश्वास है,

इसलिए नहीं कि उससे उसे कुछ मिल जायगा।

नवंबर १९१८ में विजयपूर्वक युद्ध समाप्त हो गया। अशांति ने ज्यादा प्रतीक्षा नहीं की। वह १९१९ के प्रारंभ में ही पैदा हो गई।

अगस्त १९१८ में तिलक को दुबारा नजरबंद किया जा चुका था। श्रीमती बेसेंट भी गिरफ्तार थीं। शौकतअली और मुहम्मदअली को युद्ध के दौरान में ही बंदी बना दिया गया था। गुप्त अदालतें भारत के बहुत से भागों में लोगों को सजाएं दे रही थीं। युद्धकालीन सेंसर प्रतिबंधों से अनेक अखबारों के मुंह बंद कर दिये गये थे। इससे बहुत कटुता उत्पन्न हुई। परंतु युद्ध का अंत होने पर देश ने आशा की कि नागरिक स्वतंत्रता फिर स्थापित कर दी जायगी।

लेकिन इसके विपरीत सर सिडनी रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी ने १९ जुलाई को एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें वस्तुतः युद्धकालीन सख्तियों को जारी रखने की सिफारिश की गई थी। रौलट के फैसलों की कांग्रेस दल ने बड़ी उग्रता से भर्त्सना की। लेकिन फिर भी सरकार ने इन सिफारिशों के अनुरूप एक विधेयक फरवरी १९१९ में इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश कर दिया।

गांधीजी अभी पेचिश की बीमारी से उठे ही थे। यह मानकर कि विधेयक कानून बन जायगा, उन्होंने दक्षिण अफरीका में अपने विजयपूर्ण प्रयत्न के नमूने की सविनय अवज्ञा की तैयारी शुरू कर दी। कमजोर होते हुए भी उन्होंने बहुत से शहरों की यात्रा की और सरकार पर इस दमनकारी कानून को वापस लेने का दबाव डालने के इरादे से एक विशाल राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आंदोलन के लिए जमीन तैयार की।

१८ मार्च १९१९ को रौलट ऐक्ट कानून बन गया। सारे भारत में बिजली दौड़ गई। क्या यही औपनिवेशिक दर्जे की शुरुआत थी?

महात्मा गांधी, जो उन दिनों मद्रास में थे, दूसरे दिन राजगोपालाचारी से बोले—"रात को मुझे स्वप्न में विचार आया कि हमें हड़ताल के लिए देश का आह्वान करना चाहिए।"

हड़ताल का यह विचार सारे भारत में फैल गया। सत्याग्रह की भूमिका के रूप में यह हड़ताल दिल्ली में ३० मार्च को और बंबई तथा अन्य शहरों व गांवों में ६ अप्रैल को मनाई गई।

परंतु दिल्ली में हड़ताल के कारण हिंसापूर्ण कार्यवाहियां हो गईं। पंजाब में ंगे-फिसाद हुए और गोलियां चलीं। नेताओं ने गांधीजी से तुरंत दिल्ली और

पंजाब पहुंचने का अनुरोध किया। सरकार ने ९ अप्रैल को उन्हें पंजाब की सीमा पर रोक दिया और बंबई ले जाकर छोड़ दिया।

११ अप्रैल को बंबई में गांधीजी ने एक सभा में भाषण दिया और हिंसापूर्ण कृत्यों की निंदा की।

बंबई से गांधीजी साबरमती आश्रम गये। वहां भी उन्होंने १४ अप्रैल को एक विशाल सभा में भाषण दिया। अहमदाबाद के लोगों ने भी हिंसापूर्ण कार्रवाइयां की थीं। इनके प्रायश्चित्त-स्वरूप गांधीजी ने बहत्तर घंटे के उपवास की घोषणा की।

साबरमती से गांधीजी सीधे नड़ियाद गये। वहां उन्हें पता लगा कि हिंसापूर्ण कार्रवाइयां छोटे-छोटे नगरों में भी फैल गई थीं। खिन्न होकर गांधीजी ने नड़ियाद-निवासियों से कहा कि सत्याग्रह का आंदोलन 'मेरी हिमालय जैसी भूल थी।' १८ अप्रैल को उन्होंने आंदोलन उठा लिया।

बहुत लोगों ने खिल्ली उड़ाई, उन्होंने ताने दिये कि महात्माजी ने 'हिमालय जैसी बड़ी गलती की।' परंतु गांधीजी अपनी गलती कबूल करके कभी नहीं पछताये।

इस दौरान में पंजाब प्रांत खौल रहा था। वहां जो घटनाएं घट रही थीं, उनका फल १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर में प्रकट हुआ, जिसे सर वैलेंटाइन शिरोल ने 'ब्रिटिश भारत के इतिहास में काला दिन' बतलाया। गांधीजी के लिए यह एक मोड़ था। भारतवासी इसे कभी नहीं भूले।

सरकार द्वारा नियुक्त जांच कमीशन ने, जिसके अध्यक्ष लार्ड हंटर थे, पंजाब के दंगों की कई महीने तक छान-बीन करके अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की'।

हंटर-रिपोर्ट में १३ अप्रैल के हत्याकांड का ब्यौरा दिया गया है। उसमें बताया गया है—"जनरल डायर ने एक बजे सुना कि लोग ४ बजे एक बहुत बड़ी सभा करनेवाले हैं। जब उससे पूछा गया कि उस सभा को रोकने के लिए कोई उपाय क्यों नहीं किया, तो उसने उत्तर दिया कि मैं जल्दी-से-जल्दी वहां पहुंचा।... जलियांवाला बाग में सभा हुई। ...डायर ने बिना सभा को भंग करने की सूचना दिये अपने फौजी दस्तों को गोली चलाने की आज्ञा दी। दस मिनट तक गोलियां चलती रहीं। ...ज्यों ही गोली चलना शुरू हुआ, भीड़ तीतर-बितर होने लगी। कुल मिलाकर १६५० बार फौजियों ने गोली चलाई। १५१६ आदमी मारे गये।"

हंटर-कमीशन के आगे जिरह में डायर ने बताया कि उसके दिमाग में क्या बात थी और उसका क्या इरादा था :

प्रश्न—आप गोली चलाने की दिशा बार-बार बदलते गये और जिधर सबसे ज्यादा भीड़ थी उधर ही गोली चलवाई ?

उत्तर—जी हां।

प्रश्न—यदि द्वार बड़ा होता और उसमें से सशस्त्र मोटरें अंदर आ जातीं, तो आप मशीनगनें चलवाते ?

उत्तर—मैं सोचता हूं, शायद जरूर चलवाता।

हंटर-रिपोर्ट में लिखा है—"हमारे सामने जब जांच हुई, तो डायर ने बताया कि जब वह अपनी कार में आये, तो उनका इरादा पक्का हो गया था कि अगर उनकी आज्ञा का पालन न हुआ तो तत्काल गोली चलवा देंगे।—'मेरा पक्का इरादा था कि सारे आदमियों को मौत के घाट उतार दूंगा'।"

हंटर-कमीशन का निर्णय था—"यह दुर्भाग्य की बात है कि डायर ने अपने कर्तव्य की गलत कल्पना की। हमें लगता है कि इतनी देर तक गोलियां चलवाकर जनरल डायर ने बड़ी भारी भूल की।"

भारत के राज्य-सचिव एडविन एस० मांटेग्यू ने वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को २६ मई १९२० के एक सरकारी खरीते में लिखा था—"जलियांवाला में ब्रिगेडियर जनरल डायर ने जिस सिद्धांत को अपनी कार्रवाई का आधार बनाया, उसे सम्राट की सरकार ज़ोरदार शब्दों में अस्वीकार करती है।"

डायर को सेना से त्याग-पत्र देने को कहा गया। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने वायुयानों की टोह लगानेवाले 'रेंज फाइंडर' का आविष्कार किया। २३ जुलाई १९२७ को ब्रिस्टल में उसकी मृत्यु हुई।

जलियांवाला बाग ने भारत के राजनैतिक जीवन में हलचल पैदा कर दी और गांधीजी को राजनीति में खींच लिया।

जिस रास्ते से गांधीजी भारतीय राजनैतिक जगत के केंद्र में पहुंचे, वह बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा था। इसका प्रारंभ जलियांवाला बाग से हुआ। हत्याकांड के बाद गांधीजी ने पंजाब जाने की अनुमति मांगी। उन्हें दुत्कार दिया गया। वह अपनी मांग पर आग्रह करते रहे। अंत में वाइसराय ने उन्हें तार दिया कि वह १७ अक्तूबर १९१९ के बाद वहां जा सकते हैं।

पंजाब में गांधीजी ने मोतीलाल नेहरू आदि भारतीय नेताओं को जलियांवाला बाग हत्याकांड की स्वतंत्र जांच करने में सहायता दी। रिपोर्ट का मसविदा गांधीजी ने ही तैयार किया।

नवंबर १९१९ में गांधीजी को दिल्ली में होनेवाली मुस्लिम कानफ्रेंस का निमंत्रण मिला। यह सभा खिलाफत के लिए बुलाई गई थी। इसमें अनेक हिंदू भी उपस्थित थे। यह समय हिंदू-मुस्लिम राजनैतिक मैत्री की सुहागरात था।

कानफ्रेंस में तर्क-वितर्क हुआ कि क्या किया जाय। तुर्की के प्रति अंग्रेजों की निष्ठुरता की निंदा के प्रस्ताव काफी नहीं थे। ब्रिटिश कपड़े के बहिष्कार का सुझाव रखा गया।

गांधीजी मंच पर बैठे हुए अपने दिमाग में सोच रहे थे कि आगे की कार्रवाई का नक्शा क्या हो। वह एक कार्यक्रम की तलाश में थे और फिर ऐसे शब्द की तलाश में थे, जो नारा भी बन जाय और उस कार्यक्रम का समूचा निचोड़ भी व्यक्त कर दे। अंत में उन्हें यह चीज मिल गई और जब वह बोलने को खड़े हुए तो उन्होंने कहा—"असहयोग!"

यह 'असहयोग' भारत तथा गांधीजी के जीवन में एक नये युग का द्योतक बन गया।

१९१९ के अंतिम सप्ताह में अमृतसर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। सरकार ने यह अधिवेशन जलियांवाला बाग के नजदीक होने दिया और इस अवसर पर अली-बंधुओं को छोड़ दिया। इन बातों ने गांधीजी के सहज आशावाद को बल दिया।

चाहे जान-बूझकर हुआ हो या संयोग से, इस अधिवेशन से एक दिन पहले सम्राट् ने मांटेग्यू-सुधारों की घोषणा की, जिनके बारे में काफी प्रचार किया जा चुका था। यह घोषणा सबके लिए असंतोषजनक थी, फिर भी गांधीजी इसे स्वीकार करने के पक्ष में थे।

यह मांटेग्यू-सुधार-योजना ९ फरवरी १९२१ को 'सन १९१९ के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट' के रूप में भारत का नया संविधान बना दी गई।

तिलक इन सुधारों को इस दृष्टि से स्वीकार करने के पक्ष में थे कि इन्हें अपर्याप्त सिद्ध कर दिया जाय।

गांधीजी इस दृष्टिकोण को ठीक नहीं मानते थे। प्रतिनिधिगण गांधीजी के समर्थक थे। परंतु गांधीजी तिलक को मात नहीं देना चाहते थे। नाटकीय ढंग से गांधीजी ने तिलक की ओर मुंह किया। गांधीजी सफेद खद्दर की टोपी पहने हुए थे, जो बाद में 'गांधी-टोपी' के नाम से विख्यात हुई। उन्होंने अपनी टोपी तिलक के पांवों में डाल दी और समझौता स्वीकार करने के लिए अनुनय की। तिलक पिघल गये।

अमृतसर-अधिवेशन गांधीजी की सतर्कता की केवल अस्थायी सफलता थी। देश का रुख स्पष्ट रूप से असहयोग की ओर था। घटनाएं तेजी से चल रही थीं। अप्रैल १९२० में गांधीजी होमरूल लीग के अध्यक्ष चुने गये। ३० जून को गांधीजी के मार्ग-दर्शन में खिलाफत-आंदोलन ने असहयोग की नीति स्वीकार की। गांधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखा। वाइसराय ने जवाब दिया कि असहयोग "सब मूर्खतापूर्ण योजनाओं में सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है।" परंतु चेम्सफोर्ड की सारी शक्ति उसे रोकने में असफल रही। गांधीजी ने घोषणा की कि १ अगस्त १९२० को असहयोग प्रारंभ होगा और उससे पहले ३१ जुलाई को उपवास और प्रार्थना कर दिन होगा। उसी दिन, यानी १ अगस्त को तिलक की मृत्यु हो गई।

तिलक के बाद गांधीजी कांग्रेस के निर्विवाद नेता बन गये।

सितंबर १९२१ में गांधीजी ने खादी और सादगी के प्रति अपने आग्रह को बल देने के लिए टोपी, जाकट, नीची धोती या ढीला पाजामा सदा को त्याग दिये और लंगोटी धारण कर ली।

सरकार ने राजनैतिक नेताओं और उनके अनुगामियों की गिरफ्तारियां शुरू कर दीं। चित्तरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय आदि सैकड़ों प्रमुख कांग्रेस-जन गिरफ्तार कर लिये गये। दिसंबर १९२१ में, जब अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तो उस समय तक बीस हजार भारतवासी सविनय-अवज्ञा तथा राजद्रोह के अपराध में जेल भेजे जा चुके थे।

दिसंबर १९२१ और जनवरी १९२२ के बीच दस हजार भारतवासी और भी जेलों में डाल दिये गये। कई प्रांतों में किसानों ने अपने-आप कर-बंदी के आंदोलन शुरू कर दिये। सरकारी नौकरों ने नौकरियां छोड़ दीं।

२ अप्रैल १९२१ को नये वाइसराय लार्ड रीडिंग भारत आ पहुंचे। सेना और पुलिस पर इन्हें पूरा अधिकार प्राप्त था। कांग्रेस ने गांधीजी को अपना डिक्टेटर बना दिया था। महात्मा के मुख से निकला हुआ एक भी शब्द ऐसा जबरदस्त बवंडर पैदा कर सकता था कि जिसकी तुलना में १८५७ का ग़दर एक छोटी-सी घटना दिखाई देता।

दिल्ली में अपना पद संभालने के कुछ ही दिन वाद लार्ड रीडिंग ने गांधीजी से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की।

गांधीजी ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। बहुत से भारतवासियों ने इस पर ऐतराज किया।

लार्ड रीडिंग की गांधीजी से मिलने की उत्सुकता बहुत हद तक पूरी हो गई। मई के अंत में लार्ड रीडिंग ने अपने पुत्र को एक पत्र में लिखा कि गांधीजी की उनसे छः मुलाकातें हुईं : "पहली साढ़े चार घंटे की, दूसरी तीन घंटे की, तीसरी डेढ़ घंटे की, चौथी डेढ़ की, पांचवीं डेढ़ घंटे की और छठी पौन घंटे की।"

तेरह घंटों की बातचीत के बाद रीडिंग का गांधीजी के बारे में क्या विचार था? उन्होंने अपने पुत्र को लिखा था—"उनकी शक्ल-सूरत में कोई अनोखी बात नहीं है।...परंतु जब वह बात करते हैं, तो दूसरी तरह की छाप पड़ती है। वह स्पष्टवादी हैं और बहुत बढ़िया अंग्रेजी में अपने विचार व्यक्त करते हैं। जो शब्द वह बोलते हैं, उनके महत्व को बड़ी बारीकी से समझते हैं। उनमें कोई झिझक नहीं है और जब वह कुछ राजनैतिक प्रश्नों पर चर्चा करते हैं, उस समय को छोड़कर जो कुछ वह बोलते हैं, उसमें निष्कपटता की ध्वनि होती है।..."

यदि लार्ड रीडिंग गांधीजी की राजनीति को नहीं समझ पाये, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। ४ नवबंर १९२१ को दिल्ली में कांग्रेस महासमिति ने अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा के पक्ष में प्रस्ताव पास कर दिया,परंतु गांधीजी ने सारे नेताओं से वचन ले लिया कि उनकी सहमति के बिना आगे कदम नहीं उठायेंगे।

गांधीजी एक क्षेत्र में सामूहिक सविनय अवज्ञा का प्रयोग करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने बारडोली को चुना, जहां वह खुद अपनी देख-रेख में प्रयोग कर सकें। १ फरवरी १९२२ को गांधीजी ने वाइसराय को अपने इस इरादे की सूचना दे दी।

परंतु ५ फरवरी को चौरीचौरा में कुछ दूसरी ही बात हो गई। इस छोटे से नगर में भीड़ ने पुलिस के सिपाहियों की हत्या कर दी।

८ फरवरी को बारडोली में गांधीजी के पास जब इस अत्याचार की खबर पहुंची, तो वह बीमार और उदास हो गये। यह बुरा शकुन था।

अतः गांधीजी ने बारडोली-आंदोलन स्थगित कर दिया और भारत में हर जगह सरकार विरोधी आंदोलन स्थगित कर दिया।

बंबई और मद्रास के गवर्नरों से परामर्श करने के बाद लार्ड रीडिंग ने १ मार्च को गांधीजी की गिरफ्तारी का हुक्म दे दिया और शुक्रवार, १० मार्च १९२२ को रात के साढ़े दस बजे उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

गिरफ्तारी के दूसरे दिन बाद कच्ची पेशी में गांधीजी ने अपनी आयु तिरेपन साल की बतलाई। धंधा बुनकर और किसान बतलाया और अपराध स्वीकार किया।

उन पर 'यंग इंडिया' में तीन राजद्रोहात्मक लेख लिखने का अभियोग लगाया गया था। पत्र के मुद्रक शंकरलाल बैंकर पर भी गांधीजी के साथ ही मुकदमा चलाया गया।

यह ऐतिहासिक मुकदमा अहमदाबाद के सरकारी सर्किट हाउस में डिस्ट्रिक्ट व सेशन्स जज मि० ब्रूम फ़ील्ड की अदालत में, १८ मार्च १९२२ को पेश हुआ। बंबई के एडवोकेट-जनरल सर जे० टी० स्ट्रैंगमेन ने सरकार की ओर से अभियोग पेश किया। गांधीजी और बैंकर ने कोई वकील नहीं किया। अदालत भवन और आस-पास की सड़कों पर सेना के दस्तों का जबरदस्त पहरा था। अदालत के छोटे-से कमरे में भारी भीड़ थी।

जब अभियोग सुना दिया गया और एडवोकेट-जनरल ने गांधीजी के विरुद्ध मुकदमा पेश कर दिया, तो जज ने महात्माजी से पूछा कि वह कोई बयान देना चाहते हैं या नहीं। गांधीजी के पास लिखित बयान तैयार था।

गांधाजी ने अपना तैयार किया हुआ बयान पढ़ा, जिसमें उन्होंने बतलाया कि "क्यों मैं एक कट्टर राजभक्त और सहयोगी से एक अटल राजद्रोही और असहयोगी बन गया।"

अंत में गांधीजी ने कहा कि उन्हें 'कठोर-से-कठोर सजा' दी जाय।

गांधीजी के बैठने पर मि० ब्रूमफील्ड ने उन्हें नमस्कार किया और सजा सुनाई। जज ने कहा—"न्यायोचित सजा का निश्चय करना शायद एक ऐसा कठिन सवाल है जिसका इस देश के किसी भी जज को सामना करना पड़ता है। कानून व्यक्तियों की परवाह नहीं करता। फिर भी इस बात से इन्कार करना असंभव है कि जितने व्यक्तियों के मुकदमे मुझे अब तक करने पड़े हैं या संभवतया करने पड़ेंगे, उन सबसे आपका दर्जा अलग है। इस तथ्य से भी इन्कार करना असंभव है कि अपने करोड़ों देशवासियों की निगाह में आप एक महान देशभक्त और महान नेता हैं। जो लोग राजनीति में आपसे मतभेद रखते हैं, वे भी आपके जीवन को उच्च आदर्शोंवाला तथा सच्चरित्र और ऋषितुल्य मानते हैं।"

इसके बाद जज ने घोषणा की कि गांधीजी को छः साल की कैद भुगतनी पड़ेगी और साथ ही कहा कि यदि सरकार बाद में इस सजा को घटाना उचित समझे, तो "मुझसे अधिक कोई भी प्रसन्न नहीं होगा।"

अदालत के उठने पर बहुत से दर्शक गांधीजी के चरणों में झुक गये। बहुत से रोने लगे। गांधीजी को जेल ले जाया गया तो उनके चेहरे पर मधुर मुस्कान थी।

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को जागृत करने के निमित्त जेल जाना आवश्यक था।

ब्रिटिश सरकार ने गांधीजी को कई बार जेल भेजकर उनकी यह बात मान ली, परंतु उन पर मुकदमा चलाने का यह अंतिम ही मौका था।

: ८ :

ऑपरेशन और उपवास

२० मार्च १९२२ को गांधीजी जिस यरवदा सेंट्रल जेल में रखे गये थे, वहां से १२ जनवरी १९२४ को उन्हें शीघ्रता के साथ पूना के ससून अस्पताल ले जाया गया। उन्हें आंत्र-शोथ (अपेंडिसाइटिस) की तीक्ष्ण पीड़ा उठ खड़ी हुई थी। सरकार बंबई से भारतीय डाक्टरों के आने तक ठहरने को तैयार थी, परंतु आधी रात से कुछ देर पहले अंग्रेज सर्जन कर्नल मैडक ने गांधीजी को सूचना दी कि उन्हें तुरंत ऑपरेशन करना पड़ेगा। गांधीजी राजी हो गये।

जिस समय ऑपरेशन की तैयारी हो रही थी, गांधीजी के कहने पर भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष श्री श्रीनिवास शास्त्री और महात्माजी के मित्र डा० पाठक को बुलाया गया। इन दोनों ने मिलकर एक सार्वजनिक वक्तव्य तैयार किया, जिसमें कहा गया कि गांधीजी ऑपरेशन के लिए राजी हो गये हैं, डाक्टरों ने उनकी अच्छी तरह चिकित्सा की है और चाहे जो हो, सरकार-विरोधी हलचल नहीं होनी चाहिए। अस्पताल के अधिकारी और गांधीजी जानते थे कि अगर ऑपरेशन सफल नहीं हुआ, तो भारत भर में आग भड़क उठेगी।

जब वक्तव्य तैयार हो गया तो गांधीजी ने अपने घुटने सिकोड़कर उस पर हस्ताक्षर किये। "देखते हो, मेरा हाथ कैसा कांपता है?" कर्नल मैडक से हंसते हुए उन्होंने कहा—"इसे तुम्हें ठीक करना होगा।"

सर्जन ने उत्तर दिया—"ओह, हम लोग इसमें टनों ताकत भर देंगे।"

गांधीजी को क्लोरोफार्म सुंघाया गया और एक फोटो खींचा गया। ऑपरेशन के बीच में तूफान ने बिजली की रोशनी काट दी। इसके बाद नर्स जो टार्च दिखा रही थी, बुझ गई और ऑपरेशन लालटेन की रोशनी में पूरा किया गया।

ऑपरेशन तो सफल हो गया, परंतु चीरे की जगह मवाद पड़ गया और गांधीजी को अच्छे होने में देर लगने लगी। इस परिस्थिति में सरकार ने अक्लमंदी से या

उदारता से ५ फरवरी को गांधीजी को छोड़ दिया।

गांधीजी ने एक बार मिस स्लेड (मीरा बहन) को लिखा था—"अपने शल्य-क्रिया-संबंधी आविष्कारों तथा इस दिशा में सर्वतोमुखी प्रगति के लिए मैं पश्चिम का सदा प्रशंसक रहा हूं।"

फिर भी डाक्टरों के प्रति अपने तास्सुब को गांधीजी पूरी तरह कभी भी नहीं दूर कर सके। एक बार उन्होंने पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगवाने से साफ इन्कार कर दिया।

डाक्टर ने कहा—"अगर मैं आपके पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगा दूं, तो आप तीन दिन में अच्छे हो जायंगे, वरना तीन हफ्ते लगेंगे।"

गांधीजी ने जवाब दिया—"रहने दीजिये, मुझे कोई जल्दी नहीं है।"

डाक्टर ने बतलाया—"आपसे दूसरों को छूत लग सकती है।"

गांधीजी ने सलाह दी—"तो फिर उन्हें पेनिसिलीन दे दीजिये।"

यही डाक्टर एक बार गांधीजी से यह कहने की असावधानी कर बैठे कि अगर सारे मरीज सिर्फ चारपाई पर आराम करने लगें, तो अच्छे हो जायं।

गांधीजी ने चेतावनी दी—"यह बात कोई सुन न ले, वरना आप अपने तमाम मरीजों से हाथ धो बैठेंगे!"

जेल से रिहा होने पर गांधीजी स्वास्थ्य-लाभ के लिए जुहू चले गये और वहां शांतिकुमार मुरारजी के बंगले में रहे। यहां चित्तरंजनदास तथा मोतीलाल नेहरू उनसे उस स्थिति पर चर्चा करने के लिए आये, जो गांधीजी की जेल-यात्रा के बाईस महीनों में पैदा हो गई थी।

पहली बात तो यह हुई कि हिंदू-मुस्लिम मैत्री की जिस चट्टान पर गांधीजी एक संयुक्त, स्वतंत्र भारत की इमारत खड़ी करना चाहते थे, वह दोनों जातियों के आपसी वैर-भाव के भयंकर ज्वार में डूब गई थी। खिलाफत आंदोलन मर चुका था। इसे ब्रिटेन ने नहीं मारा था, बल्कि इसको मारनेवाला था कमालपाशा (अतातुर्क)। कमाल ने अपने अधिकांश भारतीय सहधर्मियों से अधिक बुद्धिमत्ता दिखाकर एक धर्म-निरपेक्ष प्रजातंत्र स्थापित कर दिया, अरबी लिपि की जगह लातीनी लिपि चला दी, फेज टोपी[1] और दूसरे सरजेबों पर पाबंदी लगा दी और खलीफा

१. फुंदनेदार लाल तुर्की टोपी।

को गद्दी से उतारकर नवंबर १९२२ में उसे एक अंग्रेजी फौजी जहाज में माल्टा भाग जाने दिया।

दूसरी बात यह हुई कि असहयोग आंदोलन ठंडा पड़ गया। मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास और उनके बहुत-से साथी म्युनिसिपल, प्रांतीय और राष्ट्रीय विधान मंडलों में वापस जाने के पक्ष में हो गये।

अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिए दास और नेहरू (मोतीलाल) ने १९२२ के अंत में 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की, जिसका तात्कालिक लक्ष्य था साम्राज्य के भीतर औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति।

गांधीजी अभी तक असहयोगी थे, अभी तक सविनय अवज्ञा के हामी और इस सरकार में अविश्वास करनेवाले थे। इसलिए वह अदालतों, स्कूलों, सरकारी पदों और उपाधियों के बहिष्कार पर जोर देते थे। इस बहिष्कार में जबरदस्त व्यक्तिगत त्याग की आवश्यकता थी, जिसे बहुत कम लोग सह सकते थे। दूसरी ओर स्वराज्य-पार्टी की नीति आकर्षक थी। इसलिए गांधीजी कुछ वर्षों के लिए राजनीति से अलग हट गये ।

राजनीत से अलहदगी के इस समय में गांधीजी का उद्देश्य था भारतवासियों में मानव-भ्रातृत्व की भावना का पोषण करना। चारों ओर निगाह डालने पर उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि देश के सामने तुरंत हल करने का प्रश्न हिंदू-मुस्लिम प्रश्न है।... इसलिए १८ सितंबर १९२४ को गांधीजी ने हिंदू-मुस्लिम एकता के निमित्त इक्कीस दिन का उपवास शुरू कर दिया।

लगातार हिंदू-मुस्लिम दंगों के समाचारों का सिलसिला और लड़ाई-झगड़ों, वैमनस्य तथा निराशा का वातावरण गांधीजी के शरीर और मन पर बोझ डाल रहे थे। वह जानते थे कि इक्कीस दिन का उपवास घातक हो सकता है। वह मरना नहीं चाहते थे। अभी तक बहुत-से काम अधूरे पड़े थे। वह जीवन में आनंद अनुभव करते थे। आत्महत्या उन्हें धार्मिक और शारीरिक दृष्टि से अरुचिकर थी। उपवास मृत्यु के साथ अभिसार नहीं था। यातना उनके लिए आनंददायक नहीं थी। उपवास सर्वोच्च हित—सार्वभौम मानव-भ्रातृत्व—के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा थी।

गांधीजी की नजर हमेशा लक्ष्य पर रहती थी और जब उन्हें लक्ष्य दिखाई नहीं पड़ता था, तो वह अपनी नजर उस स्थान पर रखते थे, जहां उन्हें लक्ष्य प्रकट होता हुआ मालूम पड़ता था। वह नाटकीय ढंग का महत्व भी समझते थे। इसलिए उन्होंने अपना उपवास मौलाना मुहम्मदअली के घर में आरंभ किया।

यह उपवास नेकी का एक जोखिम-भरा प्रयोग था। इसमें एक व्यक्ति के जीवन की बाजी थी और दांव था राष्ट्र की आजादी। अगर भारतवासी भाइयों की तरह एक हो जायं, तो कोई भी विदेशी अधिक समय तक उन पर प्रभुत्व नहीं रख सकता।

उपवास के दूसरे दिन गांधीजी ने 'यंग इंडिया' के लिए एक पृष्ठ का लेख 'विविधता में एकता' पर लिखा।

बीसवें दिन उन्होंने एक प्रार्थना लिखाई :

"मैं शांति की दुनिया से लड़ाई-झगड़े की दुनिया में प्रवेश करनेवाला हूं। जितना ही अधिक मैं इस पर विचार करता हूं, उतना ही अधिक असहाय महसूस करता हूं।...मैं जानता हूं कि मैं कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर सब कुछ कर सकता है। हे भगवान! मुझे अपना निमित्त बना और अपनी इच्छा के अनुसार मेरा उपयोग कर। आदमी की क्या बिसात है! नेपोलियन ने इतने हाथ-पैर फैलाये और अंत में सेंट हेलना के कारावास में बंदी हुआ। शक्तिशाली कैसर ने यूरोप पर राज्य करना चाहा और मामूली आदमी रह गया। भगवान की ऐसी ही मरजी थी। इन दृष्टांतों पर हम विचार करें और विनम्र बनें।"

ऐंड्रयूज ने लिखा है—"इक्कीसवें दिन सुबह चार बजे से पहले हमको प्रातः-कालीन प्रार्थना के लिए बुलाया गया। चंद्रमा नहीं था और रात बहुत अंधेरी थी। पूर्व से ठंडी बयार चल रही थी। बापू गहरे रंग का गरम दुशाला ओढ़े हुए थे। मैंने पूछा—'अच्छी नींद आई?' उन्होंने जवाब दिया—'हां बहुत अच्छी।' तुरंत ही यह देखकर हर्ष हुआ कि उनकी आवाज कल सुबह से कमजोर होने के बजाय दृढ़ थी।"

"करीब दस बजे," एंड्रयूज लिखते हैं—"महात्माजी ने मुझे बुलाया और कहा, 'क्या तुम्हें मेरे प्रिय ईसाई भजन के शब्द याद हैं?'

"मैंने कहा—'हां याद हैं। क्या अभी आपको गाकर सुनाऊं?'

"उन्होंने जवाब दिया—'अभी नहीं। परंतु मेरा विचार है कि जब मैं अपना उपवास तोड़ूं, तब हम धार्मिक एकता व्यक्त करनेवाली छोटी-सी रस्म अदा करें। मैं चाहता हूं कि इमामसाहब कुरान का सूरे-फातेहा पढ़ें। फिर मैं चाहता हूं कि आप ईसाई भजन गायें। ...और अंत में मैं चाहता हूं कि विनोबा उपनिषद् का पाठ करें और बालकृष्ण वैष्णव-जन का भजन गायें।'"

आखिर दोपहर का समय आ पहुंचा, जबकि उपवास समाप्त होनेवाला था।

डाक्टर लोग गांधीजी के कमरे में गये। अली-बंधु, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास और बहुत-से दूसरे लोग बिस्तर के पास जमीन पर बैठे थे। उपवास तोड़ने से पहले गांधीजी बोले और उन्होंने सबसे अनुरोध किया कि एकता की खातिर जरूरत पड़े, तो अपनी जान भी निछावर कर दें। मुस्लिम नेताओं ने अपना वचन दोहराया। फिर भजन गाये गये। डा० अन्सारी नारंगी का रस लाये और गांधीजी ने उसे पी लिया। इस प्रकार उपवास समाप्त हुआ।

: ६ :

धन और गहने

१९२४ के उत्तरार्ध में संसार में युद्धोत्तर सामान्य स्थिति और शांति उत्पन्न होती जा रही थी।

भारत भी आराम कर रहा था और फूट तथा निष्क्रियता के मजे ले रहा था। युद्ध-विराम और अमृतसर के बाद के समय का जोश ठंडा पड़ गया था। विश्वास और संघर्ष की भावना का स्थान शंका और निराशा ने ले लिया था। शायद गांधीजी की अहिंसा ने उग्र राष्ट्रीयता का उत्साह मंद कर दिया था। उनका इक्कीस दिन का उपवास असफल हो गया था। इसने बहुतों को प्रभावित किया था और कुछ लोगों का रुख भी बदल दिया था, परंतु हिंदू-मुस्लिम तनाव वैसा-का-वैसा बना हुआ था।

गांधीजी इस समय को ब्रिटेन से लड़ने के लिए उपयुक्त नहीं समझते थे। यह समय घर के किले की मरम्मत करने का था। उनका कार्यक्रम था—आनेवाले राजनैतिक अवसरों के लिए नैतिक तैयारी, ठोस रूप में हिंदू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण और खादी का प्रचार।

बुद्धिजीवी लोग अभी तक उनकी बातों के कायल नहीं हुए थे। गांधीजी का कहना था कि शिक्षित भारतवासी दलों में विभक्त होते जा रहे हैं। "उनका तरीका मेरा तरीका नहीं है।" उन्होंने चेतावनी दी कि अगर वे उनकी खादी-नीति का समर्थन नहीं करेंगे, तो "शिक्षित भारत उस एकमात्र प्रत्यक्ष तथा वास्तविक बंधन से कटकर अलग हो जायगा, जो उसे जनता के साथ बांधे हुए है।"

शिक्षित वर्ग को कायल करने में असमर्थ होने पर गांधीजी ने कहा था—"मैं

शिक्षित भारतवासियों द्वारा कांग्रेस की तरक्की और रहनुमाई के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहता और मैं पसंद करूंगा कि मेरे जैसे आदमी की अपेक्षा, जिसने अपना भाग्य पूरी तरह जनता के साथ जोड़ दिया है और जिसका शिक्षित भारत के सामूहिक मानस के साथ मौलिक मतभेद है, वे लोग ही यह काम करते रहें।"

एक अमरीकी पादरी ने एक बार गांधीजी से पूछा कि उन्हें सबसे ज्यादा परेशान करनेवाली क्या चीज है ? उन्होंने जवाब दिया—"शिक्षित वर्ग के हृदय की कठोरता।"

वह कबूल करते थे कि वह बुद्धिजीवी लोगों पर फिर भी असर डालना चाहते थे, "परंतु कांग्रेस का नेतृत्व करके नहीं, बल्कि उनके हृदयों में धीरे-धीरे प्रवेश करके।" कांग्रेस के राजनैतिक नेतृत्व में खींचे जाने पर उन्हें खेद था। अब वह उससे हट रहे थे।

१९२४ में जेल से छूटने के बाद जब उन्होंने अपना यह इरादा जाहिर किया, तो भारत का वायुमंडल विरोध की ऊंची आवाजों से भर गया। इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"मैं पसंद नहीं करता, न कभी मैंने पसंद किया है कि हर बात के लिए मुझ पर निर्भर रहा जाय। राष्ट्रीय काम-काज को चलाने का यह बिल्कुल निकृष्ट तरीका है। कांग्रेस एक आदमी का तमाशा नहीं बननी चाहिए, जैसाकि उसके बन जाने का खतरा है, चाहे वह एक आदमी कितना ही भला और महान क्यों न हो।"

इसके बावजूद उन्हें १९२५ के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए राजी कर लिया गया। उनके मित्रों ने दलील दी कि उनकी अलहदगी से कांग्रेस के दो टुकड़े हो जायंगे—एक ओर उनके रचनात्मक कार्यक्रम को माननेवाले, दूसरी ओर स्वराज्य पार्टी, जो कौंसिलों में राजनैतिक कार्य की हामी थी। उन्होंने इसकी कीमत वसूल की, कांग्रेस के सदस्यों के लिए खादी पहनने की कड़ी शर्त लगाकर।

किसीने कहा कि राजनीति से हट जाने पर उन्हें अपना नैतिक प्रभुत्व खोना पड़ेगा। इसका बिल्कुल स्पष्ट प्रत्युत्तर था—"नैतिक प्रभुत्व उससे चिपके रहने के प्रयत्न से कभी नहीं बना रह सकता। वह तो बिना चाहे आता है और बिना प्रयत्न के बना रहता है।"

सच तो यह है कि उनका नैतिक प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था, बिना इसका लिहाज किये कि वह क्या करते थे और क्या नहीं करते थे। भारत की धरती और भारतीय मनोवृत्ति उसका पोषण करती थी। १९२५ के सारे वर्ष उन्होंने

भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे की यात्रा की।

जहां-कहीं वह जाते, भीड़-की-भीड़ उन्हें घेर लेती। उन्हें देवता मानना शुरू हो गया था। एक स्थान पर उन्हें बतलाया गया कि सारी गोंड जाति उनकी पूजा करने लगी थी।

बहुत लोग उन्हें बुद्ध और कृष्ण की तरह अवतार मानने लगे। दूर-दूर से लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे।

ढाका में सत्तर वर्ष का एक बूढ़ा उनके सामने लाया गया। वह गांधीजी की तस्वीर गले में लटकाये हुए था और रो रहा था। गांधीजी के पास आते ही वह उनके पांवों में गिर पड़ा और लकवे की पुरानी बीमारी का इलाज करने के लिए उन्हें धन्यवाद देने लगा। उस बेचारे ने कहा—"जब सारे उपाय बेकार हो गये, तो मैंने गांधीजी का नाम जपना शुरू कर दिया और एक दिन में बिल्कुल चंगा हो गया।"

गांधीजी ने उसे झिड़की दी—"तुमको मैंने नहीं, बल्कि भगवान ने चंगा किया है। महरबानी करके मेरी तस्वीर तो गले में से उतार दो।"

पढ़े-लिखे लोग भी इससे बरी नहीं थे। एक बार जिस गाड़ी में गांधीजी यात्रा कर रहे थे, वह झटके के साथ रुकी। किसीने जंजीर खींच दी थी। पता लगा कि कोई वकीलसाहब सिर के बल गाड़ी से गिर गये थे। जब उन्हें उठाया गया, तो उनके कहीं चोट नहीं लगी थी। चोट न लगने का कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह गांधीजी के साथ यात्रा कर रहे थे। गांधीजी ने हंसकर कहा—"तब तो आपको गाड़ी से गिरना नहीं चाहिए था।" परंतु यह मजाक उस भक्त की समझ में नहीं आया।

जब स्त्रियां घूंघट निकाले हुए गांधीजी के सामने आतीं, तो वह कहते—"अपने भाई से क्या पर्दा ?" और वे तुरंत घूंघट हटा लेतीं।

धन इकट्ठा करने के मामले में गांधीजी न तो किसीको बख़्शते थे और न कोई उन्हें इन्कार कर सकता था। स्त्रियों के गहने उतरवाने में उन्हें खास मजा आता था। एक बार मेरे एक अमरीकी मित्र ने उनका एक चित्र लाने को कहा, जिस पर उनके हाथ से कुछ लिखा भी हो। मुझे आश्रम में एक चित्र मिल गया। मैंने गांधीजी से अनुरोध किया कि वह उस पर हस्ताक्षर कर दें। "कर दूंगा, अगर तुम हरिजन-कोष के लिए पच्चीस रुपये दो, तो।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

मैंने कहा—"दस दूंगा।" उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये।

गांधीजी के कुछ मित्र उन पर खादी को जरूरत से ज्यादा महत्व देने का दोष लगाते थे। उनका कहना था कि यह मशीन का युग है और गांधीजी की सारी शक्ति, बुद्धिमानी तथा साधुता भी समय को पीछे ले जाने में सफल नहीं हो सकती।

बहुत-से पढ़े-लिखे लोग खादी की खिल्लियां उड़ाते थे। वे इसे मोटी और खुरदरी कहते थे।

गांधीजी विचार-शक्ति और शारीरिक शक्ति को जोड़ना चाहते थे, शहर और गांव को एक करना चाहते थे, अमीर और गरीब को परस्पर बांधना चाहते थे।

इस काम ने गांधीजी को बिल्कुल थका दिया। एक-एक दिन में सभाओं के लिए तीन-चार जगह रुकना, रात में दूसरी जगह ठहरना, भारी पत्र-व्यवहार—जिसे वह कभी नहीं टालते थे, अनगिनत व्यक्तिगत मुलाकातें, जिनमें पुरुष और स्त्रियां बड़ी-से-बड़ी राजनैतिक समस्याओं पर तथा छोटी-से-छोटी व्यक्तिगत कठिनाइयों पर उनकी सलाह चाहते थे—इन सबने उन्हें कमज़ोर कर दिया। इसलिए नवंबर १९२५ में उन्होंने सात दिन का उपवास कर डाला।

भारत उनके लिए चिंतित हो उठा। उपवास क्यों? गांधीजी ने बतलाया—"जनता को मेरे उपवासों की उपेक्षा करनी होगी। ये तो मेरे जीवन के अंग हैं। अगर मैं आंखों के बिना काम चला सकूं, तो उपवासों के बिना भी रह सकता हूं। बाह्य-जगत के लिए आंखों का जो उपयोग है, वही उपयोग अंतर्जगत के लिए उपवासों का है।...शायद मैं बिल्कुल गलत काम कर रहा हूं। उस हालत में दुनिया मेरी चिता पर यह वाक्य लिख सकेगी—'ओ बेवकूफ! तू इसी लायक था'।"

गांधीजी के उपवास के फलस्वरूप उपवासों के बारे में उनके विचार जानने के लिए अनुरोधों की बाढ़ आ गई। इनका उत्तर उन्होंने 'यंग इंडिया' में एक लेख के द्वारा दिया। उन्होंने लिखा: "अपने डाक्टर-मित्रों से क्षमा मांगते हुए, परंतु अपने तथा अपने साथी-संगियों के संपूर्ण अनुभव के आधार पर मैं बिना संकोच कहता हूं कि उपवास करो, १. यदि आपको कब्ज हो, २. यदि आपमें खून की कमी हो, ३. यदि आपको बुखार आता हो, ४. यदि आपको बदहज़मी हो, ५. यदि आपके सिर में दर्द हो, ६. यदि आपको वात रोग हो, ७. यदि आपको संधिवात (गठिया) हो, ८. यदि आप झुंझलाते और क्रोध करते हों, ९. यदि आपका चित्त विषादमय हो, १०. यदि आपको हर्षातिरेक हो। फिर आपको न तो नुस्खों की जरूरत होगी, न बाजारू दवाइयों की।" उनका हर रोग के लिए एक ही पेटेंट नुस्खा था—उपवास। उन्होंने लिखा: "जब भूख लगे, तभी खाओ और वह भी तब, जब

तुम अपने खाने के लिए परिश्रम कर चुके हो।"

लेख में उपवास के लिए नौ नियम भी दिये गये : "शुरू से ही अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति का संचय करो, २. उपवास के दिनों में भोजन का विचार ही करना छोड़ दो, ३. जितना भी ठंडा पानी पी सकते हो, पीयो, ४. रोज गरम पानी से शरीर को अंगोछो, ५. नियमित रूप से एनिमा लो, ६. खुली हवा में जितना अधिक सो सकते हो, सोओ, ७. सुबह की ठंडी हवा में स्नान करो, ८. उपवास के बारे में सोचना बिल्कुल बंद कर दो, ९. तुम्हारा उपवास चाहे जिस अभिप्राय से हो, इस अमूल्य समय में सृष्टिकर्त्ता का ध्यान करो, और आपको ऐसे नये अनुभव होंगे, जिनकी आपको स्वप्न में भी आशा नहीं हुई होगी।"

गांधीजी की कांग्रेस-अध्यक्षता का वर्ष अब समाप्त हो गया था और दिसंबर १९२५ में कानपुर में उन्होंने अपनी गद्दी श्रीमती सरोजनी नायडू को सौंप दी। तब उन्होंने एक वर्ष के 'राजनैतिक मौन' का व्रत लिया।

गांधीजी ने देखा कि राजनैतिक भारत छिन्न-भिन्न तथा साहसहीन हो रहा है। अतः मौन के लिए यह अच्छा समय था।

: १०

मौन का वर्ष

मौन-वर्ष में बावन मौन-सोमवार थे, जब गांधीजी बिल्कुल नहीं बोलते थे। मौन-सोमवार के दिन वह मुलाकातियों की बातें सुनते और कभी-कभी कागज का एक टुकड़ा फाड़कर उस पर पेंसिल से कुछ जवाब लिख देते थे।

१९४२ में मैंने गांधीजी से उनके मौन का अभिप्राय पूछा।

उन्होंने बतलाया—"यह तब हुआ, जब मैं टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, मैं कठोर परिश्रम कर रहा था, सख्त गरमी में रेलगाड़ियों में सफर करता था, अनेक सभाओं में लगातार बोलता था, रेल में तथा अन्य स्थानों पर हजारों लोग मेरे पास आते थे, जो सवाल पूछते थे, अनुनय करते थे और मेरे साथ प्रार्थना करना चाहते थे। मैं सप्ताह में एक दिन आराम करना चाहता था। इसलिए मैंने मौन का दिन प्रारंभ किया। यह सही है कि बाद में मैंने इसे तरह-तरह के गुणों से ढक दिया और आध्यात्मिक जामा पहना दिया। परंतु वास्तव में नीयत सिर्फ यही थी कि मैं एक दिन की छुट्टी चाहता था।"

परंतु बावन सोमवारों के सिवा यह 'मौन' वर्ष किसी भी अर्थ में मौन नहीं था। उन्होंने यात्राएं नहीं कीं, सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं दिये, परंतु वह बातचीत करते थे, लिखते थे, मुलाकातियों से मिलते थे और भारत तथा दूसरे देशों के हजारों व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करते रहते थे।

गांधीजी के रुख में एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगा था। उन्हें शक होने लगा था कि ब्रिटेन की नीति हिंदू-मुस्लिम एकता-विरोधी है। सरकार मुसलमानों के साथ पक्षपात करती हुई मालूम देती थी।

गांधीजी का खयाल था कि हिंदू-मुस्लिम-एकता से भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। अब उन्होंने महसूस किया कि जब तक अंग्रेजों का 'तीसरा दल' यहां मौजूद हैं, तब तक हिंदू-मुस्लिम मेल-जोल लगभग असंभव है।

गांधीजी का नुस्खा था कि बहुसंख्यक हिंदू अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ अच्छा बर्ताव करें और दोनों अहिंसा का पालन करें। हिंदू लोग उग्र रूप में उन पर मुस्लिमपरस्ती का दोषारोपण करने लगे।

परंतु इस वर्ष का सबसे प्रचंड विवाद कुत्तों के बारे में हुआ। कई महीनों तक यह तूफान गांधीजी के सिर पर मंडराता रहा।

अहमदाबाद के मिल-मालिक अंबालाल साराभाई ने अपनी मिल के अहाते में चक्कर लगानेवाले साठ आवारा कुत्तों को पकड़वाकर मरवा डाला।

कुत्तों के मरवाने के बाद साराभाई घबरा गये और उन्होंने अपनी व्यथा गांधीजी के सामने रख दी। गांधीजी ने कहा—"इसके सिवा और चारा ही क्या था?"

अहमदाबाद की जीव-दया-समिति ने जब इस बात-चीत का हाल सुना, तो वह गांधीजी के सिर हो गई। एक क्रोध-भरे पत्र में उसने गांधीजी को लिखा—"जब हिंदू-धर्म किसी भी जीव की हत्या पाप मानता है, तो क्या आप इसलिए बावले कुत्तों को मारना ठीक समझते हैं कि वे आदमियों को काट खायेंगे और उनके काटने से दूसरे कुत्ते भी बावले हो जायंगे?"

गांधीजी ने इसे 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर दिया और इसके उत्तर में डेढ़ पृष्ठ का लेख छापा—"हम जैसे अपूर्ण और भूलें करनेवाले मनुजों के सामने कुत्तों को मारने के अलावा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। कभी-कभी हमारे सामने उस आदमी को मारने का अनिवार्य कर्तव्य आ जाता है, जो लोगों को मारता हुआ पाया जाय।"

इस लेख पर रोष-भरे पत्रों की बाढ़ आ गई। इतना ही नहीं, लोग आ-आकर गांधीजी को गालियां सुनाने लगे। परंतु गांधीजी अपनी बात पर अड़े रहे। 'यंग इंडिया' के दूसरे अंक में उन्होंने फिर इसी प्रकार लिखा।

कुत्तों के बारे में डाक आना जारी रहा। 'यंग इंडिया' के तीसरे अंक में गांधीजी ने इस मसले पर तीन पृष्ठ लिख डाले। उन्होंने बतलाया कि कुछ विरोधी आलोचकों ने तो शिष्टता की मर्यादा का अतिक्रमण किया है।

उन्होंने लिखा—"प्राण-हरण भी कर्तव्य हो सकता है। मान लीजिये कि कोई आदमी बदहवास होकर तलवार हाथ में लिये बेतहाशा दौड़ता फिर रहा है, जो सामने आये, उसे मार डालता है और उसको जिंदा पकड़ने की किसीकी हिम्मत नहीं होती। इस दीवाने को यमपुरी पहुंचानेवाला समाज की कृतज्ञता का पात्र होगा।"

'मौन-वर्ष' में कुत्ता-विवाद ने उत्तेजना का रिकार्ड कायम कर दिया, परंतु एक बछड़े ने भी तूफान ढा दिया। आश्रम का एक बछड़ा बीमार हो गया। गांधीजी ने उसका उपचार किया और जब उसकी वेदना देखी, तो निश्चय किया कि उसे मार डालना ही उचित है। गांधीजी के सामने डाक्टर ने बछड़े को इंजेक्शन लगाया, जिससे वह मर गया। इसके विरोध में प्रचंडता-पूर्ण पत्रों का तांता लग गया। गांधीजी दृढ़ता के साथ कहते रहे कि उन्होंने ठीक किया।

१९२६ के 'मौन-वर्ष' में गांधीजी की कलम या पेंसिल से जो बहुत से लेख निकले, उनमें उन्होंने गर्भ-निरोध के कृत्रिम उपायों का लगातार विरोध किया। वह इन्हें पश्चिमी बुराई कहते थे। परंतु वह संतति-नियंत्रण के विरोधी नहीं थे। उन्होंने हमेशा इसकी हिमायत की। परंतु वह आत्म-निग्रह—शरीर पर मन के नियंत्रण—द्वारा संतति-निग्रह के हिमायती थे।

विदेशों में गांधीजी की ख्याति फैल रही थी। फ्रांसीसी लेखक रोम्यां रोलां ने उनके बारे में एक पुस्तक लिखी। जगह-जगह से, खासकर अमरीका से, उनके पास निमंत्रण आये कि वहां आयें। उन्होंने सबको इन्कार कर दिया। उन्होंने बतलाया—"मेरा कारण बहुत सीधा-सादा है। मुझमें अभी इतना आत्म-विश्वास नहीं है कि मेरा अमरीका जाना उचित हो। मुझे संदेह नहीं है कि अहिंसा का आंदोलन चिरस्थायी हो गया है। इसकी अंतिम सफलता के बारे में मुझे किसी तरह का संदेह नहीं है। परंतु अहिंसा की प्रभावकारी शक्ति का मैं प्रत्यक्ष प्रदर्शन

नहीं दे सकता। इसलिए मैं महसूस करता हूं कि तबतक मुझे सीमित भारतीय मंच से ही प्रचार करना चाहिए।"

व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक दृष्टि से गांधीजी को कोई जल्दी नहीं थी और वह एक साल तक चुप बैठे रहे। १९२६ में राजनीति से इस छुट्टी में उन्हें मानो मजा आ रहा था। इससे उनके शरीर को आराम लेने का और उनकी आत्मा को इधर-उधर घूमने का अवसर मिल गया था।

उन्होंने मित्र बनाये उस्तरे की धार जैसे पैने दिमागवाले वकील राजगोपालाचारी, महादेव देसाई, जो उनके सचिव और शिष्य हुए और चार्ली एंड्रयूज़, जिन्हें वह 'गुड समैरिटन' (सबका भला चाहनेवाला) कहते थे। उनका कहना था—"यह मेरे लिए सगे भाई से भी बढ़कर हैं। जितना गहरा लगाव मुझे ऐंड्रयूज़ से है, उतना और किसीसे है, यह मैं नहीं समझता।" हिंदू संत को ऐंड्रयूज़ से बढ़कर कोई संत नहीं मिला। ईसाई पादरी को गांधीजी से बढ़कर कोई ईसाई नहीं मिला। शायद यह भारतीय और यह अंग्रेज इसलिए भाई-भाई थे कि वे सच्चे अर्थों में धार्मिक थे। शायद धर्म ने उन्हें इसलिए साथ जोड़ दिया था कि राष्ट्रीयता उन्हें अलग नहीं करती थी। जहां राष्ट्रीयता लोगों को अलग-अलग नहीं करती, वहां धर्म उन्हें भाई बना देता है।

: ११ :

थककर चूर

जब गांधीजी मौन के वर्ष को पार करके निकले, तो उनके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उनका कार्यक्रम अब भी वही था—हिंदू-मुस्लिम-एकता, अस्पृश्यता-निवारण और खादी-प्रचार।

दिसंबर १९२६ में साबरमती से रवाना होकर गांधीजी एक-के-बाद-एक सभाओं में प्रचार करते हुए कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गोहाटी पहुंचे। रास्ते में उन्हें एक दुखदायी घटना का समाचार मिला, जिसने भारत को दहला दिया था। अब्दुलरशीद नामक एक नौजवान मुसलमान स्वामी श्रद्धानंद से मिलने गया और उनसे धार्मिक समस्याओं पर चर्चा करने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी रोग-शय्या पर पड़े थे, डाक्टर ने उन्हें पूरे आराम की सलाह दी थी। जब स्वामीजी ने अपने कमरे के बाहर नौकर तथा अड़ियल आगंतुक के बीच झगड़े की

आवाज सुनी, तो उन्होंने उस आदमी को अंदर बुलवाया। भीतर आने पर स्वामीजी ने अब्दुलरशीद से कहा कि कमजोरी दूर होते ही वह उससे खुशी के साथ बातें करेंगे। उसने पीने को पानी मांगा। जब नौकर पानी लेने गया, तो अब्दुलरशीद ने रिवाल्वर निकालकर स्वामीजी के सीने में कई गोलियां दाग दीं और उन्हें मार डाला।

मुस्लिम समाचार-पत्र स्वामीजी पर आक्रमण कर रहे थे कि वह भारत में हिंदुओं का प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। कांग्रेस में अपने एक भाषण में गांधीजी ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि स्वामीजी उनके शत्रु नहीं थे। उन्होंने कहा कि अब्दुलरशीद अपराधी नहीं था। अपराधी तो वे लोग थे, जो एक-दूसरे के विरुद्ध विद्वेष की भावनाएं भड़काते थे।

कांग्रेस-अधिवेशन में उग्र राष्ट्रवादियों ने पूर्ण स्वाधीनता तथा इंग्लैंड से संपूर्ण संबंध-विच्छेद के पक्ष में प्रस्ताव रखा। गांधीजी ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा—"ये लोग मानव-प्रकृति में तथा खुद अपने-आप में अश्रद्धा प्रकट करते हैं। ये लोग ऐसा क्यों समझते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य के संचालकों में भी हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता? यदि भारत अपने गौरव को महसूस करे और मजबूत हो जाय, तो इंग्लैंड जरूर बदलेगा।"

गांधीजी ने तदनुसार राष्ट्र को भीतर से मजबूत बनाने के प्रयत्न जारी रखे, अन्यथा स्वाधीनता के पक्ष में प्रस्ताव का थोथे शब्द और बेकार संकेत के अरिरिक्त कोई अर्थ ही न होता।

इसलिए गांधीजी ने फिर देश का दौरा किया।

परंतु हिंदू-मुस्लिम समस्या गांधीजी के प्रयत्नों को चुनौती देती रही। उन्होंने मंजूर किया—"मैं निरुपाय हो गया हूं। मैं इससे हाथ धो बैठा हूं, परंतु मैं ईश्वर में विश्वास करनेवाला हूं।"

कलकत्ता से गांधीजी बिहार होते हुए महाराष्ट्र पहुंचे। पूना में विद्यार्थियों ने उनसे अंग्रेजी में भाषण देने की मांग की। गांधीजी ने अंग्रेजी में बोलना शुरू किया, लेकिन थोड़ी देर बाद हिंदुस्तानी में बोलने लगे, क्योंकि वह इसे राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वहां से वह बंबई आये, जहां लोगों ने उनकी खूब आवभगत की और खूब रुपया दिया। यहां से वह फिर बंगलौर की गाड़ी पकड़ने के लिए पूना गये।

पूना स्टेशन पर गांधीजी ने इतनी कमजोरी महसूस की कि उन्हें उठाकर बंगलौर की गाड़ी में बिठाया गया। उनकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और वह बड़ी मुश्किल से एक जरूरी पुर्जा लिख सके। रात की नींद ने उन्हें ताजा कर

दिया और दूसरे दिन कोल्हापुर में उन्होंने सात सभाओं में भाषण दिये, परंतु आखिरी सभा में वह थकावट से चूर होकर गिर पड़े।

फिर भी वह काम करते ही रहे। दूसरे दिन उनकी तबीयत इतनी गिर गई कि उनमें भाषण देने की शक्ति नहीं रही। परंतु वह अपने मेजबान के घर की बरसाती पर बैठ गये और भीड़ उनके सामने से होकर निकलने लगी। बेलगांव में भी वह एक सभा में तो गये, परंतु बोले नहीं। अंत में एक डाक्टर ने उन्हें समझाया कि उनकी हालत चिंताजनक है और उन्हें आराम करना चाहिए। तब उन्हें एक पहाड़ी नगर में ले जाया गया, जहां समुद्र की हवा खूब आती थी।

अपने मित्र तथा चिकित्सक डा० जीवराज मेहता के आग्रह पर गांधीजी दो महीने आराम करने के लिए राजी हो गये।

१९२७ के अप्रैल महीने में गांधीजी मैसूर में स्वास्थ्य-लाभ करते रहे। रियासत के प्रधान मंत्री उनसे मिलने आये और बातचीत के दौरान में उन्होंने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यदि मैसूर के सरकारी कर्मचारी खादी पहनें, तो उन्हें कोई ऐतराज नहीं होगा।

बाद के वर्षों में गांधीजी के चिकित्सक डा० विधानचंद्र राय तथा बंबई के डा० मंचेरशाह गिल्डर ने बतलाया कि मार्च १९२७ में कोल्हापुर में गांधीजी को दिल का हल्का-सा दौरा हुआ था। बाद में शरीर पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं मालूम दिया। डा० गिल्डर, जो १९३२ के बाद गांधीजी के हृदय-विशेषज्ञ बन गये थे, बतलाते हैं कि गांधीजी का हृदय उनकी आयु के औसत आदमी के हृदय से अधिक बलवान था। उनकी (डा० गिल्डर की) जानकारी में गांधीजी का रक्तचाप कभी बढ़ा हुआ नहीं पाया गया, सिवा उन मौकों के, जब वह किसी महत्वपूर्ण निश्चय पर पहुंचने में लगे हुए होते थे। एक बार गांधीजी जब सोने लगे, तो उनका रक्तचाप बढ़ा हुआ था, परंतु सुबह सामान्य था, क्योंकि रात भर में उन्होंने एक निर्णायक प्रश्न पर अपना मत स्थिर कर लिया था। डा० गिल्डर का कहना है कि झुंझलाहट पैदा करनेवाले व्यक्तियों की उपस्थिति या सार्वजनिक आक्रमण, या अपने काम के बारे में चिंता, गांधीजी के रक्तचाप पर कभी असर नहीं डालती थी; रक्तचाप को बढ़ानेवाला वह मंथन होता था, जो किसी निश्चय से पूर्व उनके मस्तिष्क में चलता था।

नये वाइसराय लार्ड अरविन अप्रैल १९२६ में रीडिंग का स्थान लेने के लिए आ चुके थे।

कुछ क्षेत्रों में वाइसराय के पद पर एक धर्मपरायण व्यक्ति की नियुक्ति, एक धर्मपरायण देश पर, जिसका विरोधी नेता एक महात्मा था, पंचवर्षीय शासन के लिए शुभ शकुन मानी गई।

परंतु उन्नीस महीनों तक अरविन ने न तो गांधीजी को बुलाया और न इस सबसे अधिक प्रभावशाली भारतीय से भारत की स्थिति पर चर्चा करने की कोई इच्छा प्रकट की। २६ अक्तूबर १९२७ को मंगलौर में गांधीजी के पास संदेश पहुंचा कि वाइसराय ५ नवंबर को उनसे मिलना चाहते हैं।

महात्माजी ने तुरंत अपना दौरा स्थगित कर दिया और दिल्ली की यात्रा की। पूर्व-निश्चित समय पर उन्हें वाइसराय के सामने उपस्थित किया गया। भीतर जाते समय वह अकेले ही थे। वाइसराय ने विधान मंडल के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल, १९२७ के कांग्रेस-अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगर तथा १९२८ के निर्वाचित कांग्रेस-अध्यक्ष डा० अनसारी को भी बुलाया था।

जब ये लोग बैठ गये, तो वाइसराय ने इन्हें एक पर्चा दिया, जिसमें एक सरकारी ब्रिटिश कमीशन के भावी आगमन की घोषणा थी। इस कमीशन के नेता सर जॉन साइमन थे तथा इसका उद्देश्य भारतीय स्थिति पर रिपोर्ट देना और राजनैतिक सुधारों की सिफारिश करना था।

इबारत पढ़कर गांधीजी ने ऊपर देखा और प्रतीक्षा की। वाइसराय कुछ नहीं बोले।

गांधीजी ने पूछा—"क्या हमारी मुलाकात का सिर्फ यही मतलब है ?"

"जी, हां।" वाइसराय ने उत्तर दिया।

बस, मुलाकात यहीं खत्म हो गई। गांधीजी चुपचाप दक्षिण भारत लौट गये।

गांधीजी का वाइसराय से सामना होने के बाद अन्य भारतीय नेताओं को भी साइमन कमीशन के भावी आगमन की सूचना इसी ढंग से दी गई। किसीके साथ भी कोई चर्चा या ब्यौरेवार बात नहीं हुई। अरविन ने आशा प्रकट की भारतवासी इस कमीशन के सामने गवाहियां दें और सुझाव पेश करें।

साइमन कमीशन बर्कनहैड[1] के दिमाग की अधकचरी उपज थी।

साइमन कमीशन के समाचार ने भारत को स्तंभित कर दिया। यह कमी-

---

१. लार्ड बर्कनहैड उस समय भारत के लिए ब्रिटिश सरकार के राज्य-सचिव थे।

शन भारत के भाग्य का फैसला करनेवाला था। परंतु इसके सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था।

३ फरवरी १९२८ को जब साइमन कमीशन ने बंबई में पदार्पण किया, तो काले झंडों तथा 'साइमन वापस जाओ' के नारों से उसका स्वागत किया गया। जबतक कमीशन भारत में रहा, उसके सदस्यों के कानों में यह नारा गूंजता रहा।

साइमन ने समझौते की कोशिश की। अरविन ने प्रलोभन दिये और मिन्नतें कीं, परंतु प्रतिनिधि की हैसियत रखनेवाले एक भी भारतीय ने उनसे नहीं मिलना चाहा। कमीशन ने ईमानदारी से मेहनत की और तथ्यों तथा आंकड़ों का होशियारी से संपादित एक पोथा तैयार किया। ब्रिटिश शासन पर यह एक विद्वतापूर्ण मर्सिया था।

: १२ :

सत्याग्रह की तैयारी

गांधीजी लड़ाई में बहुत धीरे-धीरे उतरते थे। अधिकतर विद्रोहियों के विपरीत वह अपने विपक्षी से युद्ध-सामग्री प्राप्त नहीं करते थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें उनके विशिष्ट स्व-निर्मित हथियार 'सविनय अवज्ञा' के उपयोग का अवसर दिया था। फरवरी १९२२ में चौरीचौरा में भीड़ द्वारा पुलिस के सिपाहियों की निर्मम हत्या ने उन्हें बारडोली का सत्याग्रह स्थगित करने को प्रेरित किया था, परंतु वह भूले नहीं। उन्होंने छः वर्ष प्रतीक्षा की और १२ फरवरी १९२८ को उसी स्थान, बारडोली में, सत्याग्रह का शंख बजाया।

गांधीजी ने इसका संचालन खुद नहीं किया। वह तो दूर से निगहबानी करते रहे, उसके बारे में लंबे-लंबे लेख लिखते रहे और व्यापक रूप से निर्देशन और प्रेरणा देते रहे। वास्तविक नेता थे वल्लभभाई पटेल और उनके सहायक थे। अब्बास तैयबजी।

पटेल के नेतृत्व में गांववालों ने टैक्स देने बंद कर दिये। कलैक्टर ने उनकी भैंसें जब्त कर लीं। किसानों को खेतों से खदेड़ दिया गया, रसोईघरों पर धावे बोले गये और टैक्स के बदले में बरतन-भांडे कुर्क कर लिये गये। किसान-लोग अहिंसा का पालन करते रहे।

१२ जून को बारडोली के सम्मान में सारे भारत में हड़ताल मनाई गई।

पटेल की गिरफ्तारी की किसी समय भी आशंका थी। इसलिए २ अगस्त को गांधीजी बारडोली जा पहुंचे। ६ अगस्त को सरकार ने घुटने टेक दिये। उसने वादा किया कि सब कैदी छोड़ दिये जायेंगे, कुर्क की हुई सब जमीनें वापस कर दी जायेंगी, कुर्क किये जानवर या उनकी कीमतें लौटा दी जायेंगी और मूल बात यह, कि बढ़े हुए टैक्स मंसूख कर दिये जायेंगे।

गांधीजी ने दिखा दिया कि उनका हथियार कारगर सिद्ध हुआ।

क्या वह इसका विशाल पैमाने पर उपयोग करना चाहेंगे ?

भारत में उथल-पुथल मच रही थी। ३ फरवरी १६२८ से, जब साइमन कमीशन ने बंबई में कदम रखा था, भारत ने उसका बहिष्कार कर दिया था। गांधीजी का बहिष्कार इतना पूर्ण था कि उन्होंने कमीशन का कभी नाम तक नहीं लिया। उनके लिए उसका अस्तित्व ही नहीं था। परंतु दूसरे लोगों ने उसके विरुद्ध प्रदर्शन किये। लाहौर में एक विशाल साइमन-विरोधी सभा में पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय पर पुलिस की लाठी पड़ी और कुछ ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। इसी समय के लगभग लखनऊ में साइमन-विरोधी सभा में जवाहरलाल नेहरू पर भी लाठियां पड़ीं। दिसंबर १६२२ में लाहौर के सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट सांडर्स की हत्या कर दी गई। भगतसिंह, जिस पर इस हत्या का आरोप था, फरार हो गया और उसे तुरंत ही एक वीर का दर्जा प्राप्त हो गया।

बंगाल में तूफानी चिड़िया सुभाषचंद्र बोस, जिनकी विचार-धारा थी —"मुझे खून दो और मैं तुमसे आजादी का वादा करता हूं" बहुत लोकप्रिय हो गये और उतावले नवयुवकों का एक बड़ा दल उनके पीछे हो गया। गांधीजी इस नाजुक वातावरण को पहचान गये। उनके मुंह से एक शब्द निकलने की देर थी कि देश-भर में हजार बारडोलियां उठ खड़ी होतीं। परंतु चतुर युद्ध-नायक की तरह गांधीजी लड़ाई के लिए उपयुक्त समय और स्थान हमेशा सावधानी से चुनते थे।

अनिश्चितता की इस मानसिक स्थिति में गांधीजी दिसंबर १६२८ में कलकत्ता में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन के लिए चल पड़े।

कांग्रेस अधिवेशन में सीधी कार्रवाई की मांग की गई। लेकिन गांधीजी जानते थे कि संगठन क्या चीज है और वास्तविकता क्या है। कांग्रेस युद्ध की बात करती थी। क्या यह सेना कारगर थी ? गांधीजी कांग्रेस की 'कायापलट' करना चाहते थे।

परंतु कांग्रेस अपना प्रतिवाद नहीं चाहती थी। सावधानी उसके कार्यक्रम में

ही नहीं थी। नवयुवकों का नेतृत्व करनेवाले सुभाषचंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि तुरंत स्वाधीनता की घोषणा कर दी जाय और उसके बाद स्वाधीनता का युद्ध छेड़ दिया जाय। गांधीजी ने सलाह दी कि ब्रिटिश सरकार को दो वर्ष की चेतावनी दी जाय। दबाव पड़ने पर उन्होंने इसे कम करके एक वर्ष कर दिया। यदि ३१ दिसंबर १९२९ तक भारत को औपनिवेशिक दर्जे के अंतर्गत आजादी न मिली, तो "मैं अपने आपको 'इंडिपेंडेंसवाला' घोषित कर दूंगा।"

१९२९ का वर्ष नाजुक और निर्णायक बनने जा रहा था।

८ अप्रैल को भगतसिंह ने लेजिस्लेटिव असेंबली भवन में जाकर सदस्यों के बीच दो बम फेंके और फिर पिस्तौल से गोलियां दागना शुरू कर दिया। सर जान साइमन ने गैलरी में बैठे हुए इस कांड को देखा। यह भारत में उनका अंतिम बड़ा अनुभव था। उसी महीने कमीशन इंग्लैंड लौट गया।

मई १९२९ में इंग्लैंड के राष्ट्रीय चुनावों में मजदूर दल को अल्पमत प्राप्त हुआ, परंतु चूंकि इस दल के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी, इसलिए उसीने पद-ग्रहण किया और रैमजे मैकडॉनल्ड प्रधान मंत्री बने। जून में लार्ड अरविन नई सरकार से, और खासकर भारत के नये राज्य-सचिव मि० वेजवुड बेन से, सलाह-मशविरा करने इंग्लैंड गये।

१९३० की पहली जनवरी अब दूर नहीं थी।

लार्ड अरविन मजदूर सरकार के सदस्यों आदि से कई महीने चर्चाएं करके अक्तूबर में वापस आ गये। वाइसराय ने देखा कि भारत की परिस्थिति 'खतरे की हालत के किनारे पर' है। १९३० की महान चुनौती के लिए पूरी तैयारी कर ली गई।

तदनुसार अक्तूबर १९२९ की अंतिम तारीख को लार्ड अरविन ने 'अपना अत्यंत महत्वपूर्ण बयान' दिया, जिसमें गोलमेज परिषद बुलाये जाने की बात थी।

कुछ दिन बाद गांधीजी दिल्ली में डा० अनसारी, श्रीमती ऐनी बेसेंट, मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, पंडित मालवीय, श्रीनिवास शास्त्री आदि से मिले और एक 'नेताओं का घोषणा-पत्र' प्रकाशित किया गया। वाइसराय की घोषणा के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अनुकूल थी।

गांधीजी तथा वयोवृद्ध राजनीतिज्ञों के इस मैत्रीपूर्ण रुख ने तूफान खड़ा कर दिया, खासकर जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस की ओर से। परंतु इससे विचलित न होकर तथा इस भरोसे के साथ कि राष्ट्र अंग्रेजों से शांतिपूर्ण सम-

झौता स्वीकार कर लेगा, गांधीजी तथा उनके साथियों ने अपनी खोजबीन जारी रखी। उन्होंने २३ दिसंबर को तीसरे पहर वाइसराय से मिलने का समय निश्चित कर लिया।

यह मुलाकत ढाई घंटे चली। गांधीजी ने पूछा कि क्या वाइसराय महोदय ऐसी गोलमेज परिषद का वादा कर सकते हैं, जो भारत को संपूर्ण और तुरंत औपनिवेशिक दर्जा देनेवाला मसविदा तैयार करे, जिसमें साम्राज्य से विलग होने का अधिकार भी सम्मिलित हो ?

अरविन ने उत्तर दिया कि कोई खास रुख अख्तियार करने के लिए वह परिषद के निर्णय की पूर्व-कल्पना करने में या उसे बांधने में बिल्कुल असमर्थ हैं।

ये घटनाएं दिसंबर के अंत में, लाहौर में, जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में होनेवाले ऐतिहासिक कांग्रेस-अधिवेशन की भूमिका बनीं।

और ठीक उसी क्षण जब १९२९ का वर्ष समाप्त हुआ और १९३० का वर्ष प्रारंभ हुआ, कांग्रेस ने गांधीजी को अपना सूत्रधार बनाकर आजादी का झंडा फहरा दिया और पूर्ण स्वाधीनता तथा संबंध-विच्छेद की घोषणा करनेवाला प्रस्ताव पास कर दिया।

सत्याग्रह कब, कहां और किस मुद्दे से किया जाय, इसका निर्णय गांधीजी पर छोड़ दिया गया।

: १३ :

समुद्र-तट की रंगभूमि

गांधीजी व्यक्तियों के सुधारक थे। इसलिए उन्हें उन साधनों की चिंता थी, जिनके द्वारा भारत की मुक्ति प्राप्त हो सके। यदि साधनों ने व्यक्ति को भ्रष्ट कर दिया, तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

नव वर्ष की सांझ के हृदयस्पर्शी समारोह के बाद के सप्ताहों में गांधीजी सत्याग्रह के ऐसे रूप की तलाश में रहे, जिसमें हिंसा की गुंजाइश न हो।

रवींद्रनाथ ठाकुर, जो उन दिनों साबरमती के आस-पास थे, १८ जनवरी को गांधीजी से मिलने आये। उन्होंने पूछा कि १९३० में गांधीजी देश को क्या देनेवाले हैं। गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं रात-दिन व्यग्रतापूर्वक सोच रहा हूं, परंतु मुझे घोर अंधकार में प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं देती।"

छः सप्ताह तक गांधीजी अंतरात्मा की आवाज सुनने की राह देखते रहे।

अंत में शायद उन्होंने यह आवाज सुन ली, जिसका अर्थ यही हो सकता था कि वह एक निश्चय पर पहुंच गये हैं, क्योंकि 'यंग इंडिया' का २७ फरवरी का अंक गांधीजी के 'मेरी गिरफ्तारी के बाद' शीर्षक संपादकीय लेख से शुरू हुआ, और फिर उसमें नमक-कानून के अत्याचारों को बहुत जगह दी गई। अगले अंक में नमक-कानून के अंतर्गत दी जानेवाली सजाओं का जिक्र किया गया। २ मार्च १९३० को गांधीजी ने वाइसराय को एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें नोटिस दिया गया कि नौ दिन बाद सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

किसी सरकार के सर्वोच्च अधिकारी को इससे अधिक निराला पत्र आज तक नहीं मिला था :

"प्रिय मित्र,

"सत्याग्रह शुरू करने से पूर्व और जिस खतरे से मैं इतना डर रहा हूं, उसे उठाने से पूर्व, मैं आपसे बात करना और कोई रास्ता निकालना चाहता हूं।

"मेरी निजी निष्ठा बिल्कुल स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को चोट नहीं पहुंचा सकता, आदमियों को तो पहुंचा ही कैसे सकता हूं, चाहे वे मुझे या मेरे लोगों को कितना ही भारी नुकसान क्यों न पहुंचायें ? इसलिए यह मानते हुए भी, कि ब्रिटिश शासन एक अभिशाप है, मैं किसी भी अंग्रेज को या उसके उचित हित को हानि पहुंचाने का इरादा नहीं करता।

"और ब्रिटिश शासन को मैं अभिशाप क्यों मानता हूं ?

"अपनी उत्तरोत्तर शोषण की पद्धति और बरबाद करनेवाले सैनिक तथा सिविल शासन के खर्चे ने, जिसे यह देश कदापि नहीं उठा सकता, यहां के करोड़ों मूक व्यक्तियों को चूस डाला है।

"राजनैतिक रूप से उसने हमें गुलाम बना दिया है। उसने हमारी संस्कृति की जड़ खोखली कर दी है और हम लोगों को शस्त्र न रखने देने के निर्दय निषेध की नीति के कारण आध्यात्मिक रूप से भी हमें तेजहीन कर दिया है।

"मुझे भय है कि निकट भविष्य में भारत को स्वायत्त शासन देने की कोई इच्छा नहीं है।...

"यह नितांत स्पष्ट है कि जिम्मेदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश-नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार नहीं करते, जिससे भारत में ब्रिटेन के व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।...यदि शोषण की प्रक्रिया का अंत करने के लिए कुछ

नहीं किया गया, तो बड़ी तेजी से भारत रक्तरंजित हो जायगा।

"मैं आपके सामने कुछ मुख्य बातें उपस्थित करता हूं।

"सारी मालगुजारी का बहुत बड़ा भाग भूमि से प्राप्त होता है। उस पर जो भंयकर दबाव हैं, उसमें स्वतंत्र भारत में पर्याप्त परिवर्तन होना चाहिए। सारी मालगुजारी पद्धति में ऐसा सुधार होना चाहिए कि उससे किसानों का मुख्य रूप से हित साधन भला हो। लेकिन ब्रिटिश-पद्धति तो ऐसी बनाई गई प्रतीत होती है कि उससे किसान के प्राण ही निकाल लिए गये हैं। अपने को जीवित रखने के लिए उसे जिस नमक का प्रयोग करना पड़ता है, उस तक पर इस ढंग से कर लगा है कि उसका सबसे अधिक बोझ उसी पर पड़ता है। कानून सबको एक लाठी से हांकता है। गरीब आदमी के लिए यह कर और भी भारी दीख पड़ता है, जब यह ध्यान आता है कि यह ऐसी चीज है, जिसे गरीब आदमी अमीर से अधिक खाता है।... आबकारी की आमदनी भी गरीबों से ही होती है। वह उनके स्वास्थ्य और नैतिकता की बुनियाद को ही खोखला कर डालती है।

"ऊपर जिस अन्याय का उल्लेख किया गया है, वह उस विदेशी शासन को चलाने के लिए किया जाता है, जो स्पष्टतः संसार का सबसे मंहगा शासन है। अपने वेतन को ही लीजिये। वह प्रति मास २१,०००)रुपये से ऊपर पड़ता है, अप्रत्यक्ष भत्ते आदि अलग। आपको ७००) प्रति दिन से अधिक मिलता है, जबकि भारत की औसत आमदनी दो आने प्रति-दिन से भी कम है। इस प्रकार आप भारत की औसत आमदनी से पांच हजार गुने से भी कहीं अधिक ले रहे हैं। ब्रिटिश प्रधान-मंत्री ब्रिटिश की औसत आमदनी का सिर्फ नव्वे गुना लेता है। मैं घुटने टेककर आपसे विनय करता हूं कि आप इस विषय पर विचार करें। यह निजी दृष्टांत मैंने एक दुखद सत्य को आपके गले उतारने की खातिर लिया है। मनुष्य के रूप में आपके प्रति मेरे मन में इतना मान है कि मैं आपकी भावनाओं को चोट पहुंचाने की इच्छा नहीं कर सकता। मैं जानता हूं, जितना वेतन आप पाते हैं, उतने की आपको आवश्यकता नहीं है। शायद आपका समूचा वेतन दान में जाता है। लेकिन जिस नियम द्वारा ऐसी व्यवस्था होती है, उसे तत्काल खत्म कर देना चाहिए। वाइसराय के वेतन के बारे में जो सत्य है, वही सारे आम शासन के बारे में है। ... ब्रिटिश सरकार की सुसंगठित हिंसा को सुव्यवस्थित अहिंसा ही रोक सकती है।...

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी, जो फिलहाल सत्याग्रह-

आश्रम के वासियों तक ही सीमित होगी, परंतु अंत में उसमें वे लोग भी आ सकेंगे, जो सम्मिलित होना चाहेंगे।...

"मेरी इच्छा अहिंसा द्वारा ब्रिटिश लोगों में हृदय-परिवर्तन करने और इस प्रकार उन्हें यह दिखाने की है कि भारत को उन्होंने कितना नुक्सान पहुंचाया है। मैं आपके देशवासियों को हानि नहीं पहुंचाना चाहता—मैं तो उनकी सेवा ही करना चहता हूं, जैसेकि अपने देश की करना चाहता हूं।...

"यदि भारत के लोग मेरा साथ दें, जैसीकि मुझे आशा है कि देंगे, तो वे जो कष्ट सहन करेंगे, उससे पत्थर-जैसा हृदय भी पिघल जायगा। हां, यदि ब्रिटिश राष्ट्र इससे पहले ही पीछे हट जाय, तो बात दूसरी है।

"सविनय-अवज्ञा की योजना द्वारा उन बुराइयों का निराकरण होगा, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है। मैं बड़े आदर-भाव से आपको आमंत्रण देता हूं कि आप उन बुराइयों को तत्काल दूर करने के लिए मार्ग प्रशस्त करें और इस प्रकार समान व्यक्तियों के सच्चे सम्मेलन के लिए रास्ता साफ करें। यदि आप इन बुराइयों को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं निकाल सकते और यदि मेरे इस पत्र का आपके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो इस महीने के ग्यारहवें दिन मैं आश्रम के उतने संगी-साथियों के साथ, जितने कि मैं ले सकूंगा, नमक-कानून की धारा को तोड़ने के लिए निकल पड़ूंगा।... मैं जानता हूं कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरी योजना को विफल कर सकते हैं। मुझे आशा है कि अनुशासित ढंग पर हजारों लोग मेरे बाद इस काम को जारी रखने के लिए तैयार होंगे।...

"यदि आप इस मामले की मुझसे चर्चा करना चाहें और तब तक के लिए इस पत्र के प्रकाशन को स्थगित करना चाहें, तो तार दे दीजिये। तार पाते ही मैं खुशी से रोक दूंगा।...

"यह पत्र मैंने किसी भी प्रकार धमकी देने के लिए नहीं लिखा, बल्कि एक निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवाले के सामान्य तथा पवित्र कर्तव्य के रूप में लिखा है। इसलिए मैं इसे एक ऐसे युवक अंग्रेज-मित्र के हाथ भेज रहा हूं, जो भारतीय हित में विश्वास करता है।

आपका सच्चा मित्र
मो० क० गांधी"

इस पत्र को वाइसराय के पास ले जानेवाले एक अंग्रेज शांतिवादी (क्वेकर) रेजिनाल्ड रेनाल्ड्स थे। उन्होंने वाइसराय भवन में जाकर यह पत्र वाइसराय को

दिया, जो उसे लेने के लिए मेरठ का पोलो मैच छोड़कर तत्काल लौट आये थे।

अरविन ने उत्तर न देना ही पसंद किया। उनके सचिव ने कुछ शब्दों में प्राप्ति-स्वीकार करते हुए लिख भेजा—"हिज एक्सेलेंसी को यह जानकर खेद हुआ कि आप ऐसी कार्य-प्रणाली का विचार कर रहे हैं, जिसमें कानून का उल्लंघन और सार्वजनिक शांति को खतरा स्पष्ट रूप से अवश्यंभावी है।"

इस कानून और व्यवस्था के पुर्जे ने, जिसमें न्याय और नीति का मामला सुलझाने की अस्वीकृति दी गई थी, गांधीजी के मुंह से ये शब्द निकलवाये—"मैंने घुटने टेककर रोटी मांगी और बदले में मुझे पत्थर मिला।" अरविन ने गांधीजी से मिलने से इन्कार कर दिया। उन्हें गिरफ्तार भी नहीं कराया। गांधीजी ने कहा—"सरकार बड़ी हैरान और परेशान है।" विद्रोही को न पकड़ना खतरे की बात थी और पकड़ते, तो उसमें भी खतरा था।

११ मार्च को सारा देश जोश और कौतूहल से उमड़ रहा था।

गांधीजी को प्रतीत हुआ कि जीवन का यह सबसे अच्छा अवसर है।

१२ मार्च को प्रार्थना करके गांधीजी तथा आश्रम के अठहत्तर सदस्यों ने साबरमती से डांडी के लिए प्रस्थान किया। गांधीजी के हाथ में एक इंच मोटी और ५४ इंच लंबी लाठी थी, जिसके एक ओर लोहा लगा था। धूल भरे रास्तों और गांवों में होकर गांधीजी और उनके ७८ अनुयायियों ने २४ दिन में २०० मील रास्ता पार किया। गांधीजी ने कहा—"हम लोग भगवान के नाम पर कूच कर रहे हैं।"

जब ५ अप्रैल को गांधीजी डांडी पहुंचे, तो आश्रमवासियों का यह छोटा-सा दल बढ़ते-बढ़ते कई हजार की अहिंसक सेना बन गया।

५ अप्रैल की रात भर आश्रमवासियों ने प्रार्थना की और सुबह सब लोग गांधीजी के साथ समुद्र तट पर गये। गांधीजी ने समुद्र में गोता लगाया, किनारे पर लौटे और लहरों का छोड़ा हुआ कुछ नमक उठाया। इस प्रकार गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के उस कानून को तोड़ दिया, जिसके अनुसार सरकारी ठेके से न लिया हुआ नमक रखना गुनाह था।

एक शक्तिशाली सरकार को सार्वजनिक रूप से चुनौती देते हुए चुटकी भर नमक उठाना और मुजरिम बन जाना—इसके लिए एक महान कलाकार की सूझ-बूझ, शान और प्रदर्शनात्मक बुद्धि की आवश्यकता थी।

नमक उठाने के बाद गांधीजी वहां से हट गये। इससे भारत भर को इशारा मिल गया।

इसके बाद तो बिना हथियारों का बलवा हो गया। भारत के लंबे समुद्र-तट पर का हर एक ग्रामवासी नमक बनाने के लिए तसला लेकर समुद्र में उतर पड़ा। पुलिस ने सामूहिक रूप से गिरफ्तारियां शुरू कर दीं। पुलिस ने बल-प्रयोग भी शुरू कर दिया। सत्याग्रही लोग गिरफ्तारी का प्रतिरोध नहीं करते थे; परंतु अपने बनाये हुए नमक की जब्ती का प्रतिरोध करते थे।

गांवों में लाखों लोग अपना नमक बनाने लगे। नमक-सत्याग्रह सारे देश में फैल गया। लगभग एक लाख राजनैतिक अपराधी जेलों में ठूंस दिये गये।

गांधीजी ने डांडी के समुद्र-तट पर नमक बनाया। उसके एक महीने बाद सारा भारत क्षुब्ध होकर विद्रोह की भावना से उबल रहा था। परंतु चटगांव के सिवा भारत में कहीं हिंसा नहीं हुई और कांग्रेस की ओर से तो कहीं हिंसा हुई ही नहीं।

४ मई को गांधीजी का शिविर कराडी में था। उसी रात को पौन बजे, जब सब सोये हुए थे, सूरत के अंग्रेज जिला मजिस्ट्रेट ने तीस हथियारबंद सिपाहियों और दो अफसरों के साथ बाड़े में धावा बोल दिया। अंग्रेज अफसर ने गांधीजी के चेहरे पर टार्च की रोशनी डाली। गांधीजी जाग उठे और मजिस्ट्रेट से बोले—"क्या आप मुझे चाहते हैं ?"

मजिट्रेट ने औपचारिक रूप से पूछा :

"क्या आप मोहनदास करमचंद गांधी हैं ?"

"जी हां।"

"मैं आपको गिरफ्तार करने आया हूं।"

"कृपया मुझे नित्य-कर्म के लिए कुछ समय दीजिये।"

मजिस्ट्रेट ने मान लिया।

मंजन करते-करते गांधीजी ने कहा—"मजिस्ट्रेट साहब, क्या मैं जान सकता हूं कि मुझे किस अपराध में गिरफ्तार किया जा रहा है ? क्या दफा १२४ में?"

"जी नहीं, दफा १२४ में नहीं। मेरे पास लिखित हुक्मनामा है।"

गांधीजी ने पूछा—"क्या आप उसे पढ़कर सुनाने की कृपा करेंगे ?"

मजिस्ट्रेट ने पढ़ा : "चूंकि गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल मोहनदास करमचंद गांधी की कार्रवाइयों को खतरा समझते हैं, इसलिए उनका आदेश है कि उक्त मोहनदास करमचंद गांधी को १८२७ के रेगुलेशन २५ के मातहत प्रतिबंध में

रखा जाय और सरकार की मर्जी हो तबतक वह कैद भुगते और तुरंत यरवदा सेंट्रल जेल पहुंचाया जाय।"

गांधीजी ने पंडित खरे से भजन गाने को कहा। भजन के दौरान में गांधीजी ने सिर झुका लिया और प्रार्थना की। फिर वह मजिस्ट्रेट के पास गये और वह उन्हें तैयार खड़ी हुई गाड़ी में ले गया।

गांधीजी पर न तो मुकदमा चला, न सजा दी गई और न जेल की अवधि ही निश्चित की गई।

जेल में दाखिल होने पर अधिकारियों ने गांधीजी को नापा। वह ५ फुट ५ इंच ऊंचे थे। शायद कभी उन्हें फिर तलाश करने की जरूरत पड़े, इसलिए उन्होंने उनके शरीर पर किसी चिह्न की खोज की। दाहिनी जांघ पर घाव का निशान था, नीचे के दाहिने पलक पर तिल था और बाईं कोहनी के नीचे फली के आकार का एक निशान।

गांधीजी को जेल में रहना प्रिय था। अपनी गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद उन्होंने मीराबहन को लिखा—"मैं यहां खूब खुश हूं और नींद की कमी पूरी कर रहा हूं।"

अपने मौनवार को उन्होंने आश्रम के छोटे बच्चों के नाम एक पत्र भेजा :

"छोटी चिड़ियां, मामूली चिड़ियां, बिना पंखों के नहीं उड़ सकतीं। हां, पंख हों तो सब उड़ सकती हैं। लेकिन बिना पंखोंवाले तुम लोग उड़ना सीख लोगे, तो तुम्हारी सारी मुसीबतें सचमुच दूर हो जायेंगी। और मैं तुम्हें उड़ना सिखाऊंगा।

"देखो, मेरे पंख नहीं हैं, लेकिन मन से मैं उड़कर रोज तुम्हारे पास पहुंच जाता हूं। देखो, वह रही छोटी विमला, यह रहा हरी और यह है धरमकुमार। और मन से तुम भी उड़कर मेरे पास आ सकते हो! ...

"मुझे बताओ कि तुम में से कौन-कौन प्रभुभाई की शाम की प्रार्थना में ठीक से प्रार्थना नहीं करते ?

"तुम सब अपनी सही करके मुझे चिट्ठी भेजो। जो सही न कर सकें, वे क्रास (×) लगा दें।

—बापू के आशीर्वाद"

गिरफ्तारी के कुछ ही समय पहले गांधीजी ने वाइसराय के नाम एक पत्र का मसविदा तैयार किया था जिसमें लिखा था कि "यदि ईश्वर की इच्छा हुई," तो उनका इरादा कुछ साथियों को लेकर धरासना के नमक-भंडार पर धावा

करने का है। ईश्वर को यह मंजूर नहीं था, परंतु गांधीजी के साथी इस योजना पर अमल करने के लिए चल पड़े। श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में पच्चीस-सौ स्वयंसेवक उस स्थान पर जा पहुंचे।

युनाइटेड प्रेस का विख्यात संवाददाता वेब मिलर वहां मौजूद था और उसने वहां का आंखों-देखा हाल लिखा है—"नमक की विशाल क्यारियों के चारों ओर खाइयां खोद दी गई थीं और कांटेदार तारों की बाड़ लगा दी गई थी। मणीलाल गांधी के नेतृत्व में गांधीजी की सेना बिल्कुल खामोशी के साथ आगे बढ़ी और बाड़े से लगभग सौ गज की दूरी पर रुक गई। भीड़ में से एक छांटा हुआ दस्ता आगे चला और खाइयों को पार करके कांटेदार तारों की बाड़ के पास पहुंचा। पुलिस-अफसरों ने उन्हें पीछे हटने का हुक्म दिया, परंतु वे बढ़ते ही चले गये। हुक्म मिलते ही बीसियों सिपाही बढ़ते हुए लोगों पर एकदम टूट पड़े, और उनके सिरों पर लोहे का मूंठ लगी लाठियां बरसाने लगे। किसी भी सत्याग्रही ने चोटें बचाने के लिए हाथ तक न उठाया। ...न कोई लड़ाई की, न खींच-तान। सत्याग्रही केवल आगे बढ़े चले जाते थे—जबतक कि लाठियों की मार से गिर न जायें।"

एक अंग्रेज अफसर सरोजिनी नायडू के पास पहुंचा और बोला—"आपको गिरफ्तार किया जाता है।" मणीलाल को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

अंग्रेज लोग भारतवासियों को डंडों और बंदूक के कुंदों से मार रहे थे। भारतवासी न तो गिड़गिड़ाते थे, न शिकायत करते थे, न पीछे हटते थे। इस चीज ने इंग्लैंड को बलहीन और भारत को अजेय बना दिया।

: १४ :

विद्रोही के साथ मंत्रणा

इंग्लैंड के कितने ही मजदूरदली मंत्री और उनके समर्थक भारत की स्वाधीनता के हामी थे। गांधीजी और हजारों भारतीय राष्ट्रवादियों को जेलों में रखना मजदूर-दल को लजानेवाली बात थी। लार्ड अरविन के लिए तो गांधीजी का कारावास परेशानी से अधिक था। इससे उनका शासन ही ठप हो गया था।

मैकडॉनल्ड (ब्रिटिश प्रधान-मंत्री) और अरविन के लिए यह स्थिति राजनैतिक दृष्टि से असहनीय थी। जेल में बैठे हुए गांधीजी उनके लिए उतनी ही

परेशानी के हेतु थे, जितने सत्याग्रह-यात्रा पर जाते हुए या समुद्र-तट पर या आश्रम में।

अपनी उलझन और भारत में बढ़ते हुए विद्रोह को महसूस करके अधिकारियों ने महात्माजी की गिरफ्तारी के दो ही सप्ताह बाद, १९ और २० मई को लंदन के मजदूरदली-पत्र 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता, खूबसूरत और लाल दाढ़ीवाले जार्ज स्लोकम को जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति दी। गांधीजी ने स्लोकम को वह शर्तें बतलाईं, जिन पर वह ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए तैयार हो सकते थे। जुलाई में वाइसराय की मर्जी से उदारदली नेता सर तेजबहादुर सप्रू व श्री जयकर मंत्रणा के लिए जेल में गांधीजी के पास गये। गांधीजी ने कह दिया कि कांग्रेस-कार्यसमिति से परामर्श किये बिना वह उनके सुझावों का जवाब नहीं दे सकते। तदनुसार मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सैयद महमूद को संयुक्त प्रांत की जेल से स्पेशल ट्रेन द्वारा गांधीजी के पास पूना-जेल पहुंचाया गया, जहां श्रीमती नायडू और वल्लभभाई पटेल भी कैद थे।

दो दिन (१४-१५ अगस्त) की चर्चाओं के बाद नेताओं ने सार्वजनिक घोषणा की कि उनके तथा ब्रिटिश सरकार की स्थिति के बीच 'न पटनेवाली खाई' है।

१२ नवंबर १९३० को लंदन में पहली गोलमेज परिषद शुरू हुई। कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इसमें शामिल नहीं हुआ।

२६ जनवरी १९३१ को स्वाधीनता-दिवस पर अरविन ने गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू तथा बीस से अधिक अन्य कांग्रेसी नेताओं को बिना शर्त रिहा कर दिया। इस सद्भावना-सूचक संकेत के सम्मान में गांधीजी ने वाइसराय को मुलाकात के लिए पत्र लिखा।

अरविन तथा गांधीजी की पहली मुलाकात १७ फरवरी को तीसरे पहर २-३० बजे शुरू हुई और शाम के ६-१० बजे तक चली।

गांधीजी और अरविन १८ फरवरी को तीन घंटे तक और १९ को आधा घंटे तक फिर मिले। इस बीच अरविन अपने अधिकारियों को, छः हजार मील दूर लंदन, तार खटखटा रहे थे और गांधीजी नई दिल्ली में कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यों के साथ लंबी बैठकें कर रहे थे। (मोतीलाल नेहरू का ६ फरवरी को देहांत हो चुका था)। दोनों दलों के बीच इधर-से-उधर दौड़ते हुए सप्रू, जयकर व शास्त्री गतिरोध टालने का प्रयत्न कर रहे थे।

कठिनाइयां पैदा होने लगीं। सात दिन तक कोई बातचीत नहीं हुई। १ मार्च

को गांधीजी फिर अरविन से मिलने आये और दोनों आधी रात के बाद तक बातें करते रहे। गांधीजी रात को २ बजे पैदल ही अपने निवास-स्थान पर पहुंचे।

अंत में बहुत से आपसी वाद-विवाद के बाद ५ मार्च को सुबह गांधी-अरविन समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। दो राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने एक इकरारनामे पर, एक सुलहनामे पर, एक स्वीकृत मसविदे पर, हस्ताक्षर कर दिये, जिसका हर वाक्य, हर शर्त, कड़ी सौदेबाजी से ठोक-पीटकर तैयार की गई थी। ब्रिटिश प्रवक्ताओं ने दावा किया कि इस लड़ाई में अरविन की जीत हुई और इस दावे के पक्ष में काफी कहा जा सकता था। परंतु महात्माजी जितनी दूर की बातों पर विचार करते थे, उसके लिहाज से भारत और इंग्लैंड के बीच सिद्धांत रूप से जो बराबरी का दर्जा कायम हो गया था, वह उस व्यावहारिक रियायत से अधिक महत्वपूर्ण था, जिसे वह इस अनिच्छुक साम्राज्य से ऐंठ सकते थे।

समझौते पर हस्ताक्षर होने के तुरंत ही बाद सरकार पर उसे भंग करने के आरोप लगाये गये और इस बार गांधीजी को नये वाइसराय लार्ड विलिंगडन से फिर मंत्रणाएं करनी पड़ीं। मामला तय होने के बाद कराची के कांग्रेस-अधिवेशन ने, जो सुभाषचंद्र बोस के कथनानुसार "महात्माजी की लोकप्रियता तथा प्रतिष्ठा का सर्वोच्च शिखर था", गांधीजी को दूसरी गोलमेज परिषद के लिए अपना एक-मात्र प्रतिनिधि चुना।

गांधीजी १२ सितंबर को लंदन पहुंचे और ५ दिसंबर तक इंग्लैंड में रहे। वह लंदन के ईस्ट एंड (पूर्वी छोर) में किंग्स्ले हाल नामक भवन में कुमारी म्यूरिअल लेस्टर के मेहमान होकर ठहरे।

मित्रों ने उनसे कहा कि यदि वह किसी होटल में ठहरें, तो उन्हें काम के लिए तथा आराम के लिए कई घंटे बच सकते हैं, परंतु गांधीजी ने कहा कि उन्हें अपनी ही तरह के गरीब लोगों के बीच रहने में आनंद मिलता है।

सुबह के समय गांधीजी किंग्स्ले हाल के चारों ओर की गलियों में घूमते थे, जिनमें निम्न वर्ग के लोग रहते थे। काम पर जानेवाले नर-नारी मुस्कराहट के साथ उनका अभिवादन करते थे और कुछ लोग उनसे बातचीत भी करने लगते थे। बच्चे दौड़कर आते और उनका हाथ पकड़ लेते।

समाचार-पत्रों के लिए गांधीजी अद्‌भुत सामग्री थे और पत्रकार लोग उनकी हरएक गतिविधि के समाचार देते थे। जार्ज स्लोकोंब ने गांधीजी की उदारता के बारे में एक कहानी लिखी और उदाहरण के तौर पर बतलाया कि जब इंग्लैंड के

युवराज भारत गये थे, तब गांधीजी उनके चरणों में गिर गये। अगली बार स्लोकोंब से मुलाकात होने पर गांधीजी मुस्कराये और बोले—"मि० स्लोकम, यह बात तो आपकी कल्पना को भी लजाती है। मैं भारत के गरीब-से-गरीब अछूत के आगे घुटने नवा दूंगा और उसके चरणों की धूल ले लूंगा, परंतु मैं युवराज तो क्या, बादशाह तक के पांवों में नहीं गिरूंगा, केवल इस कारण से कि वह धृष्टतापूर्ण पराक्रम का प्रतिनिधि है।"

बादशाह जार्ज पंचम तथा रानी मेरी के साथ चाय-पान के लिए गांधीजी बकिंघम महल गये। इस घटना से पूर्व सारे इंग्लैंड में यह उत्सुकता रही कि वह क्या पहनकर जायंगे। वह धोती, चप्पल, दुशाला और अपनी लटकती हुई घड़ी पहनकर गये। बाद में उनसे किसीने पूछा कि वह काफी कपड़े पहनकर गये थे या नहीं? उन्होंने उत्तर दिया—"बादशाह इतने कपड़े पहने हुए थे, जो हम दोनों के लिए काफी थे।"

इंग्लैंड के युद्धकालीन प्रधान मंत्री डेविड लॉयड जार्ज ने गांधीजी को चर्ट में अपने फार्म पर बुलाया। उनकी तीन घंटे बातें हुईं। १९३८ में जब मैं लॉयड जार्ज से मिलने चर्ट गया, तो उन्होंने गांधीजी की मुलाकात का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि नौकरों ने वह काम किया, जो आजतक कोई भी मेहमान उन्हें करने के लिए प्रेरित नहीं कर सका था—वे सब-के-सब इस संत से मिलने के लिए बाहर निकल आये।

चार वर्ष बाद मैंने गांधीजी को बतलाया कि लॉयड जार्ज ने उनकी मुलाकात के बारे में मुझसे बात की थी। गांधीजी ने उत्सुकता से पूछा—"अच्छा, उन्होंने क्या कहा था?"

"उन्होंने कहा कि आप उनके कोच पर बैठ गये और ज्योंही आप बैठे कि एक काली बिल्ली, जिसे उन लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था, खिड़की में से आकर आपकी गोद में बैठ गई।"

गांधीजी ने याद करके कहा—"यह ठीक है।"

"लॉयड जार्ज ने यह भी कहा कि जब आप चले गये, तो बिल्ली भी गायब हो गई।"

गांधीजी ने कहा—"यह बात मुझे मालूम नहीं।"

मैंने फिर कहा—"लॉयड जार्ज ने बताया कि जब मिस स्लेड चर्ट में उनसे मिलने आईं, तो वही बिल्ली फिर आ गई।"

"यह बात भी मुझे मालूम नहीं," गांधीजी ने कहा।

चार्ली चैपलिन ने गांधीजी से मिलना चाहा। गांधीजी ने कभी उनका नाम नहीं सुना था, उन्होंने कभी चल-चित्र नहीं देखा था। जब उन्हें चार्ली चैपलिन के बारे में बतलाया गया, तो उन्होंने इन्कार कर दिया। परंतु जब उन्हें यह बताया गया कि चार्ली चैपलिन का जन्म एक गरीब घर में हुआ था, तो उन्होंने डा० कटियाल के घर पर उनसे मुलाकात की। चार्ली चैपलिन का सबसे पहला सवाल यह था कि मशीन के बारे में उनका क्या मत है। संभव है कि इस प्रश्न के उत्तर से ही इस अभिनेता को बाद में अपनी एक फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली हो।[1]

जार्ज बर्नार्ड शा ने भी गांधीजी से मिलने का सम्मान प्राप्त किया। शा ने असाधारण नम्रता के साथ गांधीजी से हाथ मिलाया और अपने-आपको महात्मा माइनर (छोटा महात्मा) बतलाया। शा के विनोद में गांधीजी को खूब मजा आया।

गांधीजी लार्ड अरविन, जनरल स्मट्स, कैंटरबरी के आर्कबिशप, हैरल्स लास्की, सी० पी० स्काट, आर्थर हैंडरसन आदि सैकड़ों लोगों से मिले। चर्चिल ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी मैडम मेरिया मांटेसरी के ट्रेनिंग कालेज में गये, जहां अपने भाषण में उन्होंने कहा—"मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चा जन्म से शरारती नहीं होता। जब बच्चा बढ़ रहा हो, उस समय माता-पिता यदि अपना आचरण अच्छा रखें, तो बच्चा स्वभाव से ही सत्य और प्रेम का नियम पालन करेगा। सैकड़ों— मैं कहनेवाला था, हजारों—बच्चों के अपने अनुभव के आधार पर मैं जानता हूं कि मान-अपमान की भावना उनमें आप-हम से अधिक होती है।...ईसा मसीह ने एक बहुत ही तथ्यपूर्ण बात कही है कि ज्ञान बच्चों के मुंह से निकलता है। मैं इस बात में विश्वास करता हूं।..."

गांधीजी दो बार आक्सफोर्ड गये और उनकी ये यात्राएं स्मरणीय हैं। पहली बार वह बैलिओल के मास्टर, प्रोफैसर लिंडसे के यहां ठहरे। दूसरी बार वह डा० एडवर्ड टॉमसन के घर पर ठहरे। यहां उनकी बातचीत एक मंडली के साथ हुई, जिनमें प्रोफैसर लिंडसे, गिल्बर्ट मरे, प्रोफेसर एस० कूपलैंड, सर माइकेल सैडलर, पी० सी० लियॉन तथा अन्य सुलझे हुए दिमागवाले व्यक्ति थे।

---

१. चार्ली चैपलिन की मशहूर फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' में मशीनों का मज़ाक उड़ाया गया है।

इस दिमागी झड़प का जिक्र करते हुए टॉमसन ने लिखा है—"तीन घंटे तक उन्हें छाना गया और उनसे जिरह की गई। ...यह काफी थका देनेवाली परीक्षा थी, परंतु वह एक क्षण के लिए भी विचलित या निरुत्तर नहीं हुए। मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास जम गया कि परम आत्म-संयम और अनुद्विग्नता के मामले में संसार ने सुकरात के समय से आजतक इनकी टक्कर का पैदा नहीं किया। और एक-दो बार जब मैंने अपने-आपको उन लोगों की जगह रखा, जिन्हें इस अजेय स्थिरता और अविचलता का सामना करना पड़ा, तो अपने खयाल से मैं समझ गया कि एथेंस-वासियों ने उस शहीद-तार्किक को जहर क्यों पिलाया था।"

इंग्लैंड में चौरासी दिन के निवास में गांधीजी के जितने सार्वजनिक और खानगी, सरकारी और गैर-सरकारी वक्तव्य हुए, उन सबमें उन्होंने सबसे ऊपर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि भारत की स्वाधीनता से उनका क्या तात्पर्य था।

अपने आकर्षण, सरलता, मानवता और मिलनसारी से गांधीजी सबको मित्र बना लेते थे। उन्होंने इंग्लैंड के ईसाइयों का हृदय जीत लिया और वे उन्हें बड़े भाई और बंधु की तरह मानने लगे। बहुत से लोग उन्हें 'दुरूह' समझते थे, और वह निस्संदेह दुरूह हो भी सकते थे। परंतु वह प्रचंड-से-प्रचंड व्यक्ति की शत्रुता को भी नर्म कर देते थे। वह तो शेर की मांद में घुस गये और वह लंकाशायर में जा पहुंचे, जहां विदेशी कपड़े के विरुद्ध और खादी के पक्ष में उनके आंदोलन ने बेकारी और लाभों में घाटे पैदा कर दिये थे। एक सभा में एक आदमी ने कहा—"मैं एक बेकार हूं, परंतु यदि मैं भारत में होता, तो मैं भी वही कहता जो गांधी कहता है।"

गांधीजी की रक्षा के लिए सरकार ने स्काटलैंड यार्ड के दो जासूस—सार्जेंट इवान्स और सार्जेंट रोजर्स—तैनात किये। ये दोनों 'इस छोटे से आदमी' पर फिदा हो गये। गांधीजी तो उन्हें न दूर-दूर रखते थे, न उनकी उपेक्षा करते थे। वह उनसे बातें करते थे और उनके घरों पर भी गये। इंग्लैंड से रवाना होने से पहले उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इन जासूसों को उनके साथ ब्रिंदिसी (इटली) तक भेजा जाय। नौकरशाही ने उनकी इस निराली प्रार्थना का कारण पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया—"क्योंकि वे मेरे परिवार के अंग हैं।"

व्याख्यानों, भाषणों, वाद-विवादों, समाचार-पत्रों के लिए मुलाकातों, यात्राओं, अनगिनती व्यक्तिगत कार्यक्रमों और ढेर-के-ढेर पत्रों के उत्तरों के बीच वह उस सरकारी काम में भी भाग लेते थे, जिसके कारण वह लंदन आये थे, अर्थात गोल-

मेज परिषद। सरकारी तथा गैर-सरकारी गतिविधियों में वह दिन-रात के इक्कीस घंटे व्यस्त रहते थे। सुरक्षित डायरियों से पता लगता है कि कभी-कभी वह सुबह २ बजे सोते थे ३-४५ पर प्रार्थना के लिए उठ जाते थे, ५ से ६ तक फिर आराम करते थे और इसके बाद दूसरी सुबह को १ या २ बजे तक उन्हें दम लेने को फुरसत नहीं मिलती थी। इस कार्यक्रम ने उन्हें थका डाला। वह अपने शरीर को सहनशक्ति की हद से आगे हांकने में मजा लेते थे। नतीजा यह हुआ कि गोलमेज परिषद को वह बढ़िया चीज नहीं मिली, जो वह दे सकते थे। फिर भी परिषद में भाग लेनेवालों ने उनके मुंह से कुछ निराली और अनोखी बातें सुनीं।

गोलमेज परिषद बुरी तरह असफल रही। भारत के धार्मिक भेदों को गहरा करके इसने भविष्य पर अशुभ और दुखदाई असर डाला।

परिषद ने एक अल्पसंख्यक समिति नियुक्त की, जिसमें छः अंग्रेज, तेरह मुसलमान, दस हिंदू, दो अछूत, दो मजदूर प्रतिनिधि, दो सिख, एक पारसी, दो भारतीय ईसाई, एक ऐंग्लो-इंडियन, दो भारत-प्रवासी अंग्रेज और चार महिलाएं रखे गये। केवल महिलाओं ने पृथक निर्वाचन की मांग नहीं की। समिति के तेरह मुसलमानों में से केवल एक राष्ट्रीय मुसलमान था, जो राजनीति में भारतीय और धर्म में पैगंबर का अनुयायी था। बाकी बारह धर्म को राज्य के साथ मिलाते थे और अपने धार्मिक समुदाय के हितों को समूचे भारत के कल्याण से ऊपर रखते थे।

परिषद के मुख्य अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री फजलुलहक ने कहा था—"मैं नहीं समझता कि सर आस्टिन चेंबरलेन को कभी डा० मुंजे तथा मुझ जैसे मनुष्य-जाति के दो बेमेल नमूनों से पाला पड़ा हो, जो अलग-अलग धर्मों को मानते हैं और अलग-अलग ईश्वरों की पूजा करते हैं।"

"एक ही ईश्वर!" एक सदस्य बीच में बोल उठे।

श्रीफजलुलहक ने इस पर आपत्ति जताते हुए कहा—"नहीं, एक ही ईश्वर नहीं हो सकता। मेरा खुदा पृथक निर्वाचन चाहता है।"

मुसलमान प्रतिनिधि ईश्वर के भी टुकड़े कर रहा था। परंतु गांधीजी न तो ईश्वर के टुकड़े करना चाहते थे, न भारत के। उन्होंने परिषद से कह दिया कि वह पृथक निर्वाचन के बिल्कुल विरोधी हैं। उन्होंने कहा कि स्वाधीन भारत में भारतीय सब भारतीयों को भारतीय की तरह मत देंगे। भारतीय राष्ट्रीयता का गुण और बाहरवालों के लिए उसकी प्रेरणा यह नहीं थे कि वह नये राष्ट्रीय व्यवधान पैदा करे—यह तो पहले ही से बहुत थे—बल्कि यह कि इंग्लैंड और संसार

को साम्राज्यवाद के भयानक प्रभाव से मुक्त करे और भारत में धर्म को राजनीति से अलग कर दे। इसके विपरीत अंग्रेजों की व्यवस्था में गोलमेज परिषद ने पुराने अलगावकारी प्रभावों को बढ़ाया और नये पैदा करने का प्रयत्न किया।

परम-धर्मनिष्ठ हिंदू महात्मा गांधी के लिए धर्म, नस्ल, जाति, वर्ण या अन्य किसी आधार पर किसीके विरुद्ध भेद-भाव रखना असंभव था। अछूतों के समानाधिकार के लिए और उस नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए, जो हिंदू या मुसलमान या पारसी या ईसाई न होकर भारतीय थी, गांधीजी की देन जागतिक महत्व रखती है।

१ दिसंबर १९३१ को गोलमेज परिषद के मुख्य अधिवेशन में उसके सभापति जेम्स रेमज़े मैकडॉनल्ड, इंग्लैंड के प्रधान-मंत्री, ने गांधीजी का हवाला देते हुए उन्हे हिंदू कहा।

"हिंदू नहीं !" गांधीजी ने पुकारा।

अपने भगवान के लिए गांधीजी हिंदू थे। ब्रिटिश प्रधान मंत्री के लिए तथा राजनीति में वह भारतीय थे। लेकिन गोलमेज परिषद में ऐसे भारतीय गिने-चुने थे और भारत में तो और भी कम।

: १५ :

वापसी

गांधीजी ने संसार के लगभग सारे स्वतंत्र देशों के व्यक्तियों और समुदायों से क्षमा-याचना की। भारत में काम होने के कारण वह उनके निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकते थे। घर लौटते हुए वह एक दिन के लिए पेरिस ठहरे। एक सिनेमा भवन में मेज पर बैठकर उन्होंने एक बड़ी सभा में भाषण दिया। इसके बाद वह रेल से स्वीजरलैंड गये, जहां वह लेमान झील के पूर्वी छोर पर विलेन्यूवे में रोम्यां रोलां के साथ पांच दिन रहे।

रोम्यां रोलां, जिनका 'जीन क्रिस्तोफ' बीसवीं सदी की एक महान साहित्यिक कृति है, काउंट लियो टाल्स्टाय से प्रभावित हो चुके थे। रोलां ने टाल्स्टाय और गांधीजी के बीच विवेकपूर्ण तुलना की। १९२४ में उन्होंने कहा था—"गांधीजी के लिए हर चीज प्रकृत है–नातिशय, सादा और शुद्ध–और उनके सारे संघर्ष धार्मिक सौम्यत्व से पूत हैं। दूसरी ओर टाल्स्टाय के लिए हर वस्तु अभिमान के विरुद्ध अभिमान-

पूर्ण विद्रोह है, घृणा के विरुद्ध घृणा है और वासना के विरुद्ध वासना है। टाल्स्टाय में हर वस्तु हिंसात्मक है, यहां तक कि उनका अहिंसा का सिद्धांत भी।"

टाल्स्टाय को तूफान ने झकझोर दिया था, गांधीजी शांत और धीर थे। गांधीजी अपनी पत्नी से या किसी भी चीज से दूर भागनेवाले नहीं थे। जिस हाट में गांधीजी बैठे हुए थे, उसमें करोड़ों मनुष्य अपने-अपने सौदों और ठेलों और चिंताओं और विचारों को लिये इधर-उधर जाते-आते थे, परंतु गांधीजी अविचल भाव से बैठे थे और उनमें तथा उनके चारों ओर निस्तब्धता थी। हाथीदांत की मीनार में या कैलास की ऊंचाई पर गांधीजी का दम घुट जाता है।

रोलां और गांधीजी १९३१ से पहले कभी नहीं मिले थे। रोलां को गांधीजी का परिचय रवींद्रनाथ और एंड्रयूज की बातों से प्राप्त हुआ था। उन्होंने गांधीजी की रचनाएं भी पढ़ी थीं। रवींद्र की भांति रोलां भी गायक थे। रामकृष्ण परमहंस पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी।

रोलां गांधीजी को संत मानते थे। सन १९२४ में उन्होंने गांधीजी के जीवन-चरित में लिखा था—"गाधीजी तो बहुत ऊंचे संत हैं, बड़े ही पवित्र और उन वासनाओं से मुक्त, जो मनुष्य में सुप्त पड़ी रहती हैं।"

५ दिसंबर को गांधीजी के पहुंचने से पूर्व उनकी यात्रा के संबंध में रोलां के पास हजारों पत्र आ गये थे। एक इटली निवासी गांधीजी से यह जानना चाहता था कि अगली राष्ट्रीय लाटरी में कौनसे नंबर के टिकट पर इनाम आयगा, स्वीज़रलैंड के कुछ संगीतज्ञों ने गांधीजी को खिड़की के नीचे रोज रात को संगीत सुनाने का प्रस्ताव भेजा था, लेमान के दूध-विक्रेताओं के मंडल ने 'भारत के बादशाह' को दूध-मक्खन आदि देने की इच्छा प्रकट की थी। पत्रकारों ने प्रश्नावलियां भेजीं और रोलां के देहाती आवास के आस-पास अड्डा जमा लिया, फोटोग्राफरों ने मकान पर घेरा डाल दिया, पुलिस ने रिपोर्ट दी कि भारतीय आगंतुक को देखने की आशा में यात्री लोग तमाम होटलों में भर गये हैं।

बासठ वर्ष के गांधीजी और पैंसठ वर्ष के रोलां पुराने मित्रों की भांति मिले और दोनों ने एक-दूसरे के साथ पारस्पारिक आदर का सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया। गांधीजी मिस स्लेड, महादेव देसाई, प्यारेलाल नैयर तथा देवदास के साथ शाम को पहुंचे, जब ठंड पड़ रही थी और मेंह बरस रहा था। दूसरा दिन सोमवार गांधीजी का मौन-दिवस था और रोलां ने १९०० से तबतक की यूरोप की दुखपूर्ण नैतिक

तथा सामाजिक अवस्था पर नव्वे मिनट तक व्याख्यान दिया। गांधीजी सुनते रहे और पेंसिल से कुछ प्रश्न लिखते रहे।

मंगलवार को गांधीजी की रोम-यात्रा के बारे में चर्चा हुई। वह मुसोलिनी तथा अन्य इटालियन नेताओं के साथ पोप से भी मिलना चाहते थे। रोलां ने उन्हें चेतावनी दी कि फासिस्त शासन उनकी उपस्थिति का अपने दुष्ट अभिप्राय के लिए उपयोग करेगा। गांधीजी ने कहा कि अगर वे लोग उनके चारों ओर घेरा डालेंगे, तो वह उसे तोड़कर बाहर निकल जायेंगे। रोलां ने सुझाया कि वह कुछ शर्तों के साथ वहां जायें। गांधीजी ने उत्तर दिया कि पहले ही से ऐसी व्यवस्था करना उनकी आस्था के विरुद्ध है। रोलां अपनी बात पर जोर देते रहे। तब गांधीजी ने कहा—"अच्छा, बतलाइये कि रोम में ठहरने की मेरी योजना पर आपकी अंतिम राय क्या है ?" रोलां ने सलाह दी कि उन्हें किन्हीं स्वतंत्र व्यक्तियों के यहां ठहरना चाहिए। गांधीजी ने वादा किया और इस वादे पर अमल भी किया।

रोलां ने यूरोप के बारे में अपनी कही हुई बातों पर गांधीजी के विचार जानने चाहे। गांधीजी ने अंग्रेजी में जवाब दिया, जिसका फ्रांसीसी भाषा में रोलां की बहन ने अनुवाद किया। उन्होंने कहा—"इतिहास से मैंने बहुत कम सीखा है। मेरी पद्धति अनुभवात्मक है। मेरे सारे परिणामों का आधार व्यक्तिगत अनुभव है।" उन्होंने स्वीकार किया कि यह खतरनाक और गलत रास्ते पर ले जानेवाला हो सकता है, परंतु मुझे खुद अपने मतों में आस्था रखना आवश्यक है। मेरा सारा भरोसा अहिंसा में है। यह यूरोप को भी बचा सकती है। इंग्लैंड में कुछ मित्रों ने उन्हें उनकी अहिंसात्मक पद्धति की कमजोरियां बताने की कोशिश की, परंतु उन्होंने कह दिया कि "मैं तो इसीमें विश्वास करता रहूंगा, भले ही सारा संसार इस पर शंका करता रहे।"

अगले दो दिन गांधीजी ने लोज़ां में और जेनेवा में बिताये। दोनों जगह उन्होंने भाषण दिये और नास्तिकों ने तथा अन्य लोगों ने घंटों उनसे जिरह की। गांधीजी ने पूर्ण शांति के साथ उन्हें उत्तर दिये और रोलां ने लिखा है—"उनके चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं पड़ी।"

१० दिसंबर को दोनों की बातचीत फिर चली। रोलां ने जेनेवा में गांधीजी के कहे हुए इन शब्दों की याद दिलाई कि "सत्य ईश्वर है"। कला में सत्य की समस्या से अपने संघर्ष का जिक्र करते हुए रोलां ने कहा—"अगर यह सही है कि 'सत्य ईश्वर है', तो मुझे लगता है कि इसमें ईश्वर के साथ एक महत्वपूर्ण गुण—

आनंद—की कमी है, क्योंकि मैं आनंदविहीन किसी ईश्वर को नहीं मानता।"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं कला और सत्य के बीच कोई भेद नहीं मानता। मैं इस उक्ति से सहमत नहीं हूं कि 'कला कला के लिए' है। मेरी मान्यता है कि समस्त कलाओं का आधार सत्य होना चाहिए। यदि सुंदर वस्तुएं सत्य को व्यक्त करने के बजाय असत्य को व्यक्त करें, तो मैं उन्हें त्याग दूंगा। मैं इस गुर को मानता हूं कि 'कला आनंद प्रदान करती है और श्रेष्ठ होती है', परंतु यह भी अपनी बताई हुई शर्त के साथ। कला में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए मैं बाह्य वस्तुओं का सही चित्रण आवश्यक नहीं समझता। केवल सजीव वस्तुएं आत्मा को सजीव आनंद उपलब्ध कराती हैं और आत्मा को ऊंचा उठाती हैं।"

रोलां असहमत तो नहीं हुए, परंतु उन्होंने सत्य की तथा ईश्वर की खोज में प्रयत्न पर जोर दिया। उन्होंने अपनी अलमारी से एक पुस्तक निकाली और गेटे के कुछ उद्धरण सुनाये। रोलां ने बाद में स्वीकार किया कि उनका खयाल था कि गांधीजी के ईश्वर को मनुष्य के दुख में आनंद मिलता है।

उन्होंने अगले महायुद्ध के खतरे पर भी बातें कीं। गांधीजी ने अपना मत बतलाते हुए कहा—"यदि कोई राष्ट्र हिंसा का जवाब हिंसा से दिये बिना आत्म-समर्पण की वीरता दिखाये, तो यह सबसे अधिक प्रभावशाली पाठ होगा, परंतु इसके लिए चरम-आस्था की आवश्यकता है।"

आखिरी दिन, ११ दिसंबर को, रोलां ने गांधीजी से उन सवालों को लेने की प्रार्थना की, जो पेरिस की 'दि प्रोलिटेरियन रिवोल्यूशन' (सर्वहारा क्रांति) नामक पत्रिका के संपादक पीयरी मोनाते ने भेजे थे। एक सवाल के जवाब में गांधीजी ने दृढ़ता से कहा कि यदि मजदूर-वर्ग पूरी तरह संगठित हो जाय, तो वह मालिकों से अपनी शर्तें मनवा सकता है—"संसार में मजदूर-वर्ग ही एकमात्र शक्ति है।" परंतु रोलां ने बीच में बोलते हुए कहा कि पूंजीपति वर्ग श्रमिकों में फूट डाल सकता है, हड़ताल तोड़नेवाले मजदूर हो सकते हैं। तब मजदूर-वर्ग को जागृत अल्पसंख्यक सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य स्थापित करके मजदूर वर्ग की जनता को अपने हित में संयुक्त होने के लिए बाध्य कर देना चाहिए।

गांधीजी ने निश्चयपूर्वक जवाब दिया—"मैं इसके बिल्कुल विरुद्ध हूं।" रोलां ने इस विषय को छोड़ दिया और अन्य विषय उठाये। उन्होंने पूछा—"आप ईश्वर को क्या मानते हैं? क्या वह अध्यात्मिक व्यक्तित्व है, अथवा संसार पर शासन करनेवाला बल?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। ...ईश्वर तो एक शाश्वत सिद्धांत है। इसलिए मैं कहता हूं कि 'सत्य ईश्वर है'। ...सत्य की आवश्यकता में तो नास्तिक भी शंका नहीं करते।"

इटली की सरकार चाहती थी कि गांधीजी उसके मेहमान हों और इसके लिए उसने तैयारियां भी कर ली थीं। परंतु गांधीजी ने नम्रता के साथ इन्कार कर दिया और वह रोलां के मित्र जनरल मॉरिस के यहां ठहरे। रोम पहुंचते ही गांधीजी ड्यूचे (मुसोलिनी) से मिले। एक सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया कि यह मुलाकात बीस मिनट तक हुई। गांधीजी के साथियों का खयाल है कि मुलाकात में दस ही मिनट लगे थे। गांधीजी मुसोलिनी के साथ कोई मानसिक संपर्क न स्थापित कर सके। बाद में गांधीजी ने कहा था—"उसकी बिल्ली जैसी आंखें हैं, जो हर दिशा में फिरती रहती थीं, मानो बराबर घूमती रहती हों। उसकी आंखों के रोब के सामने आगंतुक इस प्रकार पस्त हो जाता था, जैसेकि डर का मारा हुआ चूहा दौड़कर सीधा बिल्ली के मुंह में चला जाता है।

"मैं तो इस तरह हक्का-बक्का होनेवाला नहीं था," गांधीजी ने बतलाया—"लेकिन मैंने देखा कि उसने अपने आस-पास वस्तुओं को इस तरह सजा रखा था कि कोई भी आगंतुक भय से आतंकित हो जाय। उसके पास पहुंचने के लिए जिन रास्तों से गुजरना होता है, उनमें तलवारें तथा अन्य हथियार बहुतायत से जड़े हुए हैं।" गांधीजी ने देखा कि मुसोलिनी के दफ्तर में भी हथियार टंगे हुए थे, परंतु उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने शरीर पर कोई हथियार धारण नहीं करता।

पोप गांधीजी से नहीं मिला। गांधीजी के दल के कुछ लोगों का खयाल था कि 'पवित्र पिता' ने शायद इस ड्यूचे (मुसोलिनी) की इच्छाओं का पालन किया, परंतु ये बातें उन्हें मालूम नहीं। कछ लोगों का अनुमान था कि यह मुलाकात केवल मुसोलिनी और वैटिकन (पोप का राज्य) के संबंधों के ही कारण नहीं, बल्कि आंग्ल-इटालियन संबंधों के कारण भी नहीं हो पाई। आखिर गांधीजी तो एक ब्रिटिश-विरोधी विद्रोही थे !

वैटिकन का पुस्तकालय गांधीजी के लिए आकर्षण की वस्तु था और सेंट पीटर के गिरजे में उन्होंने दो घंटे खुशी के साथ बिताये। सिस्तीन गिरजे में वह सूली पर चढ़े हुए ईसा के सामने खड़े होकर रो पड़े। महादेव देसाई से उन्होंने कहा—"इसे देखकर आंखों में आंसू आये बिना नहीं रहते।"

रोम्यां रोलां ने कला की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था। गांधीजी ने

गर्व के साथ कहा—"मैं नहीं समझता कि यूरोपीय कला भारतीय कला से श्रेष्ठ है।" एक मित्र को उन्होंने लिखा था—"इन दोनों कलाओं का विकास अलग-अलग शैलियों पर हुआ है। भारतीय कला का आधार पूर्णतया कल्पना पर है। यूरोपीय कला प्रकृति की नकल करती है। इसलिए वह आसानी से तो समझ में आ जाती है, परंतु वह हमारा ध्यान पृथ्वी की ओर फेरती है। इसके विपरीत भारतीय कला समझ में आने पर हमारे विचारों को स्वर्ग की ओर ले जाती है।"

गांधीजी के लिए कला का आध्यात्मिक होना आवश्यक था। उनका कहना था—"सच्चा सौंदर्य हृदय की शुद्धता में है।"

'यंग इंडिया' में गांधीजी ने लिखा था—"मैं जानता हूं कि बहुत से लोग अपने को कलाकार कहते हैं और उन्हें कलाकार माना भी जाता है, परंतु उनकी कृतियों में आत्मा की उन्नतोमुखी तरंग तथा तड़प का लेशमात्र भी नहीं होता। ...सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। ...सच्ची कला आत्मा को उसके अंतस्तल का अनुभव प्राप्त कराने में सहायक होनी चाहिए। अपने मामले में मैं देखता हूं कि अपने आत्मानुभव में मुझे बाह्य रूपों की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं दावा कर सकता हूं कि वस्तुतः मेरे जीवन में पर्याप्त कला है, भले ही आपको मेरे आस-पास ऐसी वस्तुएं न मिलें, जिन्हें आप कला-कृतियां कहते हैं। मेरे कमरे की दीवारें चाहे नंगी हों और मैं छत को भी हटा दूं, ताकि मैं सौंदर्य के असीम विस्तार में ऊपर फैले हुए ताराच्छादित आकाश को देखा करूं।...क्या अच्छे नख-शिखवाली स्त्री सुंदर ही मानी जानी चाहिए ?...हमने सुना है कि सुकरात अपने समय का सबसे अधिक सत्यनिष्ठ व्यक्ति था, परंतु उसका चेहरा यूनान में सबसे अधिक कुरूप बतलाया जाता था। मेरे विचार में वह सुंदर था, क्योंकि वह सत्य को पाने के लिए छटपटाता रहता था।...प्राप्त करने के लिए सबसे पहली वस्तु सत्य है और तब सुंदरता तथा भलाई स्वयं ही आपको प्राप्त हो जायगी। ...सच्ची कला केवल रूप का ही विचार नहीं करती, बल्कि उसके परे जो कुछ है, उसका भी विचार करती है। एक कला मारनेवाली है तो एक कला जीवनदायिनी है। सच्ची कला रचयिता के आनंद, संतुष्टि तथा पवित्रता का प्रमाण होनी चाहिए।"

रोम छोड़ने से पहले गांधीजी ने टाल्स्टाय की पुत्री को तलाश किया। जब वह उसके कमरे में बैठे हुए कात रहे थे, तब इटली के बादशाह की पुत्री राजकुमारी मेरिया एक बांदी के साथ आई और महात्माजी के लिए अंजीरों की एक टोकरी लाई। ये अंजीर इटली की महारानी ने भिजवाये थे।

गांधीजी की उपस्थिति का किसीने भी फासिस्त-समर्थक उद्देश्य के लिए दुरुपयोग नहीं किया, यद्यपि 'गियोर्नेल द इतालिया' ने एक ऐसी मुलाकात का वर्णन छापा, जो न तो उन्होंने कभी दी थी और न उस मुलाकात करनेवाले संवाददाता से वह कभी मिले थे।

गांधीजी इटली में कुल मिलाकर अड़तालीस घंटे रहे। ब्रिंदिसी में उन्होंने स्काटलैंड यार्ड के अपने संरक्षकों से बिदा ली, परंतु प्रोफेसर एडमंड प्रिवट और उनकी पत्नी से नहीं।

प्रोफेसर और उनकी पत्नी रोम्यां रोलां के मित्र थे और विलेन्यूवे से इटली के सीमांत तक गांधीजी के साथ आये थे। जिस समय वे बिदा होने लगे, उन्होंने कहा कि किसी दिन वे भारत की यात्रा करना चाहते हैं। गांधीजी ने पूछा कि वे उन्हीं-के साथ भारत क्यों नहीं चलते? उन्होंने उत्तर दिया कि इसके लिए उनके पास खर्च नहीं है।

गांधीजी ने कहा—"आप शायद पहले और दूसरे दर्जे की बात सोचते हैं। परंतु हम तो जहाज के डेक पर यात्रा करने के लिए केवल दस पौंड प्रति व्यक्ति देते हैं। एक बार भारत पहुंचने पर कितने ही भारतीय मित्र अपने घरों के द्वार आपके लिए खोल देंगे।"

प्रिवट-दंपति ने अपनी जेब के तथा बटुए के दाम गिने और भारत जाने का निश्चय कर लिया। १४ दिसंबर को ये लोग गांधीजी के दल के साथ ब्रिंदिसी से पिल्स्ना नामक जहाज पर सवार हुए। दो सप्ताह बाद सब लोग बंबई पहुंच गये।

२८ दिसंबर की सुबह एक विशाल जनसमूह ने गांधीजी का हर्षध्वनि के साथ स्वागत किया। उन्होंने कहा—"मैं खाली हाथ लौटा हूं, परंतु मैंने अपने देश की इज्जत पर बट्टा नहीं लगने दिया।" गोलमेज परिषद में भारत के साथ जो बीती थी, उसका गांधीजी के शब्दों में यह सार था, परंतु परिस्थिति उनके अनुमान से भी ज्यादा निराशाजनक थी।

: १६ :

अग्नि-परीक्षा

इस तरह का शाही स्वागत जहाज के डेक पर यात्रा करनेवाले किसी मुसा-फिर को आज तक नहीं मिला था। सुभाषचंद्र बोस ने ताने के साथ कहा था—

"स्वागत में जिस उत्साह, सौहार्द और स्नेह का प्रदर्शन हुआ, उससे यह धारणा होती थी कि महात्माजी स्वराज्य अपनी हथेली पर लेकर आये हैं।" गांधीजी अपनी ईमानदारी को लेकर लौटे थे, वह उस अर्द्ध-नग्न फकीर की भूमिका से नीचे नहीं उतरे थे, जिसने बलशाली ब्रिटिश साम्राज्य के साथ बराबरी के स्तर पर मंत्रणा की थी। यह चीज आजादी से पहले एक ही दर्जा नीचे थी, क्योंकि यह भारत की भावना की मुक्ति को व्यक्त करती थी। डांडी-यात्रा के बाद से, और विशेषकर गांधी-अरविन समझौते के बाद से, भारत अपने को आजाद महसूस करने लगा था। गांधीजी ने इस भावना को बढ़ाया और भारतवासी उनके कृतज्ञ थे। इसके अलावा उनके महात्माजी समुद्र-पार के ठंडे संसार से सही-सलामत लौट आये थे।

गांधीजी, अरविन तथा ब्रिटिश-मजदूर सरकार के प्रयत्नों से भारत को १९३०-३१ में आंशिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई थी। परंतु अरविन जा चुके थे और अक्तूबर १९३१ में रैम्जे मैकडॉनल्ड की मजदूर-सरकार के स्थान पर मैकडॉनल्ड के ही नेतृत्व में दूसरा मंत्रिमंडल बन गया था, जिसमें अनुदार दल की प्रधानता थी। सर सैम्युअल होर, जो गांधीजी के शब्दों में, एक ईमानदार तथा निष्कपट अंग्रेज थे और एक ईमानदार तथा निष्कपट अनुदार-दली थे, भारत के राज्य सचिव हुए।

नई ब्रिटिश सरकार ने भारत की आजादी की भावना पर आक्रमण शुरू कर दिया।

जिस समय गांधीजी ने २८ दिसंबर को बंबई बंदर पर कदम रखा, उसी घड़ी उनके कानों में पूर्ण विवरण डाल दिया गया। विकट परिस्थिति की पूरी तसवीर शाम तक उनके सामने आ गई और इसे उन्होंने विशाल आजाद मैदान में एकत्र दो लाख श्रोताओं तक पहुंचा दिया।

जवाहरलाल नेहरू तथा संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष तसद्दुक शेरवानी महात्माजी से मिलने बंबई आते समय दो दिन पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। संयुक्त प्रांत में, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत में और बंगाल में व्यापक लगान-बंदी आंदोलन का मुकाबला करने के लिए संकटकालीन आर्डिनेंस जारी कर दिये गये थे। इनके अधीन सेना को मकानों पर कब्जा करने का, बैंकों में जमा रुपया कुर्क करने का, धन-माल जब्त करने का, संदेहास्पद लोगों को बिना वारंट गिरफ्तार करने का, अदालती कार्रवाई मंसूख करने का, जमानत और हैबियस कार्पस

(बंदी प्रत्यक्षीकरण) से इन्कार करने का, अखबारों का डाक से भेजा जाना रोकने का, राजनैतिक संगठनों को तोड़ने का और धरना तथा बहिष्कार निषेध करने का अधिकार दे दिया गया था।

बंबई की सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा—"जहाज से उतरने पर ये सब बातें मुझे मालूम हुईं। मैं समझता हूं कि ये सब हमारे ईसाई वाइसराय की ओर से बड़े दिन के उपहार हैं।"

उसी शाम को उन्होंने मैजस्टिक होटल में 'वेलफेयर ऑव इंडिया लीग की सभा में कहा—"यूरोप-इंग्लैंड के अपने तीन महीने के प्रवास में मुझे ऐसा एक भी अनुभव नहीं हुआ, जिससे मुझे लगता कि आखिर पूर्व-पूर्व है और पश्चिम-पश्चिम है। इसके विपरीत मुझे पहले से भी अधिक विश्वास हो गया है कि मानव-प्रकृति, चाहे वह किसी भी जलवायु में पनपती हो, बहुत करके एक-सी है और यदि आप भरोसा तथा स्नेह लेकर लोगों के पास जायें, तो आपको बदले में दस गुना भरोसा और स्नेह मिलेगा।"

बंबई पहुंचने के दूसरे दिन गांधीजी ने वाइसराय को तार भेजा, जिसमें उन्होंने आर्डिनेंस पर खेद प्रकट किया और मुलाकात का प्रस्ताव रखा। वर्ष के अंतिम दिन वाइसराय के सचिव का जवाब आया कि सरकार के विरुद्ध कांग्रेस की प्रवृत्तियों के कारण आर्डिनेंस न्यायोचित है। सचिव ने लिखा—"वाइसराय आपसे मिलने को तैयार हैं और आपको यह सलाह देने को तैयार हैं कि आप अपने प्रभाव का समुचित उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं। परंतु हिज़ एक्सेलेंसी इस बात पर जोर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि जो कदम भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की पूरी सहमति से उठाये हैं, उनके बारे में चर्चा करने के लिए वह तैयार नहीं हैं।"

गांधीजी ने अपने प्रत्युत्तर में कांग्रेस की पैरवी की और सूचना दी कि उन्हें सविनय-अवज्ञा-आंदोलन शुरू करना पड़ सकता है। वाइसराय के सचिव ने २ जनवरी १९३२ को तत्काल उत्तर भेजा, जिसमें लिखा था—"हिज़ एक्सेलेंसी और सरकार यह विश्वास नहीं कर सकती कि आप या कांग्रेस कार्य-समिति सोचते हों कि हिज़ एक्सेलेंसी किसी लाभ की आशा से आपको ऐसी मुलाकात के लिए निमंत्रित कर सकते हैं, जिसके पीछे सविनय-अवज्ञा फिर से शुरू करने की धमकी हो। ...और भारत सरकार आपके तार में अभिप्रेत इस स्थिति को भी स्वीकार नहीं कर सकती कि सरकार ने जो कार्रवाइयां की हैं, उनकी आवश्यकता

के बारे में उसकी नीति आपके निर्णय पर निर्भर होनी चाहिए।"

गांधीजी ने उसी दिन जवाब भेज दिया। उन्होंने कोई धमकी नहीं दी थी, केवल मत प्रकट किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने दिल्ली समझौते से पहले, जबकि सविनय-अवज्ञा-आंदोलन चालू था, अरविन से मंत्रणा की थी। उनका यह विचार कभी नहीं था कि सरकार को उनके निर्णय पर निर्भर रहना चाहिए। "परंतु", उन्होंने तार में लिखा—"मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि कोई भी लोक-प्रिय और वैधानिक सरकार सार्वजनिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों के सुझावों का हमेशा स्वागत करेगी और उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।"

३ जनवरी को गांधीजी ने राष्ट्र को सूचना दी कि "सरकार ने मेरे लिए किवाड़ बंद कर दिये हैं।" दूसरे दिन सरकार ने उनके सामने लोहे के किवाड़ लगा दिये। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया। वह यरवडा जेल में फिर इंग्लैंड के बादशाह के मेहमान हो गये। कुछ ही सप्ताह पहले वह बकिंघम महल में बादशाह और महारानी के मेहमान बन चुके थे।

कांग्रेस पर सरकार का भीषण प्रहार हुआ। सारी कांग्रेसी संस्थाएं बंद कर दी गईं और लगभग सभी नेता जेल में डाल दिये गये। जनवरी में १४,८०० आदमी राजनैतिक कारणों से जेल गये, फरवरी में १७,८००। विन्स्टन चर्चिल ने घोषणा की कि दमन के उपाय १८५७ के गदर के समय से अधिक तीव्र थे।

जेल में गांधीजी का अपना विशेष स्थान था। सन १९३० में इसी यरवडा जेल में चीफ वार्डन उनके पास आया और पूछने लगा कि हर सप्ताह आप कितने पत्र भेजेंगे और कितने बाहर से आनेवाले स्वीकार करेंगे?

"मुझे एक भी पत्र लेने की दरकार नहीं है।" गांधीजी ने जवाब दिया।

"कितने पत्र आप लिखना चाहते हैं?" वार्डन ने पूछा।

"एक भी नहीं।" गांधीजी ने कहा।

उन्हें पत्र लिखने और पत्र-व्यवहार करने की पूरी छूट दी गई।

जेल के सुपरिटेंडेंट मेजर मार्टिन उनके लिए फर्नीचर, चीनी के बरतन तथा अन्य सामान लेकर आये। गांधीजी ने विरोध-सूचक स्वर में कहा—"यह सब आप किसके लिए लाये हैं? कृपया इन्हें वापस ले जाइये।"

मेजर मार्टिन ने कहा कि केंद्रीय अधिकारियों ने उन्हें अनुमति दी है कि ऐसे सम्माननीय मेहमान पर कम-से-कम तीन सौ रुपया मासिक खर्च करें।

"यह तो सब बहुत ठीक है," गांधीजी ने प्रकट किया—"परंतु यह रुपया

भारत के खजाने से आता है और मैं अपने देश का बोझ नहीं बढ़ाना चाहता। मैं समझता हूं कि मेरा खाने का खर्च पैंतीस रुपये महीने से अधिक नहीं होगा।" इस पर विशेष सामान हटा लिया गया।

यरवडा में क्विन नाम के एक अफसर ने गांधीजी से गुजराती पढ़ाने को कहा और रोज पढ़ने आने लगा। एक दिन सबेरे जब क्विन नहीं आया, तो गांधीजी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि वह अफसर जेल में फांसी लगाने में व्यस्त था। गांधीजी ने कहा—"मुझे ऐसा लगता है कि मैं बीमार पड़नेवाला हूं।"

वल्लभभाई पटेल भी गिरफ्तार करके यरवडा पहुंचा दिये गये। मार्च में महादेव देसाई को भी दूसरी जेल से बदलकर यरवडा भेज दिया गया, क्योंकि गांधीजी उन्हें साथ रखना चाहते थे।

गांधीजी ध्यान से अखबार पढ़ते थे, अपने कपड़े खुद धोते थे, कातते थे, रात को तारों का अध्ययन करते थे और खूब किताबें पढ़ते थे। उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तक को भी अंतिम रूप दिया, जिसका अधिकांश उन्होंने १९३० में यरवडा में, साबरमती-आश्रम को पत्रों के रूप में लिखा था। इसका नाम उन्होंने 'यरवडा मंदिर से' रखा।[1]

जिन दिनों गांधीजी अपने 'जेल-मंदिर' में ईश्वर तथा सदाचार पर अपने इन सरल पत्रों का संपादन कर रहे थे, उसी समय भारत अपने आधुनिक इतिहास के सबसे अधिक तनावपूर्ण पखवाड़े की ओर अग्रसर हो रहा था।

यह गांधीजी का जीवन बचाने के प्रश्न पर केंद्रित था।

राजगोपालाचारी ने लिखा था—"सितंबर १९३२ की वेदना का समरूप तलाश करने के लिए हमको तेईस शताब्दियां पीछे एथेंस जाना होगा, जब सुकरात के मित्र कारागार में उसे घेरे बैठे थे और मृत्यु से बचने के लिए उसपर जोर डाल रहे थे। अफलातून ने इन प्रश्नोत्तरों को लिखित रूप दिया है। सुकरात इस सुझाव पर मुस्कराया और उसने आत्मा की अमरता पर प्रवचन दिया।"

'सितंबर १९३२ की वेदना' गांधीजी के लिए इस वर्ष के शुरू में ही प्रारंभ हो गई थी। समाचारपत्रों से उन्हें पता लगा था कि भारत के लिए प्रस्तावित नये ब्रिटिश संविधान में न केवल पहले की भांति हिंदुओं तथा मुसलमानों को पृथक

---

१. यह पुस्तक 'मंगल प्रभात' के नाम से 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इसमें सत्य, अहिंसा, आदि एकादश व्रतों पर गांधीजी के लेख हैं।

निर्वाचन का अधिकार दिया जायगा, बल्कि अछूतों अथवा दलित जातियों को भी। अतएव उन्होंने भारत-सचिव सर सैम्युअल होर को ११ मार्च १९३२ के एक पत्र में लिखा—"दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन उनके लिए तथा हिंदू-जाति के लिए हानिकारक है।...जहां तक हिंदू-जाति का संबंध है, पृथक निर्वाचन उसका अंगोच्छेद और विच्छेद ही करेगा। ...नैतिक तथा धार्मिक मुद्दे की तुलना में राजनैतिक पहलू, महत्वपूर्ण होते हुए भी, नगण्य बनकर रह जाता है। इसलिए यदि सरकार अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन को जन्म देने का निश्चय करती है, तो मुझे आमरण उपवास करना पड़ेगा।" गांधीजी जानते थे कि इससे सरकार, जिसके वह कैदी थे, असमंजस में पड़ जायगी। "परंतु जो कदम उठाने का मैं विचार कर रहा हूं, वह मेरे लिए एक उपाय नहीं है, वह तो मेरे अस्तित्व का अंग है।"

भारत-सचिव ने १३ अप्रैल को उत्तर दिया कि अभी तक कोई निर्णय नहीं किया गया और निर्णय से पूर्व उनके विचार पर गौर किया जायगा।

१७ अगस्त १९३२ तक कोई नई घटना नहीं हुई। परंतु इस तारीख को प्रधान-मंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड ने पृथक निर्वाचन के पक्ष में ब्रिटेन के निर्णय की घोषणा कर दी।

दूसरे दिन गांधीजी ने रैम्जे मैकडॉनल्ड को लिखा—"आपके निर्णय का मुझे अपने प्राणों की बाजी लगाकर विरोध करना पड़ेगा। इसका एकमात्र तरीका यही है कि मैं सोडा और नमक के साथ या खाली पानी के सिवा किसी भी प्रकार का भोजन न लेकर आमरण अनशन की घोषणा कर दूं। यह अनशन २० सितंबर की दोपहर को प्रारंभ होगा।"

सितंबर १९३२ की ८ तारीख को भेजे गये लंबे पत्र के उत्तर में प्रधान मंत्री मैकडॉनल्ड ने गांधीजी के पत्र पर बहुत आश्चर्य और अत्यंत हार्दिक खेद प्रकट किया। उन्होंने सरकार के निर्णय के पक्ष में दलीलें दीं और दलितों के लिए पृथक निर्वाचन-पद्धति की व्याख्या की। सुरक्षित स्थानों के वैकल्पिक तरीके को अस्वीकार करते हुए उन्होंने बतलाया कि इस तरीके से दलितों के प्रतिनिधि सवर्णों के बहुमत से चुने जायंगे। अतः वे सवर्ण हिंदुओं के इशारों पर नाचनेवाले होंगे। इसलिए उनकी राय में गांधीजी का उपवास करने का इरादा भ्रमपूर्ण था और सरकार का निर्णय अपरिवर्तनशील।

इस पत्र का गांधीजी ने ९ सितंबर को जो उत्तर दिया, वह उनकी विशिष्टता लिये हुए था।

"बहस में न पड़ते हुए मैं दृढ़तापूर्वक कह देना चाहता हूं कि मेरे लिए यह मामला शुद्ध धार्मिक है।...आप कितने ही सहानुभूतिपूर्ण क्यों न हों, परंतु संबंधित दलों के लिए मार्मिक और धार्मिक महत्व रखनेवाले मामले में आप सही निर्णय पर नहीं पहुंच सकते। ...क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निर्णय कायम रहे और संविधान अमल में आ जाय, तो आप उन हिंदू सुधारकों के कार्य के अद्भुत विकास को कुंठित कर देंगे, जिन्होंने जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों के लिए उत्सर्ग किया है ?"

इसके बाद लंदन के साथ पत्र-व्यवहार समाप्त हो गया।

इस तरह परेशान होनेवालों में मैकडॉनल्ड अकेले ही नहीं थे। अनेक भारतवासी और कुछ हिंदू भी हैरान हो गये। गांधीजी के उपवास का समाचार जवाहरलाल नेहरू ने जेल में सुना। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है—"मुझे गुस्सा आया उन पर, एक राजनैतिक मुद्दे के बारे में उनकी धार्मिक और भावनामय पकड़ पर और इसके संबंध में बार-बार ईश्वर का नाम लेने पर। दो दिन तक मैं अंधेरे में भटकता रहा। परंतु फिर मुझे एक अजीब अनुभव हुआ। मैं एक अच्छे खासे भावोद्रेक में से गुजरा और इसके बाद मैंने कुछ शांति महसूस की और भविष्य मुझे इतना अंधकारमय नहीं लगा। उपयुक्त मौके पर सही बात कहने का बापू का निराला ढब है। हो सकता है कि उनका यह कार्य, जो मेरी दृष्टि में असंभव है, महान परिणामों की ओर ले जाय। इसके बाद देश भर में जबरदस्त हलचल की खबरें मिलीं। ...सोचा कि यरवडा जेल में बैठा हुआ यह नन्हा-सा आदमी कितना बड़ा जादूगर है और लोगों के दिलों को प्रभावित करनेवाली डोरियां खींचना यह कितनी अच्छी तरह जानता है।"

गांधीजी ने कहा कि उनका उपवास दलित जातियों के लिए किसी भी रूप में पृथक निर्वाचन के विरुद्ध है। यह खतरा दूर होते ही उपवास समाप्त हो जायगा। वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उपवास नहीं कर रहे थे, क्योंकि उसने कह दिया था कि यदि हिंदू तथा हरिजन किसी अन्य और पारस्परिक संतोषजनक मतदान व्यवस्था पर राजी हो जायं, तो उसे स्वीकार कर लिया जायगा। गांधीजी ने बतला दिया था कि उनके उपवास का उद्देश्य सही धार्मिक कृत्य के लिए हिंदुओं की अंतरात्मा को प्रेरित करना है।

१३ सितंबर को गांधीजी ने घोषित किया कि उनका आमरण उपवास २० सितंबर को प्रारंभ होगा। अब भारत के सामने एक ऐसी चीज आई, जो संसार ने आजतक नहीं देखी थी।

१३ तारीख को राजनैतिक तथा धार्मिक नेताओं में हलचल पैदा हो गई। विधान-सभा में अछूतों के एक प्रवक्ता श्री एम० सी० राजा ने गांधीजी की स्थिति का पूरी तरह समर्थन किया। सर तेजबहादुर सप्रू ने सरकार से गांधीजी को रिहा कर देने की प्रार्थना की; मद्रास के मुस्लिम नेता याकूब हसन ने हरिजनों से अनुरोध किया कि वे पृथक निर्वाचन अस्वीकार कर दें; राजेंद्रप्रसाद ने सुझाव दिया कि हिंदू लोग हरिजनों के लिए अपने मंदिर, कुएं, पाठशालाएं तथा सार्वजनिक सड़कें खोलकर गांधीजी के जीवन की रक्षा करें; पंडित मालवीय ने १६ तारीख को नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया; राजगोपालाचारी ने कहा कि २० तारीख को सारा देश प्रार्थना करे तथा उपवास रखे।

कई शिष्टमंडलों ने जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति मांगी। सरकार ने जेल के दरवाजे खोल दिये और गांधीजी से परामर्श करने की खुली इजाजत दे दी। परामर्शकारों तथा गांधीजी के बीच मध्यस्थ का काम करने के लिए देवदास गांधी आ पहुंचे। पत्रकारों को भी गांधीजी तक पहुंचने में कोई रुकावट नहीं थी।

इस अर्से में गांधीजी ने भारत तथा विदेशों में अनेक मित्रों को लंबे-लंबे पत्र लिखे। मीराबहन को भेजे गये पत्र में उन्होंने लिखा—"इससे बचने का कोई रास्ता नहीं था। मेरे लिए यह एक विशिष्ट लाभ तथा कर्तव्य दोनों है। ऐसा अवसर किसीको एक पीढ़ी में या अनेक पीढ़ियों में कदाचित ही प्राप्त होता है।"

२० तारीख को गांधीजी सुबह २-३० बजे उठ गये और उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर को पत्र लिखा, क्योंकि वह ठाकुर की स्वीकृति के लिए अत्यंत उत्सुक थे। महात्माजी ने लिखा—"अभी मंगलवार की सुबह के ३ बजे हैं। दोपहर को मैं अग्निमय द्वार में प्रवेश करूंगा। मैं चाहूंगा कि आप इस प्रयत्न को आशीर्वाद दे सकें। आप सच्चे मित्र हैं, क्योंकि आप स्पष्टवादी मित्र हैं और अपने विचारों को अक्सर मुख से प्रकट कर देते हैं। यदि आपका हृदय मेरे कार्य की निंदा करे, तो भी मैं आपकी आलोचना को बहुमूल्य समझूंगा, यद्यपि अब यह मेरे उपवास के दौरान में ही संभव है। यदि मुझे लगे कि मैं गलती पर हूं, तो मैं इतना अभिमानी नहीं हूं कि अपनी भूल को खुले आम स्वीकार न करूं, चाहे इस आत्म-स्वीकृति की कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। यदि आपका हृदय मेरे कार्य को पसंद

करे, तो मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। इससे मुझे सहारा मिलेगा।"

गांधीजी ने यह पत्र डाक में डलवाया ही था कि उन्हें ठाकुर का तार मिला—"भारत की एकता तथा सामाजिक अविच्छिन्नता की खातिर बहुमूल्य जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है। मैं हृदय से आशा करता हूं कि हम लोग इस राष्ट्रीय वज्र-पात को चरम-सीमा तक पहुंचने देने की निर्ममता नहीं दिखायेंगे। हमारे व्यथित हृदय आपकी लोकोत्तर तपस्या को श्रद्धा तथा प्रेम के साथ निहारते रहेंगे।"

गांधीजी ने इस प्रेमपूर्ण तथा भव्य तार के लिए ठाकुर को धन्यवाद दिया और लिखा—"जिस तूफान के बीच मैं प्रवेश कर रहा हूं, उसमें यह मुझे सहारा देगा।"

उसी दिन १२-३० बजे गांधीजी ने आखिरी बार भोजन किया। इसमें नीबू का रस, शहद और गर्म पानी था। करोड़ों भारतवासियों ने २४ घंटे का उपवास किया। देश भर में प्रार्थनाएं की गईं।

उस दिन रवींद्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन के विद्यार्थियों को भाषण देते हुए कहा—"आज भारत के ऊपर ऐसी छाया अंधकार डाल रही है, जैसी राहु-ग्रसित सूर्य डालता है। सारे देश की जनता चिंता की तीक्ष्ण वेदना से संतप्त है, जिसकी विश्व-व्यापकता में सांत्वना का महान गौरव है। महात्माजी, जिन्होंने अपने उत्सर्ग-मय जीवन से भारत को वास्तव में अपना बना लिया है, अपने चरम बलिदान का व्रत प्रारंभ कर रहे हैं।"

महात्माजी के उपवास की व्याख्या करते हुए ठाकुर ने कहा—"प्रत्येक देश का अपना आंतरिक भूगोल होता है, जहां उसकी आत्मा निवास करती है और जहां भौतिक बल एक इंच भी भूमि नहीं जीत सकता।...महात्माजी ने जो प्रायश्चित्त अपने सिर पर लिया है, वह कर्मकांड नहीं है, बल्कि सारे भारत को तथा सारे संसार के लिए एक संदेश है।...हमने देखा है कि महात्माजी जो कदम उठाने पर मजबूर हुए हैं, उससे अंग्रेज लोग चकरा गये हैं। वे स्वीकार करते हैं कि इसे वे समझ नहीं पा रहे। मैं समझता हूं कि उनके न समझने का मुख्य कारण यह है कि महात्माजी की भाषा उनकी भाषा से मूलतः भिन्न है।...भारतीय समाज का अंग-विच्छेद रोकने के लिए गांधीजी एक व्यक्ति की, स्वयं अपनी, बलि दे रहे हैं। यह अहिंसा की भाषा है। क्या इसीलिए पश्चिम इसका अर्थ नहीं लगा सकता?"

ठाकुर को इस उपवास में गांधीजी को खो देने की संभावना नजर आ रही थी। केवल इसी विचार से राष्ट्र की रीढ़ में सनसनी दौड़ गई थी। यदि महात्माजी

को बचाने के लिए कुछ नहीं किया गया, तो प्रत्येक हिंदू महात्माजी का हत्यारा होगा ।

जेल के शांत अहाते में गांधीजी आम के पेड़ की छाया में लोहे की सफेद चारपाई पर लेटे हुए थे । पटेल और महादेव देसाई उनके पास बैठे थे । गांधीजी की शुश्रूषा करने के लिए तथा उन्हें अतिशय शरीर-श्रम से बचाने के लिए श्रीमती नायडू को यरवडा जेल के जनाने वार्ड से बदलकर भेज दिया गया था । एक स्टूल पर कुछ पुस्तकें, लिखने के कागज, पानी, नमक तथा सोडा की बोतलें रखी हुई थीं ।

बाहर परामर्शकार लोग मृत्यु के साथ दौड़ लगा रहे थे । २० सितंबर को हिंदू नेतागण बंबई के बिड़ला भवन में एकत्र हुए। इनमें सप्रू, सर चुन्नीलाल मेहता, राजगोपालाचारी, घनश्यादास बिड़ला, राजेंद्रप्रसाद, जयकर, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, आदि थे । अछूतों के प्रतिनिधि डा० सोलंकी तथा डा० अंबेडकर थे ।

गांधीजी सदा से हिंदुओं तथा हरिजनों के लिए संयुक्त निर्वाचन चाहते आये थे । वह हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों के भी विरोधी थे, क्योंकि इससे दोनों जातियों के बीच की दरार और भी चौड़ी हो जायगी । परंतु १९ तारीख को गांधीजी ने एक शिष्टमंडल को बतलाया कि सुरक्षित स्थानों का बात से वह सहमत हो गये हैं ।

परंतु अंबेडकर ने आनाकानी की—विधान-सभाओं में सुरक्षित स्थानों पर बैठनेवाले हरिजन-सदस्य हिंदुओं तथा हरिजनों द्वारा संयुक्त रूप से चुने जायंगे, अतः हिंदुओं के विरुद्ध हरिजनों की शिकायतें प्रकट करने में उन्हें बहुत हिचकिचाहट होगी । यदि कोई हरिजन हिंदुओं पर अत्यधिक दोषारोपण करने लगे, तो संभव था कि अगले चुनावों में हिंदू लोग उसे हरा दें और किसी अधिक नमनशील हरिजन को चुन दें ।

इस न्यायोचित आपत्ति का निपटारा करने के लिए सप्रू ने एक चतुरतापूर्ण योजना निकाली, जिसे उन्होंने २० सितंबर को सम्मेलन में पेश किया ।

इस योजना पर अंबेडकर के विचारों की हिंदू लोग चिंता के साथ प्रतीक्षा करने लगे । अंबेडकर ने इसकी बारीकी से परीक्षा की और मित्रों से सलाह ली । घंटे बीतते जा रहे थे । अंत में उन्होंने योजना स्वीकार कर ली, परंतु साथ ही कहा कि सप्रू-योजना सहित अपने विचारों को संनिहित करने के लिए वह अपना अलग सूत्र तैयार करेंगे ।

इससे उत्साहित होकर, परंतु फिर भी अंबेडकर की ओर से शंकाशील रहकर, हिंदू नेता अब गांधीजी के बारे में सोचने लगे; क्या वह सप्रू की नई बात स्वीकार करेंगे? सप्रू, जयकर, राजगोपालाचारी, देवदास, बिड़ला और राजेंद्रप्रसाद रात की गाड़ी से रवाना हुए और सुबह पूना पहुंच गये। सुबह ७ बजे वह जेल के दफ्तर में गये। गांधीजी, जो चौबीस से कुछ कम घंटों तक निराहार रहने के कारण कमजोर हो गये थे, हंसते हुए दफ्तर में आये और मेज के बीच में स्थान ग्रहण करते हुए प्रसन्न-मुद्रा से बोले—"मैं सभापति हूं।"

सप्रू ने अपनी योजना बतलाई। दूसरों ने उसकी व्याख्या की। गांधीजी ने कुछ सवाल पूछे। उन्होंने निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया। आधा घंटा बीत गया। अंत में गांधीजी ने कहा—"मैं आपकी योजना पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने को तैयार हूं, ...परंतु मैं चाहता हूं कि सारी तसवीर लिखित रूप में मेरे सामने आ जाय।" साथ ही उन्होंने अंबेडकर और राजा से मिलने की इच्छा प्रकट की।

अंबेडकर और राजा को अत्यावश्यक निमंत्रण भेजे गये। २२ तारीख की सुबह गांधीजी ने योजना के प्रति नापसंदी जाहिर की। ...वह हरिजनों के बीच कोई भेदभाव नहीं चाहते थे। न वह यह चाहते थे कि विधान-सभाओं के हरिजन-सदस्य हिंदुओं के किसी राजनैतिक एहसान से दबें।

परामर्शकार लोग अत्यंत हर्षित हुए। गांधीजी अंबेडकर को उससे भी ज्यादा दे रहे थे, जो अंबेडकर ने मान लिया था।

उस दिन तीसरे पहर के बाद अंबेडकर गांधीजी के सिरहाने पहुंचे। अधिकतर बातें उन्होंने ही कीं। वह महात्माजी का जीवन बचाने में सहायता देने को तैयार थे, परंतु कहने लगे—"मैं अपना मुआवजा चाहता हूं।"

जब अंबेडकर ने ये शब्द कहे, तो गांधीजी कष्ट से सहारा लगाकर बैठ गये और कई मिनट तक बोलते रहे। उन्होंने सप्रू-योजना की एक-एक बात पर चर्चा की। इस प्रयास से थककर गांधीजी तकिये के सहारे लेट गये।

अंबेडकर ने सोचा था कि मरणोन्मुख महात्माजी के सामने अपनी स्थिति से पीछे हटने के लिए उनपर दबाव डाला जायगा। परंतु अब गांधीजी ने हरिजन-हितैषिता में तो हरिजन-अंबेडकर को भी मात दे दी।

अंबेडकर ने गांधीजी के सशोधन का स्वागत किया।

उसी दिन श्रीमती गांधी आ गईं, उन्हें साबरमती जेल से बदलकर यरवडा भेजा गया था। ज्योंही वह धीरे-धीरे गांधीजी की ओर बढ़ीं, उन्होंने असहमति-

सूचक गरदन हिलाई और कहा—"फिर वही किस्सा!" गांधीजी मुस्कराये। बा की उपस्थिति से उनका हृदय प्रसन्न हो गया।

उपवास के चौथे दिन, शुक्रवार २३ सितंबर को, गांधीजी के हृदय-विशेषज्ञ डा० गिल्डर तथा डा० पटेल बंबई से आये। जेल के डाक्टरों से सलाह करके उन्होंने निदान दिया कि गांधीजी की हालत खतरनाक है। रक्तचाप भयंकर रूप से बढ़ गया था। किसी भी समय मृत्यु हो सकती थी।

उसी दिन अंबेडकर ने हिंदू नेताओं से लंबी बातचीत की और मुआवजे की अपनी नई मांगें पेश कीं। मैकडॉनल्ड के फैसले में प्रांतीय विधान-सभाओं में दलित वर्ग को ७१ स्थान दिये गये थे। अंबेडकर ने १९७ मांगे। इसके अलावा यह सवाल भी था कि सुरक्षित स्थानों को रद्द करने का निश्चय करने के लिए हरिजन-मतदाताओं का जनमत कब लिया जाय। गांधीजी चाहते थे कि हरिजन स्थानों के लिए प्रारंभिक चुनाव पांच वर्ष में समाप्त कर दिये जायं। अंबेडकर पंद्रह वर्ष पर अड़े हुए थे। उनका विश्वास नहीं था कि पांच वर्ष में अस्पृश्यता का लोप हो जायगा।

पांचवें दिन, शनिवार, २४ सितंबर को, अंबेडकर ने हिंदू नेताओं से फिर बातचीत शुरू की। सुबह वितंडावाद के पश्चात वह दोपहर को गांधीजी से मिलने गये। अंबेडकर तथा हिंदू नेताओं के बीच यह तय हुआ कि दलित जातियों के लिए १४७ सुरक्षित स्थान रखे जायं। इस समझौते को गांधीजी ने स्वीकार कर लिया। अब अंबेडकर प्रारंभिक चुनाव दस वर्ष बाद हटाने के लिए तैयार हो गये। गांधीजी ने पांच का आग्रह किया। उन्होंने कहा—"या तो पांच साल रहेंगे या मेरी जिंदगी नहीं रहेगी।" अंबेडकर ने इन्कार कर दिया।

अंबेडकर अपने हरिजन साथियों के पास लौट गये। बाद में उन्होंने हिंदू नेताओं को सूचना दी कि वह पांच वर्ष में प्रारंभिक चुनावों का अंत स्वीकार नहीं करेंगे। यह समय दस वर्ष से कम नहीं हो सकता।

तब राजगोपालाचारी ने वह काम किया कि जिसने शायद गांधीजी का जीवन बचा लिया। गांधीजी से पूछे बिना ही उन्होंने अंबेडकर को इस बात पर राजी कर लिया कि प्रारंभिक चुनावों को हटाने का प्रश्न आगे चर्चा के बाद तय किया जाय। इससे शायद जनमत लेना आवश्यक न रहे।

राजगोपालाचारी जेल दौड़े गये और गांधीजी को उन्होंने यह नई व्यवस्था बतलाई।

"इसे दुबारा कहो।" गांधीजी ने कहा।

राजगोपालाचारी ने अपनी बात दोहराई।

"बहुत बढ़िया।" गांधीजी धीरे से बोले। शायद वह राजगोपालाचारी की बात को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये, उन्हें मूर्च्छा-सी आ रही थी, परंतु वह राजी हो गये।

उस शनिवार को भारतीय-इतिहास के यरवडा-समझौते का मसविदा तैयार किया गया और गांधीजी के सिवा सब हिंदू तथा हरिजन परामर्शकारों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

रविवार को बंबई में परामर्शकारों के पूरे सम्मेलन ने उस पर छाप लगा दी।

परंतु यह समझौता वास्तविक समझौता नहीं था और गांधीजी तब तक अपना उपवास तोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, जब तक कि ब्रिटिश सरकार इसे मैकडॉनल्ड के फैसले के स्थान पर स्वीकार करने को राजी न हो। इसका पूरा सार तार द्वारा लंदन भेज दिया गया था, जहां चार्ल्स एंड्र्यूज, पोलक तथा गांधीजी के अन्य मित्र सरकार से जल्दी कार्रवाई कराने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। उस दिन इतवार था, मंत्रीगण नगर से बाहर चले गये थे और मैकडॉनल्ड ससेक्स में एक मृतक-संस्कार में शामिल होने गये थे।

पूना-समझौते का समाचार सुनकर मैकडॉनल्ड वापस दौड़े आये। सर सैम्युअल होर तथा लार्ड लोथियन भी आ गये। रविवार को आधी रात तक ये लोग समझौते के पाठ पर गौर करते रहे।

गांधीजी की जीवन-शक्ति बहुत तेजी के साथ क्षीण होती जा रही थी। उन्होंने कस्तूरबा को बताया कि उनकी चारपाई के आस-पास पड़ी हुई निजी वस्तुएं किन-किन को दी जायं। सोमवार को सुबह ठाकुर कलकत्ता से आये और उन्होंने अपने कुछ चुने हुए गीत महात्माजी को गाकर सुनाये। इनसे महात्माजी को कुछ शांति मिली। पूना के कुछ मित्र भी वाद्य-संगीत तथा भजन सुनाने के लिए बुलाये गये। गांधीजी ने सिर हिलाकर तथा धीरे-से मुस्करा कर उन्हें धन्यवाद दिया। वह बोल नहीं सकते थे।

कुछ घंटे बाद ब्रिटिश सरकार ने लंदन तथा नई दिल्ली में एक साथ घोषणा की कि उसने यरवडा-समझौता मान लिया है। अब गांधीजी अपना उपवास तोड़ सकते थे।

सोमवार की शाम को ५-१५ पर ठाकुर, पटेल, महादेव देसाई, श्रीमती नायडू

तथा परामर्शकारों और पत्रकारों की उपस्थिति में गांधीजी ने कस्तूरबा के हाथ से नारंगी के रस का गिलास लिया और उपवास तोड़ दिया। ठाकुर ने बंगला भजन गाये। बहुतों की आंखों में आंसू आ गये।

रविवार, २५ सितंबर को, बंबई-सम्मेलन में, जिसने यरवडा-समझौते या पूना-समझौते पर स्वीकृति की छाप लगाई, डा० अंबेडकर ने एक दिलचस्प भाषण दिया। गांधीजी के सद्भावनापूर्ण रुख की सराहना करते हुए अंबेडकर ने कहा—"मैं स्वीकार करता हूं कि जब मैं उनसे मिला, तो मुझे आश्चर्य हुआ, और महान आश्चर्य हुआ कि उनके और मेरे बीच परस्पर मेल खानेवाली कितनी अधिक बातें थीं। वास्तव में जब भी कोई विवाद उनके सामने गया, तो मैं यह देखकर हैरान रह गया कि जो व्यक्ति गोलमेज परिषद में मेरे विचारों से इतना अधिक मतभेद रखता था, वह तुरंत मेरी हिमायत करने लगा, दूसरे पक्ष की नहीं। मैं महात्माजी का बड़ा कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे ऐसी स्थिति से बचा लिया, जो बहुत कठिन हो सकती थी।"

सितंबर-दिसंबर १९३१ की गोलमेज परिषद में गांधीजी ने हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों का विरोध किया था, क्योंकि इससे हिंदू जाति के टुकड़े हो जाते; परंतु १३ सितंबर १९३२ को गांधीजी ने सुरक्षित स्थानों का प्रस्ताव एक अनिवार्य तथा अल्पकालिक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया।

गांधीजी ने हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की बात इसलिए मान ली कि वह इसे उस पृथक्करण से हजारों गुना बेहतर समझते थे, जो मैकडॉनल्ड के इच्छित पृथक निर्वाचन से उत्पन्न होता। परंतु यही बात गांधीजी गोलमेज परिषद में या उपवास से कुछ महीने पूर्व मान लेते, तो वह शायद कट्टर हिंदुओं को अपने साथ नहीं ले जा सकते थे।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिये कि हिंदू नेता उपवास से पूर्व हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान स्वीकार कर लेते। तब क्या उपवास फालतू चीज होता? क्या महात्माजी की यंत्रणा अनावश्यक थी?

भारत के इतिहास में गांधीजी की देन को समझने के लिए इस प्रश्न का उत्तर निर्णायक हैसियत रखता है। ठंडे तर्क और शुष्क विधिवादिता की कसौटी के अनुसार तो गांधीजी को अंबेडकर से समझौता करने के लिए उपवास करने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु भारतीय जनता के साथ गांधीजी का संबंध तर्क और विधिवादिता के आधार पर नहीं था। यह संबंध उच्च मनोभावनापूर्ण था। हिंदुओं

के लिए गांधीजी महात्मा थे। क्या वह उनकी हत्या कर सकते थे ? उपवास प्रारंभ होते ही मसविदे, संविधान, फैसले, चुनाव आदि सबका महत्व जाता रहा। गांधी-जी के प्राण बचाना जरूरी था।

गांधीजी ने प्रत्येक हिंदू पर अपने जीवन की जिम्मेदारी डाल दी थी। १५ सितंबर को एक वक्तव्य में, जिसका व्यापक रूप से प्रचार किया गया, गांधीजी ने कहा था—"सवर्ण हिंदुओं तथा प्रतिपक्षी दलितवर्गीय नेताओं के बीच किसी तरह का चेपा-चेपीवाला समझौता उद्देश्य सिद्ध नहीं करेगा। समझौता पुष्ट तभी होगा, जब वह वास्तविक होगा। यदि हिंदू जनता का मानस अभी तक अस्पृश्यता को जड़-मूल से नष्ट करने के लिए तैयार नहीं है, तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मेरा बलिदान कर देना चाहिए।"

इसलिए जिस समय परामर्शकार लोग मंत्रणाएं कर रहे थे, हिंदू समुदाय एक धार्मिक भावनामय उथल-पुथल अनुभव कर रहा था। उपवास-सप्ताह के प्रारंभ में ही हिंदू कट्टरता के गढ़—कलकत्ता का कालीघाट मंदिर तथा काशी का राम-मंदिर—हरिजनों के लिए खोल दिये गये। दिल्ली में सवर्ण हिंदुओं तथा हरिजनों ने बाजारों तथा मंदिरों में आपसी भाई-चारे का प्रदर्शन किया। बंबई में महिलाओं की एक राष्ट्रीय संस्था ने सात बड़े मंदिरों के सामने मतदान की व्यवस्था की। स्वयंसेवकों की निगरानी में मंदिरों के बाहर मतदान पेटियां रखी गईं और उपासकों से कहा गया कि वे अछूतों के मंदिर-प्रवेश पर मत डालें। मतगणना २४,७९७ पक्ष में और ४४५ विपक्ष में हुई। परिणामस्वरूप ऐसे मंदिर, जिनमें किसी हरिजन ने कभी पांव नहीं रखा था, सबके लिए खोल दिये गये।

उपवास प्रारंभ होने के एक दिन पूर्व इलाहाबाद के बारह मंदिर पहली बार हरिजनों के लिए खोल दिये गये। उपवास के पहले दिन देश के कुछ सबसे पवित्र मंदिरों ने अपने द्वार अछूतों के लिए खोल दिये। २६ सितंबर तक हर रोज, और २७ सितंबर से गांधीजी के जन्म दिन २ अक्तूबर तक प्रतिदिन, बीसियों धार्मिक स्थानों ने हरिजन-प्रवेश पर प्रतिबंध हटा दिये। बड़ौदा, काश्मीर और कोल्हापुर की रियासतों के सब मंदिरों ने भेद-भाव मिटा दिया। समाचारपत्रों ने सैकड़ों मंदिरों के नाम प्रकाशित किये, जिन्होंने गांधीजी के उपवास के झोंके से प्रतिबंध हटा लिया था।

जवाहरलाल की कट्टरपंथी माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने कहा कि लोगों को बता दिया जाय कि उन्होंने एक अछूत के हाथ से खाना खाया है। हजारों हिंदू

स्त्रियों ने इनका अनुकरण किया। काशी के हिंदू विश्वविद्यालय में मुख्याचार्य ध्रुव ने अनेक ब्राह्मणों-सहित सार्वजनिक रूप में चमारों और भंगियों के साथ बैठकर भोजन किया।

गांवों तथा छोटे-छोटे नगरों में अछूतों को कुओं से पानी भरने की छूट दे दी गई।

देश भर में सुधार, प्रायश्चित्त तथा आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ गई। उपवास के छः दिनों में बहुत से हिंदू लोग सिनेमा, थियेटर, रेस्ट्रां आदि में नहीं गये। विवाह तक स्थगित कर दिये गये।

उपवास के बिना गांधीजी तथा अंबेडकर के बीच शुष्क समझौते से राष्ट्र पर यह प्रभाव नहीं पड़ता। इससे हरिजनों की एक वैधानिक शिकायत भले ही दूर हो जाती, परंतु जहां तक हरिजनों के साथ हिंदुओं के व्यक्तिगत व्यवहार का सवाल था, यह समझौता एक बेकार की चीज बना रहता। बहुत से हिंदुओं को तो इसका पता भी नहीं लगता। गांधीजी ने देश के मनोभावों का जो मंथन किया, उसके बाद ही राजनैतिक समझौते का महत्व हुआ।

उपवास से अस्पृश्यता का अभिशाप तो नहीं मिटा, परंतु इसके बाद सार्वजनिक रूप से अस्पृश्यता का समर्थन समाप्त हो गया।

यदि अस्पृश्यता के ढांचे को तहस-नहस करने के सिवा गांधीजी अपने जीवन में और कुछ भी नहीं करते, तो भी वह एक महान समाज-सुधारक माने जाते। पीछे दृष्टि डालने पर स्थानों, प्रारंभिक चुनावों, जनमत आदि के बारे में अंबेडकर से झीना-झपटी बेकार-सी लगती है। वास्तविक सुधार धार्मिक तथा सामाजिक था, राजनैतिक नहीं।

उपवास की समाप्ति के पांच दिन बाद गांधीजी का वजन ९९$\frac{3}{4}$ पौंड हो गया और वह घंटों तक कातने तथा काम करने लगे।

वह अभी जेल ही में थे।

गांधीजी के उपवास ने भारत के हृदय का स्पर्श किया। गांधीजी को लोगों के हृदयों से बात करने की अनिवार्य आवश्यकता जान पड़ी। मनुष्य के आंतरिक हृदय-तारों तक पहुंचने के लिए उनमें कलाकार की प्रतिभा थी। उनके उपवास मनोभावों के आदान-प्रदान के साधन थे। उपवास के समाचार सब अखबारों में छपते थे। जो पढ़ना जानते थे, वे बे-पढ़ों को बतलाते थे कि महात्माजी उपवास कर रहे हैं। शहरों ने जाना, शहरों में सामान खरीदने के लिए आनेवाले किसानों

ने जाना और वे इस समाचार को गांवों में ले गये। यात्रियों ने भी यही किया।

"महात्माजी उपवास क्यों कर रहे हैं ?"

"इसलिए कि हम हिंदू लोग अछूतों के लिए अपने मंदिर खोल दें और अछूतों के साथ अच्छा बर्ताव करें।"

गांधीजी की यंत्रणा से उनके भक्तों को पीड़ा पहुंचती थी और वे जानते थे कि पृथ्वी पर ईश्वर के इस अवतार को मारना अच्छा नहीं है। उनकी वेदना को बढ़ने देना पाप है। जिन्हें गांधीजी ने हरिजन कहा है, उनके साथ अच्छा सलूक करके गांधीजी के प्राण बचाना पवित्र कार्य है।

: १७ :

राजनीति से अलग

'ऐतिहासिक उपवास' ने गांधीजी को मोटी, ऊंची दीवार तोड़कर समाज-सुधार के विशाल उपेक्षित क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर दिया। उनके अनेक मित्रों को दुख हुआ, क्योंकि वह अपना मार्ग छोड़कर हरिजनों तथा किसानों के कल्याण-कार्य में पड़ गये। राजनैतिक लोग चाहते थे कि वह राजनैतिक बने रहें, परंतु गांधीजी ग्रामीणों के लिए पोषक-तत्वों को सर्वश्रेष्ठ राजनीति तथा हरिजनों के सुख को स्वतंत्रता का राजमार्ग समझते थे।

समाज-सुधार सदा से उनका प्रिय कार्य रहा था। २५ जनवरी १९४२ के 'हरिजन' में उन्होंने घोषणा की थी—"मैंने हमेशा यह माना है कि हर समय पार्लामेंटरी कार्यक्रम किसी राष्ट्र की सबसे छोटी प्रवृत्ति है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा स्थायी कार्य बाहर किया जाता है।" वह चाहते थे कि व्यक्ति अधिक करे ताकि राज्य कम करे। नीचे जितना अधिक काम होगा, ऊपर से उतनी ही कम आज्ञा आरोपित होगी।

वास्तव में सरकार के विरुद्ध गांधीजी की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र थी कि २७ अप्रैल १९४० के 'हरिजन' में उन्होंने प्रतिज्ञा की कि स्वतंत्र भारत की सरकार में वह सम्मिलित नहीं होंगे। उन्होंने कहा कि वह सरकारी जगत के बाहर अपना हिस्सा अदा करेंगे। वह इतने धार्मिक थे कि किसी सरकार के साथ अपने-आपको अभिन्न नहीं बना सकते थे।

चूंकि गांधीजी का दर्शन यह था, इसलिए अपने समाज-सुधार-कार्य के लिए

वह अनेक क्रियाशील सदस्योंवाले विशिष्ट स्वेच्छाधीन संगठनों पर निर्भर रहते थे।

फरवरी १९३३ में गांधीजी ने जेल में ही 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की तथा 'यंग इंडिया' के स्थान पर 'हरिजन' निकाला। ८ मई को उन्होंने आत्म-शुद्धि के लिए तथा आश्रमवासियों को भोग के बजाय सेवा का महत्व समझाने के लिए तीन सप्ताह का उपवास शुरू किया। उपवास के पहले ही दिन सरकार ने उन्हें छोड़ दिया। 'ऐतिहासिक उपवास' के सात दिनों की यंत्रणा के बाद यह निश्चित प्रतीत होता था कि इक्कीस दिन का यह अनशन उनके लिए घातक होगा और ब्रिटिश सरकार गांधीजी को जेल में नहीं मरने देना चाहती थी।

वह उपवास को सकुशल पार कर गये।

छोटा उपवास इतना भयंकर क्यों था और दूसरा, उससे तीन गुने समय का, उपवास आसानी से, कैसे सह लिया गया? पहले उपवास में गांधीजी बराबर मंत्रणाएं करते रहे और अस्पृश्यता का कलंक मिटाने की इच्छा उन्हें खाती रही, साथ ही उनका शरीर भी जलता रहा। इक्कीस दिन के उपवास में शरीर तथा मस्तिष्क को आराम मिला। उनका छोटा-सा शरीर बलवान इच्छा-शक्ति का दास था।

अपनी रिहाई के लिए सरकार के प्रति मैत्री के संकेत रूप गांधीजी ने सविनय अवज्ञा-आंदोलन छः सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। १५ जुलाई को उन्होंने विलिंगडन को मुलाकात के लिए लिखा। वाइसराय ने इन्कार कर दिया। १ अगस्त को गांधीजी ने यरवडा से रास जाने का विचार किया। उसी रात को उन्हें चौंतीस आश्रमवासियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया, परंतु तीन दिन बाद छोड़ दिया गया और पूना शहर में ही रहने का आदेश दिया गया। आधे घंटे बाद उन्होंने इस आदेश को भंग किया और उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया तथा एक वर्ष की कैद की सजा दे दी गई। १६ अगस्त को उन्होंने फिर उपवास प्रारंभ किया, २० अगस्त को हालत खतरनाक हो जाने से उन्हें अस्पताल पहुंचाया गया और २३ तारीख को उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। मगर उन्होंने यही माना कि एक वर्ष की सजा भोग रहे हैं और घोषणा की कि ३ अगस्त १९३४ से पहले वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन फिर से चालू नहीं करेंगे।

१९३९ तक गांधीजी ने अपने-आपको पूर्णतया उन संस्थाओं के हवाले कर दिया, जो उन्होंने जन-कल्याण तथा शिक्षण के लिए स्थापित की थीं। उन्होंने साबर-

मती आश्रम एक हरिजन संस्था को दे दिया और वर्धा में अपना मुकाम बनाया। यहीं से ७ नवंबर १९३३ को उन्होंने हरिजन-कार्य के लिए दस महीने का दौरा प्रारंभ किया। आराम के लिए बिना एक बार भी लौटे, वह भारत के प्रत्येक प्रांत में घूमे।

१५ जनवरी १९३४ को बिहार प्रांत के बड़े भाग में भयंकर भूचाल आया। गांधीजी अपना दौरा स्थगित कर मार्च में वहां जा पहुंचे। वह गांव-गांव में लोगों को सांत्वना, शिक्षा तथा उपदेश देते हुए नंगे पांव घूमे। उन्होंने जनता से कहा कि यह भूचाल तुम्हारे पापों का दंड है, "खासकर अस्पृश्यता के पाप का"। इस अंधविश्वास पर ठाकुर को तथा अन्य शिक्षित भारतवासियों को रोष आया। ठाकुर ने गांधीजी की भर्त्सना की। समाचार-पत्रों को दिये गये एक वक्तव्य में ठाकुर ने कहा—"भौतिक दुर्घटनाओं का अनिवार्य तथा एकमात्र मूल भौतिक तथ्यों के किसी संयोग में होता है। ...यदि हम आचार-नीति के सिद्धांतों को विश्व-संबंधी प्राकृतिक घटनाओं से जोड़ने लगें, तो हमको मानना पड़ेगा कि मनुष्य की प्रकृति नैतिकता में उस दैव से श्रेष्ठ है, जो अच्छे आचरण के पाठ निष्कृष्टतम बर्ताव की मतवाली हरकतों के द्वारा सिखाता है। ...हम तो इस विश्वास में अपने-आपको पूर्णतया सुरक्षित समझते हैं कि हमारा पाप तथा हमारी भूलें चाहे तथा जितने भीषण क्यों न हों, उनमें इतना बल नहीं है कि सृष्टि के ढांचे को गिराकर चकनाचूर कर दें।"

गांधीजी इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने उत्तर दिया—"जड़ और चेतन के बीच एक अविच्छेद गठ-बंधन है।...विश्व-संबंधी प्राकृतिक घटनाओं तथा मानव-आचरण का पारस्परिक बंधन एक जीवित विश्वास है और मुझे ईश्वर के निकट ले जाता है।" जिस समय गांधीजी ईश्वर की दुहाई देने लगते थे, तब उनसे तर्क नहीं किया जा सकता था। दीनों की सहायता करना गांधीजी अपना प्रधान अनिवार्य कर्तव्य मानते थे और चूंकि गांधीजी तथा गांधीजी का ईश्वर साझीदार थे, इसलिए महात्माजी सर्वशक्तिमान परमात्मा को अपने काम में शामिल कर लेते थे। उन्होंने लिखा था—"भूखी मरनेवाली और बेकार जनता के सामने ईश्वर जिस एकमात्र स्वीकार्य रूप में प्रकट होने का साहस कर सकता है, वह है काम और भोजन तथा मजूरी का आश्वासन।"

यह विचार कि गांधीजी गरीबी का समर्थन करते थे, मिथ्या है। वह तो कुछ चुने हुए आदर्शवादियों को प्रेरित करते थे कि आत्म-त्याग के द्वारा जनता की सेवा

करें। सारे राष्ट्र के लिए उनका कहना था—"किसीने कभी भी यह विचार नहीं किया कि दुर्दमनीय दरिद्रता का परिणाम नैतिक पतन के सिवा कुछ और नहीं हो सकता है।"

गांधीजी चरम दरिद्रता और चरम संपत्ति, दोनों की निंदा करते थे।

१९३३ और १९३९ के बीच गांधीजी ने अपने जन-कल्याण के मार्ग में अन्य बातों को नहीं आने दिया। इसमें अनेक तूफान भी आये। २५ जून १९३५ को पूना में किसी हिंदू ने, जो शायद हरिजनों को समानता देने का विरोधी था, एक मोटरगाड़ी पर इस भ्रम में बम फेंका कि उसमें गांधीजी बैठे हुए थे। कुछ दिन बाद गांधीजी के एक समर्थक ने एक हरिजन-विरोधी के लाठी मारी। इन दोनों पापों का प्रायश्चित करने के लिए गांधीजी ने जुलाई १९३४ में सात दिन का उपवास किया।

गांवों की सभाओं में तथा 'हरिजन' में गांधीजी कृषक-जनता को भोजन के बारे में प्रारंभिक बातें बताने लगे। वह जानते थे कि बीज का सुधार, खाद का उचित उपयोग और पशुओं की उचित देख-भाल आधारभूत राजनैतिक समस्याओं को हल कर सकते हैं।

गांधीजी ने ग्राम्य-जीवन के उन पहलुओं पर भी ध्यान दिया, जो कृषि से संबंध नहीं रखते थे। २९ अगस्त १९३६ के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा—"हमें गांवों को आत्म-निर्भर बनाने पर शक्ति लगानी है।"

२६ जुलाई १९४२ के 'हरिजन' में गांधीजी ने आदर्श भारतीय गांव की व्याख्या की—"यह एक संपूर्ण जनतंत्र होगा, जो अपनी जीवन-संबंधी आवश्यकताओं के लिए पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा, परंतु फिर भी अन्य अनेक आवश्यकताओं के लिए, जिनमें दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य है, अन्योन्याश्रित रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक गांव का सबसे पहला काम होगा खुद अपना अनाज पैदा करना तथा अपने कपड़े के लिए कपास पैदा करना। उसमें गोचर-भूमि होगी तथा प्रौढ़ों और बच्चों के लिए मनोरंजन के साधन तथा खेल-कूद का मैदान होगा।... गांव में नाटक-घर, पाठशाला और सार्वजनिक भवन की व्यवस्था होगी।... बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा होने तक शिक्षा अनिवार्य होगी। जहां तक संभव हो, प्रत्येक प्रवृति सहकारिता के आधार पर चलाई जायगी।" गांधीजी की यह भी कल्पना थी कि प्रत्येक गांव के घर-घर में बिजली पहुंच जाय।

गांधीजी ने एक बार कहा था—"मैं ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकता

जब कोई भी मनुष्य दूसरे से अधिक धनवान नहीं होगा। सर्वाधिक पूर्णता प्राप्त संसार में भी हम असमानता से नहीं बच सकेंगे, परंतु हम लड़ाई-झगड़े और कटुता से बच सकते हैं और बचना आवश्यक भी है। आज भी धनवानों तथा गरीबों के पूर्ण मैत्री के साथ रहने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे उदाहरणों को बढ़ाना चाहिए।"

गांधीजी यह काम 'अमानतदारी' के द्वारा कराना चाहते थे।

२८ जुलाई १९४० को गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा था—"गरीबों का शोषण कुछ लखपतियों को नष्ट करके नहीं मिटाया जा सकता, बल्कि गरीबों की अज्ञानता को दूर करके और उन्हें शोषणकर्ताओं के साथ असहयोग करना सिखाकर मिटाया जा सकता है। इससे शोषणकर्ताओं का हृदय भी बदल जायगा।"

परंतु समय बीतने पर भी तथा गांधीजी के तमाम प्रबोधनों से भी कोई अमानतदार पैदा नहीं हुए। अपनी मृत्यु से पहले गांधीजी को किसी जमींदार अथवा मिल मालिक द्वारा स्वेच्छापूर्वक त्याग का समाचार नहीं मिला।

अतः धीरे-धीरे गांधीजी के आर्थिक विचार बदलने लगे। वह वर्ग-सहयोग का तो समर्थन करते रहे, परंतु गरीबी मिटाने के नये उपाय खोजने लगे। आर्थिक मामलों में वह राज्य की साझीदारी के हामी बन गये। वह कहने लगे कि समानीकरण की प्रक्रिया कानून की सहायता से होनी चाहिए।

१९४१ में तथा दुबारा १९४५ में गांधीजी ने भारतीय पूंजीपतियों को चेतावनी दी—"अहिंसक पद्धति की सरकार स्पष्ट रूप से असंभव है जबतक कि धनवानों तथा करोड़ों भूखे लोगों के बीच की चौड़ी खाई बनी रहती है। ... यदि संपत्ति तथा संपत्तिजनित अधिकार स्वेच्छापूर्वक नहीं त्यागे गये तथा इन्हें सबके समान हित में नहीं बांटा गया, तो एक दिन खूनी क्रांति अवश्यंभावी है।"

१९४२ में मैंने गांधीजी से पूछा—"स्वतंत्र भारत में क्या होगा? किसान-वर्ग की अवस्था को उन्नत बनाने के लिए आपका क्या कार्यक्रम है?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"किसान लोग भूमि छीन लेंगे। हमें उनसे कहना नहीं पड़ेगा कि भूमि छीन लो। वे अपने-आप छीन लेंगे।"

"क्या जमींदारों को मुआवजा दिया जायगा?" मैंने पूछा।

"नहीं," गांधीजी ने कहा—"आर्थिक दृष्टि से यह संभव नहीं है।"

एक भेंट करनेवाले ने गांधीजी से कहा—"कपड़े की मिलों की संख्या बढ़ रही है।"

"यह दुर्भाग्य है," उन्होंने कहा—"अच्छा होगा कि किसानों के, जिनके पास कम काम रहता है, करोड़ों घरों में कपड़ा तैयार हो।"

भौतिक आवश्यकताओं की तथा उन्हें पूरा करनेवाली वस्तुओं की वृद्धि को गांधीजी सुख अथवा दैवत्व का राजमार्ग नहीं मानते थे। उनका कहना था—"सच्चा अर्थशास्त्र वही है, जो सामाजिक न्याय तथा नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करता है। आधुनिक परिभाषा में व्यक्तित्व खोकर मशीन का पुर्जा मात्र बन जाना मनुष्य की प्रतिष्ठा को गिराना है।"

गांधीजी ने लिखा था—"व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बिना समाज का निर्माण करना संभव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सींग या पूंछ नहीं उगा सकता, उसी प्रकार यदि उसमें स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं है, तो वह मनुष्य के रूप में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। अतः लोकतंत्र वह अवस्था नहीं है, जिसमें लोग भेड़ों की तरह बर्ताव करें।"

गांधीजी इस धारणा से सहमत नहीं थे कि लोकतंत्र का अर्थ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करके आर्थिक स्वतंत्रता है, अथवा बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनैतिक स्वतंत्रता है।

गांधीजी के व्यक्तिवाद का अर्थ था बाह्य परिस्थितियों से अधिकाधिक स्वतंत्रता तथा आंतरिक गुणों का विकास।

१९४२ में, जब मैं एक सप्ताह गांधीजी का मेहमान रहा, मैंने उनकी कुटिया की दीवार पर केवल एक सजावट देखी : ईसा मसीह की एक सादा तसवीर, जिस पर लिखा था—"यह हमारी शांति है।" मैंने गांधीजी से इसके बारे में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—"मैं ईसाई हूं। ईसाई, हिंदू, मुसलमान और यहूदी।"

यद्यपि गांधीजी एक हिंदू सुधारक थे और हिंदू धर्म पर बाह्य प्रभावों का स्वागत करते थे, परंतु हिंदू रिवाजों तथा विश्वासों को छोड़ना उन्हें पसंद नहीं था। १९२७ में देवदास का राजगोपालाचारी की पुत्री लक्ष्मी से प्रेम हो गया और उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। परंतु राजगोपालाचारी ब्राह्मण थे और गांधीजी वैश्य थे, और विभिन्न जातियों के बीच विवाह-संबंध नहीं होता। युवक-युवतियों का अपने साथी पसंद करना भी ठीक नहीं था—विवाह-संबंध तो माता-पिता ठीक करते हैं। परंतु देवदास और लक्ष्मी अड़े हुए थे और अंत में दोनों के पिताओं ने इस शर्त पर विवाह की स्वीकृति देना मंजूर किया कि पांच वर्ष

अलग रहने के बाद भी दोनों विवाह की इच्छा प्रकट करें। इस प्रकार देवदास तथा लक्ष्मी ने पांच वर्ष तक दर्दभरी प्रतीक्षा की और १६ जून १९३३ को पूना में दोनों के प्रसन्न-पिताओं की उपस्थिति में ठाठ-बाट के साथ विवाह हुआ।

गांधीजी में कट्टर रूढ़िवादी तथा पूर्ण सुधारवादी मूर्त्ति-भंजक का एक बड़ा लुभावना मिश्रण था। लगता तो यह था कि अस्पृश्यता-उन्मूलन का स्वाभाविक परिणाम जाति-भेद मिट जाना था, क्योंकि जब लोग अछूतों से मिलने-जुलने लगें, तो ऊंची जातियों के बीच की दीवार ढह जानी चाहिए। परंतु कई वर्षों तक गांधीजी जाति-बंधनों का समर्थन करते रहे।

बाद में इन्हीं गांधीजी ने कहा—"अंतर्जातीय सहभोजों तथा अंतर्जातीय विवाहों पर बंधन हिंदू धर्म का अंग नहीं है। आज ये दोनों प्रतिबंध हिंदू समाज को कमजोर बना रहे हैं।"

परंतु यह भी गांधीजी का अंतिम मत नहीं था। कट्टर परंपराओं से नाता तोड़ने के बाद वह इनसे अधिकाधिक दूर हटते गये और ५ जनवरी १९४६ के 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' में उन्होंने घोषणा की—"विवाह के इच्छुक सब लड़के तथा लड़कियों से मेरा कहना है कि सेवाग्राम में उनका विवाह संपन्न नहीं हो सकता जबतक कि उनमें से एक हरिजन न हो।"

वह विभिन्न धर्मावलंबियों में परस्पर विवाह-संबंध के विरोधी थे, परंतु बाद में इसके भी पक्ष में हो गये।

बाद के वर्षों में ब्रह्मचर्य पर भी गांधीजी के विचार बदल गये। १९३५ में आचार्य कृपलानी एक बंगाली लड़की से प्रेम करने लगे और उससे विवाह करना चाहा। गांधीजी ने इस सुचेता को बुलाया और समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—"वह विवाह से नष्ट हो जायगा। सामाजिक समस्याओं पर से उसका ध्यान हट जायगा।" गांधीजी ने सुचेता को सलाह दी कि किसी दूसरे से विवाह कर ले।

एक वर्ष बाद गांधीजी ने सुचेता को फिर बुलाया और विवाह की स्वीकृति दे दी। "मैं तुम दोनों के लिए प्रार्थना करूंगा," उन्होंने कहा।

बुराइयों के विरुद्ध लड़नेवाले के नाते गांधीजी को अपने विचारों में दृढ़ता रखनी पड़ती थी। सत्य भक्त होने के नाते उन्हें अपने विचारों को बदलने की क्षमता रखना भी आवश्यक था। कभी-कभी वह अपने मत का इतनी दृढ़ता के साथ समर्थन करते थे कि वह अच्छा नहीं लगता था, परंतु आवश्यकता पड़ने

पर वह अपनी स्थिति को इस कदर बदल देते थे कि उनके अनुयायी असमंजस में पड़ जाते थे। यद्यपि आमतौर पर वह अपनी स्थिरता सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे, परंतु अपनी अस्थिरताओं को भी स्वीकार करते थे। वह चट्टान की तरह अटल भी हो सकते थे और नरमी के साथ झुकनेवाले भी। किसी समय वह कांग्रेस को अपने आदेशों पर चलाते थे, तो कभी उसकी किस्मत पर और उसकी मूर्खताओं पर छोड़ देते थे। उनके हाथ में जबरदस्त शक्ति थी, परंतु यह अक्सर काम में नहीं आती थी। अत्यंत निर्णायक मुद्दों में वह अपने विरोधियों के आगे भी झुक जाते थे, हालांकि वह उन्हें अपनी एक अंगुली के इशारे से खत्म कर सकते थे। उनमें अधिनायक की महान शक्ति थी और लोकतंत्री का मानस था। अधिकार से उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी, संतुष्टि चाहनेवाला विकृत मानस उनके पास नहीं था। परिणामस्वरूप वह विश्रांति अनुभव करनेवाले व्यक्ति थे। सर्वज्ञता, अचूकपन, सर्वशक्तिमता तथा प्रतिष्ठा की छाप डालने की समस्या उन्हें कभी परेशान नहीं करती थी।

प्रत्येक नेता के सरंजाम में एक दीवार भी शामिल रहा करती हैं। यह दीवार ऊंची, ईंटों की बनी हुई और पहरेदारों की पलटन हो सकती है, या वह प्रश्न का उत्तर न देने तथा गूढ़ मुसकराहट के रूप में हो सकती है। इसका उद्देश्य होता है दूरी तथा भय के द्वारा श्रद्धा उत्पन्न कराना और दुर्बलताओं तथा भेदों पर पर्दा डालना। गांधीजी के चारों ओर ऐसी कोई दीवार नहीं थी। एक बार उन्होंने कहा था—"मैं बिना किसी संकोच के कहता हूं कि मैंने अपने सारे जीवन में कुटिलता का सहारा कभी नहीं लिया।" उनका मानस तथा उनके भावावेग उनके शरीर से भी अधिक अनावृत थे।

गांधीजी एक शाश्वत उपदेष्टा थे। इसलिए उन्होंने अपने-आपको ऐसा बना लिया था कि सब कोई उनके पास पहुंच सकते थे। उनका यह गुण केवल पूर्ण ही नहीं था, क्रियात्मक भी था।

अगस्त १९४७ में गांधीजी कलकत्ता में भारतीय इतिहास के सबसे घिनौने संकट का सामना कर रहे थे। शहर की सड़कों पर हिंदू और मुसलमानों का खून बह रहा था। एक दिन तड़के अमिय चक्रवर्ती उनसे मिलने आये। अमिय रवींद्र ठाकुर के साहित्य-मंत्री थे। उनका एक प्यारा भाई बीमारी से हाल ही में मर गया था और सांत्वना पाने और अपने दुख को गांधीजी के साथ बंटाने के लिए वह उनसे मिलना चाहते थे। वह गांधीजी के कमरे में एक कोने में दीवार के

सहारे खड़े हो गये। गांधीजी लिख रहे थे। जब उन्होंने अपना सिर उठाया, तो अमिय आगे बढ़े और अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनाया। गांधीजी ने मैत्री-भरी बात कही और शाम की प्रार्थना सभा में बुलाया। जब अमिय शाम को आये, तो गांधीजी ने कागज का एक पुर्जा उन्हें देते हुए कहा—"यह सीधा हृदय में से निकला है, इसलिए इसका मूल्य है।" पुर्जे पर लिखा था :

"प्रिय अमिय,

"तुम्हारी जो हानि हुई है, उसका मुझे खेद है, पर वास्तव में वह हानि नहीं है। 'मृत्यु तो निद्रा और विस्मृति है।' यह एक ऐसी मधुर निद्रा है कि उससे यह देह फिर कभी नहीं उठती और स्मृतियों का मृत-भार दूर हो जाता है। जहां तक मैं जानता हूं, जैसे हम आज मिलते हैं, वैसी भेंट इस दुनिया से परे नहीं होती। जब अकेली-अकेली बूंदें मिलती हैं तो उन्हें सागर का गौरव प्राप्त होता हैं, जिसका कि वे एक अंग होती हैं। अकेली तो वे इस आशा से नष्ट हो जाती हैं कि पुनः सागर से मिलेंगी। मुझे पता नहीं है कि मैं अपनी बात इतने स्पष्ट रूप से कह सका हूं कि तुम्हें सांत्वना मिले। सप्रेम

बापू"

लोगों के लिए यही बात बड़ी सांत्वना की थी कि उन्होंने उनकी परवाह की। सारे राष्ट्र के लिए चिंताओं के बीच वह छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी ध्यान रखते थे। उनका विश्वास था कि अगर राजनीति मानव-प्राणियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं है, तो उसका मूल्य शून्य के समान है। गांधीजी का उन्मुक्त अस्तित्व मानव-जाति की भलाई पर केंद्रित था। ग्रामीण खुराक में हरी साग-सब्जियां हों, इस बात की चिंता, शोक-संतप्त संबंधी के वेदना भरे हृदय के लिए परेशानी, किसी लड़की के लिए अपने पति का चुनाव, बीमार किसान के लिए मिट्टी की पट्टी, एक ग्रंथकार के हिज्जे, ऐसी छोटी-छोटी बातों से कोई भी ऊपर उठ नहीं पाता। इन्हींसे जीवन का निर्माण होता है। वादों और धार्मिक सिद्धांतों की पतली हवा में कोई नहीं रह सकता।

भारत के तथा बाहर के हजारों व्यक्तियों के साथ गांधीजी का पत्र-व्यवहार था। अधिकतर तो एक पत्र चिर व्यक्तिगत संबंध का बीज बन जाता था। प्रारंभ में लोग उनसे व्यापक राजनैतिक अथवा धार्मिक मामलों में सलाह लेते थे, परंतु बाद में निजी मामलों में भी उनकी सलाह मांगने लगते थे। वह सबके लिए मातृ-समान पिता थे।

बहुत वर्षों से गांधीजी की दैनिक औसत डाक सौ पत्रों की होती थी। इनमें से वह लगभग दस पत्रों के उत्तर तो खुद अपने हाथ से लिखते थे, कुछ के उत्तर लिखाते थे और कुछ के उत्तरों के बारे में अपने सचिवों को हिदायतें दे देते थे। ऐसा कोई भी पत्र नहीं रहता था, जिसका उत्तर न दिया जाता हो।

दिन के बचे हुए भाग में वह आगंतुकों से मिलते थे। उनसे मुलाकात तय करना मुश्किल नहीं था। दिसंबर १९३५ में श्रीमती मारगरेट सैंगर, गर्भ-निरोध की समर्थक, उनसे मिलने आईं; जनवरी १९३६ में जापानी लेखक योन नागूची आये; जनवरी १९३८ में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ लार्ड लोथियन तीन दिन सेवाग्राम में ठहरे। महात्माजी के इतर-भारतीय मेहमानों की सूची एक अंतर्राष्ट्रीय परिचय-ग्रंथ के समान थी। विदेशी लोग समझते थे कि गांधीजी से मिले बिना उनकी भारत-यात्रा अपूर्ण थी।

उनका खयाल ठीक था। गांधीजी मूर्त्तिमान भारत थे। वह अपने को हरिजन, मुसलमान, ईसाई, हिंदू, किसान, बुनकर, कहते थे। वह भारत के साथ एकाकार हो गये थे। जनता और अलग-अलग व्यक्तियों से घुल-मिल जाने का उनमें बड़ा गुण था। वह भारत-निवासियों को मुक्त कराकर देश को स्थायी रूप से स्वतंत्र करना चाहते थे। यह इंग्लैंड से राजनैतिक मुक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल था। ऐसा कैसे हो? उन्होंने सन १९४५ में लिखा—"मैं सामाजिक क्रांति का कोई भी राजमार्ग नहीं बता सकता, सिवा इसके कि हम अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में उसका समावेश करें।" इसलिए गांधीजी की युद्धभूमि मानव-हृदय थी। वहीं उन्होंने अपना घर बनाया। औरों की अपेक्षा वह इस बात को कहीं अच्छी तरह से जानते थे कि इतनी कम लड़ाई लड़ी और जीती गई है। उनका कहना था कि जबतक आदमी के दैनिक व्यवहार में सामाजिक क्रांति नहीं होगी, तबतक हम देश को उस समय की अपेक्षा अधिक सुखी नहीं बना सकते जबकि हम पैदा हुए थे। सामाजिक क्रांति नये मानव को जन्म नहीं दे सकती। नये प्रकार का मानव ही सामाजिक-क्रांति को जन्म देता है।

: १८ :

महायुद्ध का प्रारंभ

जवाहरलाल नेहरू १९३६ और १९३७ के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष थे। यह एक असाधारण सम्मान तथा भारी उत्तरदायित्व भी था। परंतु उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि गांधीजी कांग्रेस के 'स्थायी महा-अध्यक्ष' थे। कांग्रेस गांधीजी की आज्ञा पर चलती थी। राजनीति के भीतर की बात हो या राजनीति से बाहर की, जनता तथा अधिकांश कांग्रेसी नेता उनकी मुट्ठी में होने के कारण, वह यदि चाहते, तो कांग्रेस से अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते थे और उसके निर्णयों को रद्द कर सकते थे।

गांधीजी की रजामंदी मिलने पर ही कांग्रेस ने नये ब्रिटिश संविधान के अधीन १९३७ के पूर्व भाग में होनेवाले प्रांतीय तथा केंद्रीय विधानमंडलों के चुनावों में भाग लिया। १ मई १९३७ के 'हरिजन' में गांधीजी ने स्पष्ट किया कि विधानमंडलों का बहिष्कार सत्य और अहिंसा की तरह कोई शाश्वत सिद्धांत नहीं है।

क्या कांग्रेस उन प्रांतों में पद-ग्रहण करे, जिनमें उसे बहुमत प्राप्त हुआ है? गांधीजी की सलाह पर मार्च १९३७ में कांग्रेस ने इसके पक्ष में फैसला किया, लेकिन इस शर्त के साथ, कि प्रांतों के गवर्नर हस्तक्षेप नहीं करेंगे और इस आशा से, कि पद-ग्रहण का उपयोग देश को स्वाधीनता के लिए तैयार करने में किया जायगा।

कांग्रेस की कुल सदस्य-संख्या, जो १९३८ के प्रारंभ में ३१,०२,११३ थी, १९३९ के प्रारंभ में बढ़कर ४४,७८,७२० हो गई। परंतु गांधीजी ने, जो केवल संख्या से प्रभावित होनेवाले नहीं थे, कांग्रेस को चेतावनी दी कि वह अधिकार तथा पद-लोलुपता से भ्रष्ट न हो जाय। उन्हें पतन के लक्षण दिखाई देने लगे थे और उन्होंने स्वीकार किया कि वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन की जिम्मेदारी नहीं ले सकते, क्योंकि यद्यपि जनता में काफी अहिंसा है, तथापि जो लोग जनता को संगठित करनेवाले हैं, उनमें काफी अहिंसा नहीं है।

करोड़ों लोग गांधीजी की आज्ञा मानते थे, ढेरों उनकी पूजा करते थे, भीड़-की-भीड़ अपने को उनका अनुयायी गिनती थी, परंतु उनके समान आचरण करनेवाले मुट्ठी-भर थे। गांधीजी इस बात को जानते थे। परंतु यह जानकारी न तो उनकी ज्वालामुखी जैसी शक्ति को कम करती थी, न उनके लोहे-जैसे इरादे को

बदलती थी। इसके विपरीत, १९३० के बाद के वर्षों में जब वह चीन, अबीसीनिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और सबसे ऊपर जर्मनी पर अंधकार के बादल घिरते हुए देख रहे थे, तो शुद्ध-शांतिवाद के लिए उनका जोश बढ़ रहा था। ६ फरवरी १९३९ को उन्होंने कहा था—"दुर्गम अंधकार में मेरा विश्वास अधिक-से-अधिक उज्ज्वल होता है।" उन्हें द्वितीय महायुद्ध नजदीक आता दिखाई दे रहा था।

गांधीजी का शांतिवाद उनके आंतरिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

एक बार गांधीजी जब जेल में थे, उनके एक साथी कैदी को बिच्छू ने काट लिया। गांधीजी ने उसके विष को चूस लिया। कुष्ठ-पीड़ित परचुरे शास्त्री ने सेवाग्राम-आश्रम में आना चाहा, कुछ आश्रम-वासियों ने आपत्ति की, उन्हें छूत लगने का डर था। गांधीजी ने न केवल उन्हें आश्रम में भरती किया, बल्कि उनकी मालिश भी की।

दूसरों को अपना मतानुयायी बनाने की उन्हें तनिक भी आशा न थी। परंतु जहां पहले वह विदेशियों द्वारा कोंचे जाने पर भी टस-से-मस नहीं हुए थे और यह दलील देते थे कि भारत में हिंसा के होते हुए वह पश्चिम को अहिंसक नहीं बना सकते, वहां १९३५ में उन्होंने अबीसीनियावासियों को युद्ध न करने की सलाह दी।

गांधीजी ने कहा—"यदि अबीसीनियावासी बलवान की अहिंसा का रुख अपना लेते, अर्थात ऐसी अहिंसा का पालन करते, जो टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, पर झुकती नहीं है, तो मुसोलिनी को अबीसीनिया में कोई दिलचस्पी न रहती।"

चेकोस्लोवाकिया की तथा जर्मनी के यहूदियों की दुखद घटना ने उनके हृदय को और भी गहरा स्पर्श किया।

'हरिजन' के एक लेख में गांधीजी ने चेकों को सलाह दी—"हिटलर की मर्जी के मुताबिक चलने से इन्कार कर दो और इस प्रयत्न में बिना हथियार उठाये मर-खप जाओ। ऐसा करने में यद्यपि शरीर जाता है, परंतु अपनी आत्मा, अर्थात अपनी इज्जत बच जाती है।"

दिसंबर १९३८ में अंतर्राष्ट्रीय मिशनरी सम्मेलन के कुछ प्रमुख ईसाई पादरी सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने आये। ये लोग चेकों के लिए गांधीजी के बताये हुए नुस्खे पर बहस करने लगे। एक पादरी ने कहा—"आप हिटलर और मुसोलिनी को नहीं पहचानते हैं। इनके दिलों में किसी तरह की नैतिक प्रतिक्रिया नहीं हो

सकती, इनमें आत्मा नहीं है और जगत के मत का इन पर लेशमात्र भी असर नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि चेक लोग आपकी सलाह मानकर अहिंसा से इनका मुकाबला करें, तो क्या यह इन अधिनायकों के हाथ में खेलना नहीं होगा ?"

गांधीजी ने आपत्ति की—"आपकी दलील पहले ही से यह मानकर चलती है कि मुसोलिनी और हिटलर का उद्धार असंभव है।"

११ नवंबर १९३८ के 'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा था—"मेरी सारी सहानुभूति यहूदियों के साथ है। ये लोग ईसाईयत के अछूत रहे हैं। ...जर्मनी द्वारा यहूदियों पर अत्याचार इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखता। ...यदि मानवता के नाम पर तथा मानवता के हित में कोई भी न्यायोचित युद्ध हो सकता, तो एक संपूर्ण जाति पर निरंकुश अत्याचार रोकने के लिए जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई पूरी तरह न्यायोचित होती। परंतु मैं किसी तरह के युद्ध में विश्वास नहीं करता।... मुझे यकीन है कि यदि यहूदियों में कोई हिम्मत और सूझ-बूझवाला पैदा हो जाय और अहिंसात्मक कार्रवाई में उनका नेतृत्व करे, तो निराशा का अंधेरा पल भर में आशा के प्रकाश में बदल सकता है। ...इससे जर्मन-यहूदी इतर-जर्मनों पर एक चिरस्थायी विजय प्राप्त करेंगे, इस अर्थ में कि वे इनके हृदयों में मानव-प्रतिष्ठा का मूल्य स्थापित कर सकेंगे।"

इन शब्दों के लिए नात्सी अखबारों ने गांधीजी पर भीषण बाण बरसाये। भारत के विरुद्ध उचित कार्रवाई की धमकियां भी दी गईं। परंतु गांधीजी ने उत्तर दिया—"यदि अपने देश को, या अपने-आपको या भारत-जर्मन संबंधों को नुकसान पहुंचने के डर से मैं वह सलाह देने में संकोच करूं, जिसे मैं अपने हृदय के अंतस्तल से सौ फीसदी ठीक समझता हूं, तो मुझे अपने-आपको कायरों की पंक्ति में रखना चाहिए।"

१९४६ में हिटलर की मृत्यु के बाद मैंने गांधीजी से इस विषय पर बात की। गांधीजी ने कहा—"हिटलर ने पचास लाख यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। हमारे समय का यह सबसे बड़ा अपराध है। परंतु यहूदियों को चाहिए था कि कसाई के छुरे के आगे सिर झुका देते। उन्हें चट्टानों पर से समुद्र में कूद पड़ना चाहिए था। इससे संसार की तथा जर्मनी के लोगों की भावनाएं जागृत हो जातीं। ...हुआ यह कि उस तरह नहीं, तो दूसरी तरह लाखों यहूदी मारे गये।"

दिसंबर १९३८ में जापानी-संसद के एक सदस्य श्री ताका-ओका सेवाग्राम

आये। उन्होंने पूछा कि भारत और जापान के बीच एकता कैसे फलीभूत हो सकती है।

गांधीजी ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया—"यह संभव हो सकता है यदि जापान भारत पर अपनी लालचभरी निगाहें डालना बंद कर दे।"

२४ अगस्त को जिन दिन स्तालिन-हिटलर-करार पर हस्ताक्षर हुए, लंदन से एक महिला ने गांधीजी को तार दिया—"कृपया कदम उठाइये। संसार नेतृत्व की प्रतीक्षा में है।" युद्ध प्रारंभ होने में अभी एक सप्ताह की देर थी। दूसरी महिला ने इंग्लैंड से बेतार का संदेश भेजा—"अनुरोध है कि आप शासकों पर तथा सब देशों के निवासियों पर, बल में नहीं बल्कि युक्ति में अपनी अटल श्रद्धा का तुरंत इज़हार करें।" सेवाग्राम में इसी प्रकार के अनुरोधक संदेशों का ढेर लग गया।

अब समय निकल चुका था। १ सितंबर १९३९ को नात्सी सेना ने पोलैंड पर धावा बोल दिया।

रविवार, ३ सितंबर १९३९, सुबह ११ बजे। इंग्लैंड के गिरजों में भीड़ जमा थी। ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उस दिन का तीसरा पहर मैंने पेरिस के बाहर देहात में बिताया। शाम को ५ बजे एक अकेला वायुयान ऊपर से निकल गया। रेडियो ने घोषणा की कि फ्रांस युद्ध में शामिल हो गया है। हम लोग शहर को वापस चले। छोटे-छोटे कसबों की गलियों में स्त्रियां खड़ी-खड़ी विषाद-भरी निगाहों से शून्य की ओर—उत्साह-रहित भविष्य की ओर—ताक रही थीं। कुछ नाखून चबा रही थीं। सेना द्वारा सैनिक कार्यों के हेतु लिये गये भारी, सुपोषित, बलिष्ठ कृषकोपयोगी घोड़ों की लंबी कतार के कारण हमारी मोटरगाड़ी को रुकना पड़ा। एक किसान ने अपने घोड़े को अपनी बांह में लपेट लिया, अपना गाल उसके मुंह पर लगा दिया और उसके कान में कुछ कहने लगा। घोड़े ने अपनी गर्दन ऊपर-नीचे हिलाई। दोनों एक-दूसरे से बिदा ले रहे थे। १९४५ में इस तरह की विदाइयां समाप्त होने से पहले संसार के सब भागों में तीस लाख से ऊपर व्यक्ति जीवन से विदाई ले चुके थे। तीस लाख से ऊपर नर, नारियां और बच्चे मर गये, दस करोड़ से ऊपर घायल, चुटैल और अशक्त हो गये, लाखों घर तहस-नहस हो गये, दो शहरों पर परमाणु-बम गिरे, आशाएं नष्ट हो गईं, आदर्श खट्टे हो गये, नैतिक मान संदिग्ध हो गये।

"हमारे पास वैज्ञानिक तो बहुत हैं, पर ईश्वर भक्त बहुत कम हैं,"

संयुक्त राज्य सेना के प्रधान अधिकारी जनरल ओमर एन० ब्रैडले ने १० नवंबर १९४८ को बोस्टन में कहा था—"हमने परमाणु के रहस्य को पकड़ लिया है और गिरि-प्रवचन[1] को त्याग दिया है। ...संसार ने बिना बुद्धि की चमक और बिना विवेक की सामर्थ्य प्राप्त की है। हमारा यह संसार पारमाणविक-भीमों तथा नैतिक-बौनों का संसार है। हम शांति के बारे में इतना नहीं जानते, जितना युद्ध के बारे में, जीने के बारे में उतना नहीं जानते, जितना मारने के बारे में।"

गांधीजी ने परमाणु को त्याग दिया और गिरि-प्रवचन को ग्रहण किया। वह एक परमाणविक-बौने तथा नैतिक-भीम थे। मारने के बारे में वह कुछ नहीं जानते थे और बीसवीं सदी में जीने के बारे में बहुत-कुछ जानते थे।

गांधीजी की विचारधारा को केवल वे ही पूरी तरह छोड़ सकते हैं, जिनके हृदयों में कोई शंकाएं नहीं हैं।

: १९ :

चर्चिल बनाम गांधी

जिस दिन द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ, उसी दिन इंग्लैंड ने बिना भारतवासियों की कोई सलाह लिये घोषणा करके भारत को युद्ध में शामिल कर दिया। विदेशी नियंत्रण के इस अतिरिक्त प्रमाण ने भारत में रोष उत्पन्न कर दिया। परंतु इस पर भी दूसरे दिन शिमला से वाइसराय लार्ड लिनलिथगो का तार द्वारा बुलावा आने पर गांधीजी पहली गाड़ी से शिमला के लिए रवाना हो गये। ज्योंही महात्माजी गाड़ी की ओर चले, स्टेशन पर खड़ी भीड़ ने नारे लगाये—"हम कोई समझौता नहीं चाहते!" उस दिन गांधीजी का मौन-दिवस था, इसलिए वह केवल मुसकरा दिये और रवाना हो गये।

वाइसराय तथा महात्माजी ने आनेवाले युद्ध के स्वरूप के बारे में चर्चा की और गांधीजी के शब्दों में "जब मैं वाइसराय के सामने पार्लमेंट-भवन तथा वेस्ट-मिंस्टर गिरजे की और इनके संभावित विनाश की तसवीर रख रहा था, मेरा धैर्य छूट गया। मैं अधीर हो गया। अपने हृदय के भीतर मैं चुपचाप ईश्वर से बराबर झगड़ रहा हूं कि वह ऐसी बातें क्यों होने देता है।"

---

१. ईसा का प्रसिद्ध उपदेश, जो बाइबिल में दिया हुआ है।

गांधीजी का ईश्वर से रोज झगड़ा होता था; अहिंसा असफल हो गई, ईश्वर ने कुछ नहीं किया। परंतु हर झगड़े के बाद गांधीजी इस निश्चय पर पहुंचते थे कि "न तो ईश्वर शक्तिहीन है और न अहिंसा। शक्तिहीनता तो मनुष्यों में है। श्रद्धा न खोकर मुझे प्रयत्न करते रहना चाहिए।"

आलोचकों का कहना था कि शिमला की मुलाकात में गांधीजी ने वाइसराय से "भावावेग की निरर्थक बातें कीं।" गांधीजी ने उत्तर दिया—"इंग्लैंड और फ्रांस के लिए मेरी सहानुभूति क्षणिक भावावेग का, या भोंड़ी भाषा में उन्माद का, परिणाम नहीं है।"

किंतु वह कर क्या सकते थे? ईश्वर से दैनिक बहस के अलावा वह कांग्रेस के साथ निरंतर दलीलों में फंस गये थे। गांधीजी के लिए, अहिंसा एक धार्मिक विश्वास था, कांग्रेस सदा से उसे एक नीति मानती थी।

महायुद्ध प्रारंभ होने के दूसरे दिन गांधीजी ने सार्वजनिक रूप से वचन दिया कि वह ब्रिटिश सरकार को उलझन में नहीं डालेंगे। इंग्लैंड तथा उसके मित्र-राष्ट्रों का वह नैतिक समर्थन भी करेंगे। इससे आगे वह नहीं जा सकते थे। वह युद्ध-संबंधी कार्रवाइयों में भाग नहीं ले सकते थे।

इसके विपरीत कांग्रेस युद्ध में सहायता देने को तैयार थी, यदि उसकी रखी हुई शर्तें मंजूर कर ली जायें।

कांग्रेस कार्य-समिति ने १४ सितंबर १९३९ को घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें पोलैंड पर फासिस्त आक्रमण की निंदा की गई और कहा गया कि "स्वतंत्र लोकतंत्री भारत आक्रमण की कार्रवाई के विरुद्ध तथा आर्थिक सहयोग के लिए अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों का खुशी से साथ देगा।..."

इस घोषणा-पत्र की रचना करनेवाली चार दिन की चर्चाओं में गांधीजी विशेष रूप से निमंत्रित थे। जब यह स्वीकृत हो गया, तो गांधीजी ने बताया कि इसका मसविदा जवाहरलाल नेहरू ने बनाया था। उन्होंने अपनी राय बतलाते हुए कहा—"मुझे यह देखकर दुख हुआ कि यह सोचनेवाला मैं अकेला ही था कि अंग्रेजों को जो कुछ भी सहायता दी जाय, वह बिना किसी शर्त के दी जाय।" गांधीजी को यह जैसे-का-तैसा प्रस्ताव पसंद नहीं आया कि भारत तभी लड़ेगा, जब तुम उसे स्वतंत्र कर दोगे। फिर भी उन्होंने देश से कहा कि इसे मान लिया जाय।

आलोचकों ने हल्ला मचाया कि गांधीजी ऐसा कैसे कर सकते हैं? जिस विचार का वह विरोध करते हैं, उसके समर्थन के लिए कैसे कह सकते हैं? गांधीजी ने

जवाब दिया—"यदि मैं इस कारण अपने अच्छे-से-अच्छे साथियों को छोड़ दूं कि अहिंसा के व्यापक प्रयोग में वह मेरे पीछे नहीं चल सकते, तो में अहिंसा का हित-साधन नहीं कर पाऊंगा।"

किसीने ताना दिया—"क्या आपने १६१८ से अबतक अपना इरादा बदल नहीं दिया ?"

प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"लिखते समय मैं यह कभी नहीं सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी प्रस्तुत प्रश्न के ऊपर अपने पिछले वक्तव्यों पर दृढ़ रहना मेरा लक्ष्य नहीं है। मेरा लक्ष्य है कि किसी प्रस्तुत क्षण में सत्य जिस रूप में मेरे सामने आता है, उस पर दृढ़ रहना। परिणामस्वरूप मैं एक-के-बाद-दूसरे सत्य पर बढ़ता गया हूं।"

गांधीजी अपने विचारों से टकरानेवाले घोषणा-पत्र की हिमायत से भी आगे बढ़ गये। २६ सितंबर को वाइसराय के साथ मुलाकात में वह इसके प्रवक्ता बनकर गये। १७ अक्तूबर को लार्ड लिनलिथगो ने उत्तर दिया—"इंग्लैंड अभी नहीं कह सकता कि वह किस उद्देश्य के लिए लड़ रहा है। स्वराज्य की ओर अधिक तेजी से बढ़ना भारत के लिए ठीक नहीं है। युद्ध के बाद औपनिबेशिक दर्जे की दिशा में परिवर्तन हो जायंगे।

पांच दिन बाद कार्य-समिति ने इंग्लैंड को सहायता देने के विरुद्ध निश्चय किया। उसने प्रांतों के कांग्रेसी-मंत्रिमंडलों को भी त्याग-पत्र देने का आदेश दिया। गांधीजी ने देखा कि कांग्रेस उनके निकट आती जा रही है।

समय भारत की स्वाधीनता के लिए कार्य कर रहा था। गांधीजी ने कहा था—"एक भी गोली चलाये बिना ही हम अपने लक्ष्य के निकट पहुंचते जा रहे हैं।"

फ्रांस ने हिटलर के आगे हथियार डाल दिये। भारत में आशा के स्थान पर घबराहट फैल गई। बैंकों पर दौड़ लग गई। गांधीजी ने कहा कि लोग गड़बड़ न फैलायें। धीरता के साथ उन्होंने भविष्यवाणी की—"इंग्लैंड मुश्किल से मरेगा और मरना भी पड़ा, तो बहादुरी के साथ मरेगा। हम शायद पराजय के समाचार सुनें, परंतु हिम्मत हारने के समाचार नहीं सुनेंगे।"

युद्ध-संकट पर पुनर्विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। २१ जून १६४० को उसने स्पष्ट बयान दिया कि अहिंसा के मामले में वह गांधीजी के साथ पूरी तरह नहीं जा सकती।

गांधीजी ने स्वीकार किया—"इस परिणाम पर मुझे खुशी भी है और विषाद

भी। खुशी इसलिए कि मैं इस विच्छेद का आघात सह सका हूं और मुझे अकेला खड़ा रहने की शक्ति मिली है। विषाद इसलिए कि इतने वर्षों तक जिन लोगों को साथ लेकर चलने का मुझे गौरव मिला था, उनका साथ लेकर चलने की सामर्थ्य अब मेरे शब्दों में नहीं प्रतीत होती है।"

वाइसराय ने २९ जून को फिर गांधीजी को मुलाकात के लिए बुलाया। लार्ड लिनलिथगो गांधीजी के अमिट प्रभाव को पहचानते थे। उन्होंने सूचना दी कि इंग्लैंड भारतवासियों को भारत के शासन में अधिक विस्तृत हिस्सा देने को तैयार है।

जुलाई के प्रारंभ में कार्य-समिति की बैठक इस प्रस्ताव को तौलने के लिए हुई। गांधीजी इसे बेकार समझते थे। उन्हें राजगोपालाचारी के विलक्षण विरोध का सामना करना पड़ा। राजगोपालाचारी ने वल्लभभाई पटेल को अपनी राय का बना लिया था। केवल सीमांत-गांधी गफ्फार खां गांधीजी का साथ दे रहे थे। राजाजी का प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

युद्ध के बीच विशुद्ध शांतिवाद की दूरदर्शिता को गांधीजी कांग्रेस के गले नहीं उतार पाये। सब मानते थे कि वह राजाजी के प्रस्ताव का अंत कर सकते थे। वास्तव में गांधीजी यदि जोर देकर कहते, तो राजाजी शायद अपना प्रस्ताव वापस ले लेते। परंतु यह जबरदस्ती मनवाना कहलाता और गांधीजी का व्यक्तिगत स्वतंत्रता में इतना अधिक विश्वास था कि वह अपनी सामर्थ्य का उपयोग करके लोगों को अपनी मर्जी के खिलाफ मत देने को या काम करने को मजबूर नहीं करना चाहते थे।

राजाजी का प्रस्ताव, गांधीजी के मतभेद के बावजूद, ७ जुलाई को स्वीकार कर लिया गया। इसमें घोषणा की गई कि यदि भारत को पूर्ण स्वाधीनता तथा केंद्रीय भारतीय शासन दे दिये जायं, तो "कांग्रेस देश की प्रतिरक्षा के कारगर संगठन के प्रयत्नों में अपनी पूरी ताकत लगा देगी।"

विन्स्टन चर्चिल इंग्लैंड के प्रधान मंत्री थे और देश को बहादुरी के साथ मुकाबले के लिए उत्प्रेरित कर रहे थे। पिछले वर्षों में उन्होंने भारत की स्वाधीनता के विरुद्ध अनेक वक्तव्य दिये थे। अब उनके हाथ में इसे रोकने की सामर्थ्य थी। तदनुसार ८ अगस्त को लिनलिथगो ने बयान दिया कि वह कुछ भारतवासियों को अपनी कार्यकारिणी कौंसिल में शामिल होने का निमंत्रण देंगे और एक युद्ध सलाहकार कौंसिल स्थापित करेंगे, जिसकी बैठकें नियमित रूप से हुआ करेंगी।

लिनलिथगो ने यह भी कहा कि ब्रिटिश सरकार अपनी मौजूदा जिम्मेदारियां ऐसी किसी भी भारतीय सरकार को सौंपने का विचार नहीं कर सकती, जिसके अधिकार को आबादी के बड़े तथा बलशाली तत्व मानने को तैयार नहीं हैं। इसका अर्थ यह था कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की मर्ज़ी के बिना कांग्रेस को भारत का शासन नहीं करने देगी।

कांग्रेस कार्य-समिति बेहद क्रोधित हुई और उसने ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाया कि उसने सहयोग के मित्रतापूर्ण तथा देश-भक्तिपूर्ण प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अल्पसंख्यकों के प्रश्न को भारत की प्रगति के मार्ग में दुर्गम रुकावट बना दिया।

चर्चिल की कृपा से कांग्रेस फिर गांधीजी के पास लौट आई।

गांधीजी ने वाइसराय से मिलने को इच्छा प्रकट की।

वाइसराय ने जबानी इन्कार किया, फिर पत्र द्वारा इसकी पुष्टि की।

इस तरह दुत्कारे जाने तथा युद्ध का और भारत की लाचारी का विरोध करने से व्यग्र होकर गांधीजी ने उपवास का इरादा किया। परंतु महादेव देसाई के अनुरोध पर इरादा बदल दिया और इसके बदले में सविनय-अवज्ञा का निश्चय किया। परंतु इस बार उन्होंने सामूहिक सत्याग्रह नहीं शुरू किया। उन्होंने सत्याग्रह का एक हल्का और सांकेतिक रूप अपनाया, जिससे युद्ध के प्रयत्नों में बाधा न पड़े। उन्होंने चुने हुए व्यक्तियों को आदेश दिया कि युद्ध-विरोधी प्रचार पर लगाये गये सरकारी प्रतिबंध को तोड़ें। सबसे पहले उन्होंने विनोबा भावे को चुना। विनोबा ने युद्ध-विरोधी प्रचार किया। इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन महीने की सजा दे दी गई।

बाद में नेहरू और पटेल चुने गये और उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया।

यह व्यक्तिगत सत्याग्रह १९४१ के अंत तक करीब एक साल चला। जनता में इससे उत्साह जाग्रत नहीं हुआ। लोग जेल जाने से ऊब गये थे।

दिसंबर १९४१ में ब्रिटिश सरकार ने कार्य-समिति के गिरफ्तार सदस्यों को छोड़ दिया। द्वितीय महायुद्ध में खतरनाक स्थिति पैदा हो गई थी।

७ दिसंबर को जापान ने पर्ल बंदरगाह पर धावा बोला। दूसरे दिन जापानी-सेना ने शांघाई और स्याम पर कब्जा कर लिया और ब्रिटिश-मलाया में जा उतरी। चौबीस घंटे बाद जापानी नौ-सेना ने इंग्लैंड के दो जंगी जहाज डुबा दिये और प्रशांत महासागर में इंग्लैंड की नौ-शक्ति को अपंग कर दिया।

युद्ध भारत के समीप आ रहा था। इस स्थिति में कांग्रेस में गांधीवादी अहिंसक असहयोगियों तथा राष्ट्रीय सरकार के बदले में युद्ध-प्रयत्नों को सहायता देने के इच्छुकों के बीच पुराना मतभेद बाहर आ गया। अतः गांधीजी ने एक बार फिर कांग्रेस के नेतृत्व से हाथ खींच लिया।

युद्ध के प्रति भारतीय जनता की उत्साहहीनता से अमरीका के लोग कुछ घबराये। चूंकि संयुक्त राज्य खुद इंग्लैंड का उपनिवेश रह चुका था, इसलिए प्रचार के कुहरे के बावजूद भी वह भारत की आकांक्षाओं को समझ रहा था। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने कर्नल लुई जॉन्सन को अपने व्यक्तिगत दूत के रूप से भारत भेजा। यह एक असाधारण बात थी और क्योंकि भारत प्रभुत्व-संपन्न देश नहीं था, इसलिए यह चीज ब्रिटिश सरकार को अमरीका की चिंता और भी अधिक महसूस करानेवाली थी। लंदन में संयुक्त राज्य के राजदूत जॉन जी० विनांट प्रधान मंत्री चर्चिल को सार्वजनिक रूप से यह बयान देने से नहीं रोक सके कि अटलांटिक-घोषणा का स्वराज्यवाला उपबंध भारत के लिए लागू नहीं था। ह्वाइट हाउस में आमने-सामने तथा अटलांटिक महासागर के दूसरे छोर से टेलीफोन पर, रूज़वेल्ट ने भारत के विषय में चर्चिल से चर्चाएं कीं और उनसे अनुरोध किया कि भारतवासियों के सामने कोई स्वीकार-योग्य प्रस्ताव रखें। चर्चिल ने इस अंकुशबाजी को बिल्कुल पसंद नहीं किया।

इंग्लैंड का मजदूर-दल युद्धकालीन संयुक्त मंत्रिमंडल में शामिल था। इसके अनेक सदस्य भारत की स्वतंत्रता के हामी थे। मंत्रिमंडल की मंत्रणाओं में मजदूर-दली मंत्रीगण इस रुख को व्यक्त करते थे।

सब ओर से दबाव पड़ने पर चर्चिल सर स्टैफर्ड क्रिप्स को एक प्रस्ताव का मसविदा लेकर दिल्ली भेजने के लिए राजी हो गये। परंतु जब क्रिप्स भारत के लिए रवाना हुए, तब युद्ध की संभावनाओं के बारे में चर्चिल को न तो निराशा थी और न पराजय की आशंका।

द्वितीय महायुद्ध शुरू होने पर सर स्टैफर्ड ने अपनी कमाईवाली वकालत छोड़ दी थी और १९३९ में सारे संसार की यात्रा यह पता लगाने के लिए की थी कि लोगों के क्या विचार हैं। वह भारत में भी अठारह दिन तक रहे थे तथा जिन्ना, लिनलिथगो, ठाकुर, अंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी से मिले थे।

२२ मार्च १९४२ को क्रिप्स दिल्ली आ पहुंचे और उसी दिन ब्रिटिश अधिकारियों के साथ परामर्श में लग गये। २५ मार्च को मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

क्रिप्स से मिलने गये। इसके साथ ही भारतीय प्रतिनिधियों से बातचीत शुरू हो गई।

गांधीजी सेवाग्राम में थे। उन्हें क्रिप्स का तार मिला, जिसमें नम्रतापूर्ण भाषा में उनसे दिल्ली आने के लिए कहा गया था। जून १९४२ में जब मैं सेवाग्राम में गांधीजी से मिला था, उन्होंने मुझे बताया—"मैं जाना नहीं चाहता था, परंतु इसलिए चला गया कि शायद इससे कुछ लाभ हो।"

२७ मार्च को २-१५ बजे गांधीजी क्रिप्स के यहां पहुंचे और ४-२५ तक उनके साथ रहे। सर स्टैफर्ड ने गांधीजी को ब्रिटिश सरकार का अभी तक अप्रकाशित मसविदा बतलाया। गांधीजी ने सेवाग्राम में मुझसे कहा था, मसविदे को पढ़ने के बाद मैंने क्रिप्स से कहा—"यदि आपके पास देने को यही है, तो आप आये ही क्यों ? यदि भारत के लिए आपका समूचा प्रस्ताव यही है, तो मैं आपको सलाह दूंगा कि अगले वायुयान से घर लौट जाइये।"

"मैं इस पर विचार करूंगा," क्रिप्स ने उत्तर दिया।

क्रिप्स गये नहीं। उन्होंने बातचीत चालू रखी। गांधीजी सेवाग्राम लौट गये। पहली बातचीत के बाद वह फिर क्रिप्स से नहीं मिले, न बात की।

मंत्रणाएं ९ अप्रैल तक चलती रहीं, जबकि कांग्रेस ने क्रिप्स के प्रस्ताव को अंतिम तौर पर ठुकरा दिया। क्रिप्स-मिशन असफल रहा।

सरकारी ब्रिटिश सूत्रों ने क्रिप्स-मिशन की असफलता का दोष गांधीजी के शांतिवाद को दिया। दूसरों ने क्रिप्स और चर्चिल का कसूर बतलाया। नेहरू ने कहा—"दिल्ली से चले जाने के बाद गांधीजी से किसी तरह की सलाह नहीं ली गई और यह कल्पना बिल्कुल गलत है कि क्रिप्स के प्रस्ताव को उनके दबाव के कारण ठुकराया गया।"

१९४६ में गांधीजी ने मुझसे कहा था—"अंग्रेजों का कहना है कि दिल्ली से जाने के बाद मैंने बातचीत पर असर डाला। परंतु यह झूठ है।"

मैंने उन्हें बताया—"अंग्रेजों ने मुझसे कहा है कि आपने सेवाग्राम से दिल्ली को फोन किया और कांग्रेस को हिदायत दी कि क्रिप्स के प्रस्ताव को ठुकरा दें। वे निश्चयपूर्वक कहते हैं कि उस बातचीत का उनके पास लिखित प्रमाण है।"

गांधीजी ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"यह सब झूठ का जाल है। यदि उनके पास टेलीफोन की बातचीत का लिखित प्रमाण है, तो पेश करें।"

१० मार्च को चर्चिल द्वारा क्रिप्स के भारत भेजे जाने की घोषणा से एक दिन

पूर्व रूज़वेल्ट ने चर्चिल को भारत के बारे में एक लंबा तार-संदेश भेजा। राष्ट्रपति ने एक काम-चलाऊ सरकार का सुझाव दिया जो पांच या छः वर्ष तक कार्य करे। साथ ही रूज़वेल्ट ने चर्चिल से यह भी कह दिया कि "भारत के मामले में मेरा कोई सरोकार नहीं है" और "ईश्वर के लिए मुझे इसमें मत डालो, हालांकि मैं सहायता अवश्य करना चाहता हूं।"

रॉबर्ट ई० शेरवुड, जिसने इस खरीते का जिक्र अपनी पुस्तक 'रूज़वेल्ट एंड हॉपकिंस' में किया है, लिखता है—"तार-संदेश के जिस भाग से चर्चिल सहमत हुए, वह शायद केवल यह था, जिसमें रूज़वेल्ट ने माना था कि 'मेरा सरोकार नहीं है।' हॉपकिंस ने बहुत दिन बाद बतलाया था कि उनके खयाल से सारे युद्ध के दौरान में राष्ट्रपति ने जो भी सुझाव प्रधान मंत्री को भेजे, उनमें से भारतीय समस्या के समाधान के बारे में प्राप्त सुझावों पर प्रधान मंत्री को जितना क्रोध आया, उतना अन्य किसी पर नहीं।"

१२ अप्रैल १९४२ को हैरी हॉपकिंस को, जो उस समय प्रधान-मंत्री के देहाती निवास-स्थान चेकर्स में थे, रूज़वेल्ट का तार मिला। उसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि क्रिप्स-वार्ता को भंग होने से रोकने का भरसक प्रयत्न करें। राष्ट्रपति ने चर्चिल को भी तार भेजा, जिसमें कहा गया था :

"मुझे खेद है कि आपके संदेश में व्यक्त किये गये आपके इस दृष्टि-बिंदु से मैं सहमत नहीं हो सकता कि अमरीका की जनता की राय में वार्ताएं व्यापक मोटी-मोटी बातों पर भंग हो गई हैं। यहां फैला हुआ विश्वास इसके बिल्कुल विपरीत है। लगभग सभी लोग महसूस करते हैं कि गतिरोध का कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्र को स्वशासन का अधिकार नहीं देना चाहती, हालांकि भारतवासी सैनिक तथा नौ-सैनिक प्रतिरक्षा का सामरिक नियंत्रण उपयुक्त ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में देने को तैयार हैं। अमरीका का जनमत यह समझने में असमर्थ है कि जब ब्रिटिश सरकार युद्ध के बाद भारत के अंगों को ब्रिटिश साम्राज्य से विलग होने की अनुमति देने को तैयार है, तो युद्ध के दौरान में वह उन्हें स्व-शासन जैसी चीज का उपभोग करने की अनुमति क्यों नहीं देना चाहती ?"

क्रिप्स व्यग्रता के साथ समझौते का प्रयत्न कर रहे थे। जब ब्रिटिश सरकार की घोषणा का मसविदा ठुकरा दिया गया, तो उन्होंने कांग्रेस के सामने नया प्रस्ताव रखा। इस नये प्रस्ताव से समझौता काफी निकट आ गया। परंतु हॉपकिंस के कथनानुसार "वाइसराय इस सारे मामले से झल्ला उठे।" उन्होंने

चर्चिल को तार दिया। चर्चिल ने क्रिप्स को आदेश दिया कि नया अनधिकृत प्रस्ताव वापस ले लें और इंग्लैंड वापस आ जायं।

हॉपकिंस के खयाल से "भारत ऐसा क्षेत्र था जहां रूज़वेल्ट तथा चर्चिल के विचार कभी नहीं मिल सकते थे।"

यह भी स्पष्ट था कि गांधीजी और चर्चिल के विचार भी कभी नहीं मिल सकते।

चर्चिल तथा गांधीजी एक बात में समान थे कि प्रत्येक ने अपना जीवन केवल एक-एक उद्देश्य के लिए अर्पण कर दिया था। महापुरुष सुंदर मूर्ति की तरह एक ही टुकड़े का बना हुआ होता है। चर्चिल को निमग्न करनेवाला हेतु था इंग्लैंड को पहले दर्जे की शक्ति बनाये रहना। वह अतीत से बंधे हुए थे। इंग्लैंड का अतीत वैभव चर्चिल का भगवान था। वह भारत को अपने देश की महानता के साथ संबद्ध मानते थे।

चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध ब्रिटेन की विरासत को कायम रखने के लिए लड़ा था। क्या वह एक अर्द्ध-नग्न फकीर को यह विरासत छीन लेने देते? अगर चर्चिल का बस चलता, तो गांधीजी वार्ता या मंत्रणा के लिए वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर कदम तक न रखने पाते।

चर्चिल नेपोलियन जैसे हैं, लेकिन कवि-हृदय। राजनैतिक सत्ता उनके लिए कविता है। गांधीजी संयमी संत थे, जिनके लिए राजनैतिक सत्ता त्याज्य वस्तु थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ चर्चिल अधिक अनुदार होते गये, गांधीजी अधिक क्रांतिकारी होते गये। चर्चिल सामाजिक परंपराओं से प्रेम करते थे। गांधीजी ने सामाजिक-भेद नष्ट कर दिये थे। चर्चिल हर श्रेणी के लोगों से मिलते थे, परंतु रहते थे अपनी ही श्रेणी में। गांधीजी हर एक के साथ रहते थे। गांधीजी के लिए नीचे-से-नीचा भारत-वासी हरिजन था। चर्चिल के लिए सारे भारतवासी एक सिंहासन के पाये थे। इंग्लैंड की स्वतंत्रता के लिए वह अपनी जान तक निछावर कर देते, परंतु भारत की स्वतंत्रता चाहनेवालों के वह विरोधी थे।

: २० :

गांधीजी के साथ एक सप्ताह

कितना खिन्न देश ! मई १९४२ में भारत के बारे में सबसे पहली छाप मेरे दिल पर यह पड़ी, और दो महीने के निवास से यह छाप और भी गहरी हो गई। धनवान भारतवासी खिन्न थे, गरीब भारतवासी खिन्न थे, और अंग्रेज खिन्न थे।

यह अनुभव करने के लिए कि भारत के लोगों में कैसी नर्क जैसी निर्धनता है, किसीको इस देश में अधिक दिन रहने की आवश्यकता नहीं होती। बंबई में डा० अंबेडकर के साथ जो अस्वास्थ्यकर झोंपड़ियां मैंने देखीं, ऐसे स्थान पर अमरीका तथा यूरोप के किसान अपने जानवरों को रखना भी बुरा समझेंगे। गांवों में दिखाई पड़नेवाली किसानों की वस्त्रहीनता के मुकाबले में गांधीजी के पास भी पूरे कपड़े थे। भारतवासियों की बहुत बड़ी संख्या हमेशा, वास्तव में हमेशा, भूखी रहती है।

ब्रिटिश आंकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष ढाई करोड़ भारतवासी मलेरिया के शिकार होते हैं और गिने-चुने लोगों को जरा-सी कुनैन मिल पाती है। हर साल पांच लाख भारतवासी क्षय से मर जाते हैं।

बीमारियों तथा मृत्युओं के बावजूद भारत की जनसंख्या प्रति वर्ष पचास लाख बढ़ जाती है। राष्ट्र के सामने सबसे बड़ी समस्या यही है। १९२१ में भारत की आबादी ३० करोड़ ८० लाख थी, १९३१ में ३३ करोड़ ८० लाख और १९४१ में ३८ करोड़ ८० लाख। इन्हीं बीस वर्षों में खेतिहर भूमि का क्षेत्रफल लगभग स्थिर रहा और उद्योगों में भी कोई उल्लेख योग्य बढ़ोतरी नहीं हुई। जितना निर्धन देश, उतनी ही अधिक जन्म-संख्या। जितनी अधिक जनसंख्या, उतना ही देश अधिक निर्धन।

भारत में रहनेवाले अंग्रेज अपनी कारगुजारियों पर जोर देते थे। किंतु वे विनाशकारी प्रभावों से भी इन्कार नहीं करते थे। वे इसके लिए हिंदू धर्म को तथा मुसलमानों के पिछड़ेपन को दोषी ठहराते थे। भारतवासी इंग्लैंड को दोष देते थे। यह ऐसा वातावरण था, जिसमें अंग्रेजों के लिए कार्य तथा जीवन उत्तरोत्तर असंतोषप्रद होते जा रहे थे।

जिन अंग्रेजों के परिवारों ने भारत में सौ वर्ष से अधिक तक अपना जीवन सफल बनाया था, वे जानते थे कि यहां उनका कुछ भविष्य नहीं है। भारत उन्हें

नहीं चाहता था और वे इसे अनुभव करते थे और उदास थे। वाइसराय के निजी सचिव सर गिल्बर्ट लेथवेट और प्रधान सेनापनि वेवेल के सहकारी मेजर जनरल मोल्सवर्थ पेट्रोल की बचत करने के लिए भारत की कड़ी धूप में साइकिलों पर दफ्तर जाते थे, हालांकि उनके पास मोटरें भी थीं और ड्राइवर भी।

अनेक अंग्रेज भले आदमी थे, परंतु भारत बुरे भारतवासियों का शासन अच्छा समझता था। भारत पर उनकी मर्जी के खिलाफ शासन करना अब 'दिल्लगी' नहीं था। अंग्रेज अधिकारी अब भारत से उतने ही ऊब गये थे, जितना भारत उनसे। गांधीजी की बीस वर्ष की अहिंसा ने साम्राज्य के भविष्य में उनका विश्वास नष्ट कर दिया था।

कम्युनिस्टों के अलावा भारत का कोई भी दल या जमात युद्ध का समर्थन नहीं कर रहा था। जून १९४१ में रूस पर हिटलर के धावे के बाद कम्युनिस्ट लोग ब्रिटेन के पक्ष में हो गये और भारत में साम्राज्यवादी अंग्रेज इनको सहायता देने लगे, परंतु यह अप्राकृतिक गठबंधन उन्हें पसंद नहीं था।

मैंने बंबई में नेहरू को एक लाख की भीड़ में भाषण देते सुना। बादामी चेहरों और सफेद कपड़ों के उस विशाल समुद्र में कम्युनिस्टों ने हल्ला मचानेवालों का एक द्वीप बना रखा था। उन्होंने एक स्वर से पुकारा—"यह जनता का युद्ध है।"

नेहरू ने चिल्लाकर कहा—"अगर तुम इसे जनता का युद्ध समझते हो, तो जाकर जनता से पूछो।" इस बात ने तथा जनता की विरोधी प्रतिक्रिया ने उनके हल्ले को शांत कर दिया। वे जानते थे कि नेहरू सच कह रहा है और अंग्रेज भी इसे जानते थे।

"मैं तलवार लेकर जापान से लडूंगा," नेहरू ने घोषणा की—"परंतु स्वतंत्र होकर ही मैं ऐसा कर सकता हूं।"

वाइसराय की कौंसिल के गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने मुझसे कहा था—"युद्ध समाप्त होने के दो वर्ष बाद हम यहां से चले जायंगे।" मैक्सवेल के अधीन पुलिस तथा आंतरिक व्यवस्था थी और भारतवासी उनसे बहुत चिढ़े हुए थे। परंतु वह किसी भ्रांति में नहीं थे, क्योंकि उनके लिए साम्राज्य दैनिक पिसाई था, जबकि चर्चिल के लिए वह एक रोमानी चीज था।

वाइसराय ने मुझसे कहा—"हम भारत में ठहरनेवाले नहीं हैं। अलबत्ता कांग्रेस इस पर विश्वास नहीं करती, परंतु हम यहां नहीं ठहरेंगे। हम अपने प्रस्थान की तैयारी कर रहे हैं।"

जब मैंने ये विचार भारतवासियों को बतलाये, तो उन्होंने इन पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने कटुता के साथ दलील दी कि चर्चिल तथा नई दिल्ली में और प्रांतों में अनेक छोटे चर्चिल या तो स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकायेंगे या देश का अंग-विच्छेद करके उसे भ्रष्ट कर देंगे।

स्वाधीनता निकट थी, परंतु वर्तमान इतना अंधकारमय था कि भविष्य किसी-को भी नहीं दिखाई देता था। भारत में इतिहास इतने लंबे समय से स्थिर था कि कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि वह कितनी तेजी से आगे बढ़नेवाला है। यह गतिहीनता भारतवासियों को रुष्ट कर रही थी, उनमें मायूसी की भावना पैदा हो रही थी।

भारत में तैनात एक अमरीकी सेनापति ने कहा था—"अंग्रेज लोग बाल्टी भर पानी में तेल की एक बूंद के समान हैं।"

गांधीजी के बारे में बात करते हुए वाइसराय ने कहा—"इस बारे में किसी भ्रम में मत रहो, यह बूढ़ा भारत में सबसे बड़ी चीज है।...इसने मेरे साथ अच्छा सलूक किया है। ...भ्रम में मत रहो। इसका बड़ा भारी प्रभाव है।"

लार्ड लिनलिथगो ने बतलाया कि गांधीजी किसी रूप में सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का विचार कर रहे हैं। "मुझे यहां छः वर्ष हो गये हैं और मैंने संयम सीख लिया है। मैं शाम को देर तक बैठा रिपोर्टों का अध्ययन करता हूं और उन्हें सावधानी से हृदयंगम करता हूं। मैं जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाऊंगा, परंतु यदि मुझे लगा कि गांधीजी युद्ध-प्रयत्न में बाधा डाल रहे हैं, तो मुझे उन्हें काबू में लाना होगा।"

मैंने कहा कि गांधीजी यदि जेल में मर गये तो बुरा होगा।

वाइसराय ने सहमति जतलाते हुए कहा—"मैं जानता हूं कि वह बूढ़े आदमी हैं और इस बूढ़े आदमी को आप जबरदस्ती खाना नहीं खिला सकते। मुझे आशा है कि इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, परंतु मेरे ऊपर गंभीर जिम्मेदारी है।"

नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के बारे में गांधीजी से परामर्श करने सेवाग्राम जा रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मेरी मुलाकात की व्यवस्था कर दें। बहुत जल्दी मुझे तार मिला, जिसमें लिखा था—"स्वागत! महादेव देसाई।"

मैं वर्धा स्टेशन पर गाड़ी से उतरा, जहां मुझे गांधीजी का संदेश-वाहक मिला। रात को मैं कांग्रेस-अतिथि-गृह की छत पर सोया। सुबह मैंने गांधीजी के

दांत-चिकित्सक के साथ सेवाग्राम के लिए तांगा किया।

तांगा गांव के पास रुक गया। वहां गांधीजी खड़े थे। उन्होंने अंग्रेजी लहजे में कहा—"मिस्टर फिशर !" और हम दोनों ने हाथ मिलाये। वह मुझे एक बेंच के पास ले गये। उन्होंने बेंच पर बैठकर अपनी हथेली उस पर टिका दी और मुझसे कहा—"बैठ जाओ !" जिस तरह वह पहले बेंच पर बैठे और जिस तरह उन्होंने मुझे बेंच पर बैठने का हाथ से इशारा किया, उससे लगा मानो वह कह रहे हों—"यह मेरा घर है, आ जाओ !" मैंने तुरंत घरोपा अनुभव किया।

गांधीजी के साथ मेरी रोज एक घंटा मुलाकात होती थी। भोजन के समय भी बातचीत का मौका मिलता था। इसके अलावा दिन में एक या दो बार मैं उनके साथ घूमने भी जाता था।

गांधीजी का शरीर सुगठित था, सीने के स्वस्थ पुट्ठे उभरे हुए, पतली कमर और लंबी, पतली मजबूत टांगें, जो चप्पलों से धोती तक नंगी थीं। उनके घुटनों की गांठें निकली हुई थीं और उनकी हड्डियां चौड़ी तथा मजबूत थीं। उनके हाथ बड़े-बड़े तथा अंगुलियां लंबी और दृढ़ थीं। उनकी चमड़ी कोमल, चिकनी और स्वस्थ थी। वह तिहत्तर वर्ष के थे। उनकी अंगुलियों के नाखून, हाथ-पांव तथा शरीर निर्दोष थे। उनकी धोती, धूप में कभी-कभी पहना जानेवाला टोप और सिर पर रखा हुआ गीला अंगोछा, सफेद-झक थे।

उनका शरीर बूढ़ा नहीं मालूम देता था। उनको देखकर यह नहीं लगता था कि वह बूढ़े हैं। उनके बुढ़ापे का पता उनके सिर से लगता था।

उनकी शांत, विश्वासभरी आंखों के सिवा उनके चेहरे की आकृति भद्दी थी। विश्राम की अवस्था में उनका चेहरा भद्दा प्रतीत होता, परंतु वह कभी विश्राम की अवस्था में होता ही नहीं था। चाहे वह बात करते हों या सुनते हों, उनका चेहरा सजीव बना रहता था और उस पर तुरंत प्रतिक्रिया होती थी। बात करते समय वह प्रभावशाली ढंग से हाथों द्वारा भाव-प्रदर्शन करते थे। उनके हाथ बड़े सुंदर थे।

लॉयड जार्ज एक महान पुरुष जैसे दिखाई देते थे। चर्चिल और फ्रैंकलिन डी० रूज़वेल्ट का बड़प्पन और विशेषता भी नजर पड़े बिना नहीं रहते। गांधीजी में (और लेनिन में) यह बात नहीं थी। बाहर से उनमें कोई निरालापन नहीं था। उनका व्यक्तित्व जो कुछ भी वह थे, उसमें; जो कुछ उन्होंने किया, उसमें; तथा जो कुछ वह कहते थे, उसमें था। गांधीजी के सामने मैंने कोई भय और झिझक नहीं

महसूस की। मैंने महसूस किया कि मैं एक अत्यंत मृदु, सौम्य, बेतकल्लुफ, तनाव-रहित, प्रफुल्ल, बुद्धिमान और अत्यंत सभ्य व्यक्ति के सामने हूं। मैंने उनके व्यक्तित्व का चमत्कार भी महसूस किया। अपने व्यक्तित्व के बल से ही उन्होंने बिना किसी संगठन या सरकार के सहारे अपना प्रभाव एक विछिन्न देश के कोने-कोने में और वास्तव में एक विभाजित संसार के कोने-कोने में, विकीर्ण कर दिया था। सीधे संपर्क, क्रियाशीलता, उदाहरण तथा संसार भर में उपेक्षित कुछ सरल सिद्धांतों के प्रति वफादारी, इनके द्वारा वह जनता के पास पहुंचते थे। उनके सिद्धांत थे अहिंसा, सत्य तथा साध्य के ऊपर साधन की श्रेष्ठता।

आधुनिक इतिहास के नामी व्यक्ति चर्चिल, रूज़वेल्ट, लॉयड जार्ज, स्तालिन, हिटलर, वुडरो विल्सन, कैसर, लिंकन, नैपोलियन, मैटरनिच, तालेरां आदि के हाथ में राज्यों की सत्ता थी। लोगों के मानस पर प्रभाव डालने में गांधीजी के मुकाबले का एकमात्र गैर-सरकारी व्यक्ति कार्ल मार्क्स समझा जा सकता है। व्यक्तियों की अंतरात्मा पर गांधीजी के समान जबरदस्त असर डालनेवाले आदमियों की तलाश में हमको सदियों पीछे जाना पड़ेगा। पिछले युग में ऐसे लोग धर्मात्मा हुए हैं। गांधीजी ने जतला दिया कि ईसा तथा कुछ ईसाई पादरियों और बुद्ध का, और कुछ इबरानी पैगंबरों और यूनानी ज्ञानियों का, आध्यात्म आधुनिक समय में तथा आधुनिक राजनीति पर प्रयुक्त हो सकता है। गांधीजी ईश्वर या धर्म के बारे में उपदेश नहीं देते थे, वह तो स्वयं जीते-जागते धर्मोपदेश देते थे। जिस संसार में सत्ता, धन तथा अहंकार के क्षयकारी प्रभाव के सामने टिकनेवाले नहीं के बराबर हैं, उसमें गांधीजी एक उत्तम पुरुष थे। बिजली, रेडियो, नल या टेलीफोन से वंचित एक छोटे-से भारतीय गांव की कुटिया में वह जमीन पर आधे से अधिक नंगे बैठे हुए थे। यह स्थिति श्रद्धान्वित भय, पोपलीला या आख्यान को बढ़ाने में जरा भी सहायक नहीं हो सकती थी। हर दृष्टि से वह धरती के निकट थे। वह जानते थे कि जीवन का अर्थ है जीवन की छोटी-छोटी बातें।

"अपने जूते और टोप पहन लो!" गांधीजी ने कहा। "इन दोनों चीजों के बिना यहां काम नहीं चल सकता। देखना, कहीं लू न लग जाय।" ताप ११०° हो रहा था और झोंपड़ियों के सिवा, जो भट्टी की तरह जल रही थीं, कहीं छाया नहीं थी। "चले आओ!" गांधीजी ने नकली आज्ञा के मैत्रीपूर्ण स्वर में कहा। मैं उनके पीछे-पीछे भोजन के स्थान पर गया, जो तीन तरफ चैटाइयों से ढका हुआ था और एक तरफ खुला था, जहां से उसमें प्रवेश करते थे।

गांधीजी दरवाजे के पास एक गद्दी पर बैठ गये। उनके बाईं ओर कस्तूरबा और दाहिनी ओर नरेंद्रदेव थे। भोजन करनेवालों की संख्या लगभग तीस थी। स्त्रियां अलग बैठी थीं। मेरे सामने तीन से आठ साल तक के कुछ बच्चे बैठे थे। हरएक के नीचे पतली चटाई थी और सामने पीतल की एक-एक थाली जमीन पर रखी हुई थी। आश्रमवासी स्त्रियां तथा पुरुष नंगे पांव, बिना आवाज किये, थालियों में भोजन परोस रहे थे। गांधीजी की टांगों के पास कुछ बरतन और कटोरे रखे हुए थे। उन्होंने मुझे उबली भाजी से भरा कांसे का कटोरा दिया, जिसमें मेरे खयाल से मुझे कटा हुआ पालक और कचूमर के कुछ टुकड़े नजर आये। एक स्त्री ने मेरी थाली में कुछ नमक डाला और दूसरी ने एक गर्म पानी का गिलास और एक दूध का गिलास दिया। इसके बाद वह दो छिलकेदार उबले हुए आलू और कुछ चपातियां लेकर आईं। गांधीजी ने अपने सामने रखे हुए बरतन में से एक पतली करारी रोटी निकालकर मुझे दी।

घंटे की ध्वनि हुई। सफेद जांघिया पहने एक हृष्ट-पुष्ट आदमी ने परोसना बंद कर दिया और खड़े होकर, आंखें आधी बंद करके, ऊंचे स्वर से अलाप शुरू किया, जिसका गांधीजी-सहित सब लोगों ने साथ दिया। प्रार्थना "शांति-शांति-शांति" के साथ समाप्त हुई। सबने रोटी को उबली भाजी में मिलाकर अंगुलियों से खाना शुरू किया। मुझे एक छोटा चम्मच और रोटी के लिए मक्खन दिया गया।

"तुम रूस में चौदह वर्ष रहे हो," गांधीजी ने सबसे पहली राजनैतिक बात मुझसे यह की—"स्तालिन के बारे में तुम्हारी क्या राय है ?"

मुझे बहुत गरमी महसूस हो रही थी। मेरे हाथ सने हुए थे और बैठने से मेरे टखने और टांगें सुन्न हो गये थे। इसलिए मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया—"बहुत काबिल और बहुत क्रूर।"

"क्या हिटलर जैसा क्रूर ?" उन्होंने पूछा।

"उससे कम नहीं।"

कुछ ठहरकर वह मेरी तरफ मुड़े और बोले—"क्या वायसराय से मिल चुके हो ?"

मैंने बतलाया कि मिल चुका हूं, परंतु गांधीजी ने इस विषय को यहीं छोड़ दिया।

दोपहर का भोजन ग्यारह बजे और शाम का सूर्यास्त से पहले होता था।

सुबह खुरशेद नौरोजी मेरा नाश्ता लेकर आईं—चाय, बिस्कुट या शहद और मक्खन के साथ डबल रोटी और आम।

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने मुझे एक बड़ा चम्मच भाजी खाने के लिए दिया। अपने बरतन में से उन्होंने एक उबला प्याज मुझे देने को निकाला। मैंने बदले में कच्चा प्याज मांगा। भोजन की बेस्वाद चीजों से इसने राहत दी।

तीसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने कहा—"फिशर, अपना कटोरा मुझे दो। मैं तुम्हें थोड़ी-सी भाजियां दूंगा।"

मैंने कहा कि पालक और कचूमर दो दिन में चार बार खा चुका हूं। और अधिक खाने की इच्छा नहीं है।

"तुम्हें भाजियां पसंद नहीं हैं?" उन्होंने आलोचना के ढंग से कहा।

"लगातार तीन दिन तक इन भाजियों का स्वाद मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"अच्छा," वह बोले—"इसमें खूब नमक और खूब नीबू मिला लो।"

"आप चाहते हैं कि मैं स्वाद को मार दूं?" मैंने उनकी बात का अर्थ लगाया।

"नहीं," उन्होंने हंसकर जवाब दिया—"स्वाद को बढ़िया बना लो।"

"आप इतने अहिंसक हैं कि स्वाद को भी नहीं मारना चाहते हैं?" मैंने कहा।

"यदि लोग इसी चीज को मार दें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।" वह बोले।

मैंने अपने चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछा। "अगली बार जब मैं भारत में आऊं...," गांधीजी मुंह चला रहे थे और ऐसा लगता था कि मेरी बात सुन नहीं रहे हैं। मैं चुप हो गया।

"हां," गांधीजी ने कहा—"अगली बार तुम भारत में आओ, तब..."

"आप या तो सेवाग्राम एयरकंडीशन करा लें या वाइसराय के भवन में रहें।"

"बहुत अच्छा," गांधीजी ने रजामंदी दिखाई।

गांधीजी मजाक पसंद करते थे। एक दिन तीसरे पहर जब मैं दैनिक मुलाकात के लिए उनकी कुटिया में गया, तो वह वहां नहीं थे। आते ही वह बिस्तर पर लेट गये। प्रश्न पूछने का संकेत करते हुए वह बोले—"मैं लेटे-लेटे ही तुम्हारी चोटें सम्हालूंगा।" एक मुसलमान स्त्री ने उनके पेट पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाई। "इसके

द्वारा अपने भविष्य से मेरा संपर्क हो जाता है।" वह कहने लगे। मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"मेरा खयाल है कि इसका व्यंग तुम नहीं समझे।" वह बोले।

मैंने कहा—"व्यंग तो मैं समझ गया, लेकिन मेरा खयाल है कि आप अभी इतने बूढ़े नहीं हुए हैं कि मिट्टी में मिल जाने का विचार करें।"

"क्यों नहीं ?" उन्होंने कहा—"आखिर तुमको और मुझको, और सबको, और कुछ को सौ वर्षों में, लेकिन सबको देर-अबेर, मिट्टी में मिलना है।"

एक अन्य अवसर पर उन्होंने वह बात दोहराई, जो लंदन में उन्होंने लार्ड सैंकी से कही थी। उन्होंने कहा था—"यदि मैंने अपनी परवाह न की होती, तो क्या आप समझते हैं कि मैं इस वृद्धावस्था तक पहुंच पाता ? यह मेरा एक दोष है।"

मैंने हिम्मत करके कहा—"मैं तो समझता था कि आप निर्दोष हैं।"

वह हंसने लगे और मुलाकात के समय अक्सर पास बैठनेवाले आठ-दस आश्रमवासी भी हंस पड़े। "नहीं," गांधीजी ने जोर देकर कहा—"मुझमें बहुत दोष हैं। यहां से जाने के पहले ही तुम्हें मेरे सैकड़ों दोषों का पता लग जायगा और अगर न लगे, तो उन्हें देखने में मैं तुम्हारी मदद करूंगा।"

एक घंटे की मुलाकात शुरू होने से पहले गांधीजी कुटिया में मेरे लिए अक्सर जरा ठंडी जगह तलाश करते थे। फिर मुस्करा कर कहते—"अच्छा !" अर्थात प्रश्न करो। समय का उन्हें इतना अचूक अंदाज था कि एक घंटा बीतने को होते ही वह अपनी घड़ी पर नजर डालते और कहते—"तुम्हारा घंटा पूरा हो गया।"

एक दिन, जब मैं बातचीत के बाद कुटिया से रवाना हो रहा था, वह कहने लगे—"जाओ और टब में बैठ जाओ।" धूप में मेहमान-घर तक जाने में गरमी से मेरा दिमाग सूख गया और मैंने निश्चय किया कि टब में बैठने का विचार बहुत अच्छा है।

उस दिन गांधीजी के साथ, आश्रम में दूसरों के साथ तथा दो दिन के लिए आये हुए नेहरू के साथ अपनी बातचीतों का पूरा ब्यौरा टाइप करने का काम सबसे कठिन परीक्षा थी। पांच मिनट में ही मैं थक गया और पसीने में नहा गया। गांधीजी ने टब में बैठने का जो सुझाव दिया था, उससे प्रेरित होकर मैंने पानी से भरे टब में लकड़ी का छोटा-सा खोखा रखा और उस पर तह किया हुआ तौलिया लगाया। फिर एक बड़ा खोखा टब के बाहर रखकर उस पर अपना छोटा टाइपराइटर जमाया। यह तरकीब करने के बाद मैं टबवाले खोखे पर बैठ गया और

टाइप करने लगा। जरा-जरा देर बाद जब मुझे पसीना आता, तो मैं टब में से गिलास भर-भरकर अपनी गर्दन, पीठ और टांगों पर पानी उंडेल लेता। इस तरकीब से मैं बिना थकावट महसूस किये घंटे भर तक टाइप कर सका। इस नई खोज से सारे आश्रम में मजेदार चहल-पहल हो गई। आश्रम के लोग रोनी शक्लोंवाले नहीं थे। गांधीजी इस बात पर खूब ध्यान देते थे। वह बच्चों की ओर आंखें मटकाते थे, बड़ों को हंसाते थे और तमाम आगंतुकों से मज़ाक करते थे।

मैंने गांधीजी से अपने साथ फोटो खिंचवाने को कहा। गांधीजी ने उत्तर दिया—"अगर संयोग से कोई फोटोग्राफर इधर आ निकले तो तस्वीर में तुम्हारे साथ दिखाई देने से मुझे कोई इन्कार नहीं है।"

मैंने कहा—"यह तो आपने मेरी बड़ी भारी प्रशंसा कर दी।"

"क्या तुम प्रशंसा चाहते हो ?" उन्होंने पूछा।

"क्या हम सब प्रशंसा नहीं चाहते ?"

"हां," गांधीजी ने सहमति प्रकट की—"परंतु कभी-कभी हमको इसकी बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।"

मैंने कहा—"मुझे बताया गया है कि कांग्रेस बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथों में है और आपको भी बंबई के मिल-मालिक सहायता देते हैं। इनमें कहां तक सचाई है ?"

"दुर्भाग्य से यह सही है," गांधीजी ने स्वीकार किया—"कांग्रेस के पास अपना काम चलाने के लिए काफी रुपया नहीं है। शुरू में हमने सोचा था कि प्रत्येक सदस्य से चार आना वार्षिक वसूल करें, परंतु इससे काम नहीं चला।"

मैंने फिर पूछा—"कांग्रेस के कोष का कितना अंश धनवान भारतवासियों से मिलता है ?"

"लगभग पूरा-का-पूरा," उन्होंने कहा—"उदाहरण के लिए इस आश्रम में ही हम इससे अधिक गरीबी में रह सकते हैं और खर्च कम कर सकते हैं। परंतु ऐसा नहीं होता और इसके लिए रुपया धनवान भारतवासियों के पास से आता है।"

(श्रीमती नायडू का एक ताना मशहूर है कि गांधीजी का गरीबी का जीवन-निर्वाह कराने में खूब पैसा खर्च होता है। यह ताना सुनकर गांधीजी को बड़ा मजा आया था।)

"यह तथ्य कि निहित-स्वार्थवाले धनवान लोग कांग्रेस को रुपया देते हैं, क्या

इसका कांग्रेस की राजनीति पर असर नहीं पड़ता ?" मैंने पूछा—"क्या इससे नैतिक दायित्व नहीं उत्पन्न होता ?"

"इससे गुप्त ऋण तो पैदा होता है," उन्होंने कहा—"परंतु व्यवहार में धनवानों के विचारों से हम बहुत कम प्रभावित होते हैं। पूर्ण स्वाधीनता की हमारी मांग से ये लोग कभी-कभी डर जाते हैं। धनवान संरक्षकों पर कांग्रेस की निर्भरता दुर्भाग्यपूर्ण है। मैंने 'दुर्भाग्यपूर्ण' शब्द का उपयोग किया है। इससे हमारी नीति विकृत नहीं होती।"

"क्या इसका एक परिणाम यह नहीं है कि सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को लगभग छोड़ दिया गया है और राष्ट्रीयता पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है ?"

"नहीं," गांधीजी ने उत्तर दिया—"कांग्रेस ने समय-समय पर, खासकर पंडित नेहरू के असर से, आर्थिक नियोजन के लिए प्रगतिशील सामाजिक कार्यक्रमों तथा योजनाओं को अपनाया है।"

गांधीजी के आश्रम तथा गांधीजी की हरिजन और कृषकोत्थान की संस्थाओं तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए अधिकांश धन घनश्यामदास बिड़ला से मिलता था। बिड़ला ने पहले-पहल १९२० में कलकत्ता में गांधीजी को देखा था। तब से वह उनके भक्त बन गये। वह गांधीजी की कई नीतियों से सहमत नहीं थे, परंतु यह कोई बात नहीं थी। वह गांधीजी को अपना 'बापू' मानते थे। गांधीजी को वह जो कुछ देते थे, उसका हिसाब कभी नहीं रखते थे। परंतु गांधीजी खुद अपने हाथ से खर्च की छोटी-से-छोटी मदों का हिसाब लिखते थे और बिड़ला को देते थे, और यह उसे बिना देखे गांधीजी के सामने ही फाड़ डालते थे। गांधीजी की मैत्री से बिड़ला को सम्मान और संतोष मिलते थे। परंतु यदि अवसर आता, तो गांधीजी बिड़ला की मिल मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व करते, जैसाकि उन्होंने अपने मित्र तथा आर्थिक सहायक अंबालाल साराभाई के मामले में किया था। गांधीजी पूंजीवादी शोषण के विरोधी होते हुए भी पूंजीपतियों के प्रति सहिष्णु थे। उन्हें अपने हृदय की शुद्धता का तथा अपने उद्देश्य का इतना भरोसा था कि उन्हें यह खयाल भी नहीं होता था कि वह कलुषित हो सकते हैं। गांधीजी के लिए कोई अछूत नहीं था, न बिड़ला, न कोई कम्युनिस्ट, न हरिजन और न कोई साम्राज्य-वादी। जहां-कहीं उन्हें नेकी की चिनगारी का पता लगता, वह उसे सुलगाते थे।

उनके हृदय में मानव-प्रकृति की विभिन्नता के लिए तथा मनुष्य के हेतुओं की अनेकता के लिए गुंजायश थी।

जून १९४२ का जो सप्ताह मैंने सेवाग्राम में बिताया, उसके प्रारंभ में ही प्रकट हो गया था कि गांधीजी ने इंग्लैंड के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा कर लिया है। इस आंदोलन का यही नारा होनेवाला था।

एक दिन तीसरे पहर, जब गांधीजी उन कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाल चुके, जो उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा-आंदोलन शुरू करने के लिए उकसा रहे थे, तो मैंने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजों के लिए पूरी तरह भारत छोड़कर चले जाना संभव नहीं है। इसका अर्थ होगा भारत को जापान के भेंटकर देना। इसके लिए इंग्लैंड कभी राजी नहीं होगा और संयुक्त राज्य इसे कभी पसंद नहीं करेगा। यदि आपकी मांग यह है कि अंग्रेज अपना बिस्तर-बोरिया समेटकर चले जायं, तो आप एक असंभव चीज मांग रहे हैं। आपका यह अभिप्राय तो नहीं हैं कि वे अपनी सेनाएं भी हटा लें ?"

कम-से-कम दो मिनट तक गांधीजी मौन रहे। कमरे की निस्तब्धता मानो सुनाई दे रही थी।

अंत में गांधीजी बोले—"तुम ठीक कहते हो। हां, ब्रिटेन और अमरीका और अन्य देश भी यहां अपनी सेनाएं रख सकते हैं तथा भारत की भूमि का फौजी कार्रवाइयों के अड्डे की तरह उपयोग कर सकते हैं। मैं युद्ध में जापान की जीत नहीं चाहता। किंतु मुझे विश्वास है कि जब तक भारतीय जनता आजाद न हो जाय, तब तक इंग्लैंड नहीं जीत सकता। जब तक ब्रिटेन भारत पर शासन करता रहेगा, तब तक वह कमजोर रहेगा और अपना नैतिक बचाव नहीं कर सकेगा।"

"परंतु यदि लोकतंत्री देश भारत को अड्डा बना दें, तो बहुत-सी उलझनें पैदा हो जायंगी। सेनाएं हवा में नहीं रहा करतीं। मसलन, मित्रराष्ट्रों को रेलों के अच्छे संगठन की अपेक्षा होगी।"

"हां-हां," गांधीजी ने उच्च-स्वर से कहा—"वे रेलों का संचालन कर सकते हैं। जिन बंदरगाहों पर उनकी रसद उतरे, वहां भी वे व्यवस्था कायम रखना चाहेंगे। वे नहीं चाहेंगे कि बंबई और कलकत्ता में दंगे-फिसाद हों। इन मामलों में परस्पर सहयोग की और सम्मिलित प्रयत्न की आवश्यकता होगी।"

"क्या इस पारस्परिक सहयोग की शर्तें मित्रता के संधिपत्र में प्रस्तुत की जा सकती हैं ?"

"हां," गांधीजी ने सहमति प्रकट की—"लिखित इकरारनामा हो सकता है।"

"अपने यह बात अभी तक कही क्यों नहीं ?" मैंने पूछा—"मैं कबूल करता हूं कि जब मैंने सविनय अवज्ञा-आंदोलन के आपके इरादे की बाबत सुना, तो मेरा खयाल उसके विरुद्ध हो गया। मैं समझता हूं कि इससे युद्ध-प्रयत्न में बाधा पड़ेगी। यदि धुरी-राष्ट्र जीत गये, तो मुझे संसार में पूर्ण अंधकार होता दिखाई देता है। मेरा खयाल है कि यदि हम जीत जायं, तो हमको एक बेहतर दुनिया बनाने का मौका मिलेगा।"

"यहां मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूं," गांधीजी ने तर्क किया—"ब्रिटेन अपने को अक्सर पाखंड के चोगे में छिपाये रहता है। वह ऐसे वादे करता है, जिन्हें बाद में निभाता नहीं। परंतु यह बात मैं मानता हूं कि लोकतंत्री राष्ट्र जीत जायं तो बेहतर मौका मिलेगा।"

"यह इस पर निर्भर है कि हम किस तरह की शांति रखते हैं," मैंने कहा।

"यह इस पर निर्भर है कि आप युद्ध में क्या करते हैं," गांधीजी ने मेरी गलती सुधारी—"युद्ध के बाद स्वाधीनता में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं अभी स्वाधीनता चाहता हूं। इससे इंग्लैंड को युद्ध जीतने में मदद मिलेगी।"

मैंने फिर पूछा—"आपने अपनी यह योजना वाइसराय तक क्यों नहीं पहुंचाई ? वाइसराय को मालूम होना चाहिए कि मित्र राष्ट्रों की फौजी कार्रवाइयों के लिए भारत को अड्डा बनाये जाने में अब आपको कोई आपत्ति नहीं है।"

"किसीने मुझसे पूछा ही नहीं।" गांधीजी ने ढीलेपन से उत्तर दिया।

आश्रम से मेरे रवाना होने से पूर्व महादेव देसाई ने मुझसे चाहा कि मैं वाइसराय से कहूं कि गांधीजी उनसे मिलना चाहते हैं। महात्माजी समझौते के लिए और शायद सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का विचार छोड़ने के लिए तैयार थे। बाद में, दिल्ली में, मुझे गांधीजी का एक पत्र राष्ट्रपति रूज़वेल्ट को देने के लिए मिला। साथ के पुर्जे में गांधीजी की विशिष्टता लिए हुए शब्द थे—"यदि यह आपको पसंद न आये, तो इसे फाड़ देना।"

गांधीजी महसूस करते थे कि भारत के बारे में लोकतंत्री राष्ट्रों की स्थिति नैतिक दृष्टि से असमर्थनीय थी। रूज़वेल्ट या लिनलिथगो इस स्थिति को बदलकर उसे रोक सकते थे, वरना उनके हृदय में कोई शंकाएं नहीं थीं। नेहरू तथा आज़ाद शंका करते थे। महात्माजी से मतभेद के कारण राजाजी कांग्रेस का नेतृत्व छोड़ चुके थे। परंतु गांधीजी विचलित नहीं हुए। नेहरू और आज़ाद को उन्होंने

अपनी बात जंचा दी। नेहरू विदेशी तथा घरू स्थिति को अनुकूल नहीं मानते थे। गांधीजी ने बतलाया—"मैंने लगातार सात दिन तक उनसे बहस की। जिस भावावेश के साथ वह मेरी स्थिति के विरोध में लड़े, उसे मैं बयान नहीं कर सकता।"

"परंतु आश्रम से रवाना होने से पहले," गांधीजी के शब्दों में "तथ्यों के तर्क ने उन्हें परास्त कर दिया।" सच तो यह है कि नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के इतने कट्टर समर्थक बन गये थे कि जब कुछ दिन बाद बंबई में मैंने उनसे पूछा कि गांधीजी को वाइसराय से मिलना चाहिए या नहीं, तो उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं। किसलिए ?" गांधीजी अब भी वाइसराय से मुलाकात की आशा लगाये हुए थे।

गांधीजी में महान आकर्षण था। वह एक निराली प्राकृतिक विचित्रता थे, शांत तथा इस प्रकार अभिभूत करनेवाले, कि पता भी न लगे। उनके साथ मानसिक संपर्क आनंददायक होता था, क्योंकि वह अपना हृदय खोलकर रख देते थे और दूसरा व्यक्ति देख सकता था कि मशीन किस तरह चल रही है। वह अपने विचारों को कभी पूर्ण रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न नहीं करते थे। वह मानो बोली में सोचते थे, अपने विचार को हर कदम प्रकट कर देते थे। आप केवल उनके शब्दों को ही नहीं, बल्कि उनके विचारों को भी सुनते थे। इसलिए आप उनकी परिणाम पर पहुंचने की गति को सिलसिलेवार देख सकते थे। यह चीज उन्हें प्रचारक की भांति बात करने से रोकती थी। वह मित्र की भांति बात करते थे। वह विचारों के परस्पर आदान-प्रदान में दिलचस्पी रखते थे और इससे भी अधिक व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने में।

गांधीजी का कहना था कि स्वाधीन भारत में संघीय प्रशासन अनावश्यक होगा। मैंने उन्हें संघीय प्रशासन के अभाव से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयां बतलाईं। यह बात उनके गले नहीं उतरी। मैं चकरा गया। अंत में उन्होंने कहा—"मैं जानता हूं कि मेरे मत के बावजूद केंद्रीय सरकार बनेगी।" यह विशिष्ट गांधी-चक्र था। वह किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे, उसकी वकालत करते थे और फिर हंसते हुए मान लेते थे कि वह अव्यवहारिक है। समझौते की बातचीत में यह प्रवृत्ति अत्यंत झुंझलानेवाली और समय नष्ट करनेवाली हो सकती थी। कभी-कभी तो वह अपनी कही हुई बातों पर खुद भी आश्चर्य करते थे। उनकी विचार-प्रणाली तरल थी। अधिकतर लोग चाहते हैं कि उनकी बात सही प्रमाणित हो। गांधीजी भी चाहते थे, परंतु अक्सर वह गलती को मंजूर करके जीत जाते थे।

बूढ़े लोगों की पुरानी बातें याद आया करती हैं। लॉयड जार्ज सामयिक घटनाओं के बारे में प्रश्न का उत्तर देना शुरू करते थे, परंतु शीघ्र ही यह बताने लगते थे कि उन्होंने प्रथम महायुद्ध, या सदी के प्रारंभ में सामाजिक सुधार का आंदोलन किस प्रकार चलाया। परंतु तिहत्तर वर्ष की आयु में भी गांधीजी पुरानी बातें याद नहीं करते थे। उनका दिमाग तो आनेवाली चीजों पर था। वर्ष उनके लिए कोई महत्व नहीं रखते थे, क्योंकि वह तो अनंत भविष्य की बातें सोचते थे। उनके लिए केवल घंटों का महत्व था, क्योंकि जो कुछ वह उस भविष्य को दे सकते थे, उसका यह नाप था।

गांधीजी के पास प्रभाव से कुछ अधिक था, उनके पास सत्ता थी, जो सामर्थ्य से कम, किंतु बेहतर होती है। सामर्थ्य मशीन का गुण होता है, सत्ता व्यक्ति का गुण होता है। राजनीतिज्ञों में दोनों का तारतम्य होता है। अधिनायक के पास सामर्थ्य लगातार जमा होती रहती है, जिसका दुरुपयोग अनिवार्य होता है और यह सामर्थ्य उसकी सत्ता को छीन लेती है। गांधीजी के सामर्थ्य-त्याग ने उनकी सत्ता को बढ़ा दिया। सामर्थ्य अपने शिकारों के खून और आंसुओं पर पनपती है। सत्ता को सेवा, सहानुभूति तथा स्नेह पनपाते हैं।

एक दिन मैं महादेव देसाई को चरखा कातते देखता रहा। मैंने कहा कि मैं गांधीजी की बातों को ध्यान से सुनता आया हूं, परंतु मुझे बराबर यह आश्चर्य हो रहा है कि जनता पर गांधीजी के अमित प्रभाव का मूल स्रोत क्या है, फिलहाल मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि यह उनकी आसक्ति है।

"यह ठीक है," देसाई ने उत्तर दिया।

"उनकी आसक्ति का मूल क्या है ?" मैंने पूछा।

देसाई ने समझाया—"वह आसक्ति उन तमाम विषयों का चरमोत्कर्ष है जो इस शरीर के साथ लगे हुए हैं।"

"कामासक्ति ?"

"काम, क्रोध, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा ... गांधीजी को अपने ऊपर पूर्ण निग्रह है। इससे अमित शक्ति तथा आसक्ति उत्पन्न होती रहती है।"

यह आसक्ति शमित और अस्फुट थी। उनमें मृदुल तीव्रता, कोमल दृढ़ता और धीरता की रूई में लपेटी हुई अधीरता थी। गांधीजी के साथियों को तथा अंग्रेजों को कभी-कभी उनकी तीव्रता, दृढ़ता और अधीरता पर रोष होता था।

परंतु अपनी मृदुलता, कोमलता तथा धीरता के द्वारा वह अपने प्रति उनका आदर और अक्सर उनका प्रेम, बनाये रखते थे।

गांधीजी एक दृढ़ व्यक्ति थे और उनकी दृढ़ता का कारण उनके व्यक्तित्व का ऐश्वर्य था, न कि उनकी संपत्ति की बहुलता। उनका लक्ष्य था अस्ति, परिग्रह नहीं। आनंद उन्हें आत्मबोध के द्वारा प्राप्त होता था। वह अभय थे, इसलिए उनका जीवन सत्यमय था। वह अकिंचन थे, पर अपने सिद्धांतों की कीमत चुका सकते थे।

गांधीजी व्यक्तिगत नैतिकता तथा सार्वजनिक व्यवहार के बीच एकता के प्रतीक हैं। जब विवेक घर में तो रहता है, परंतु कारखाने में, दफ्तर में, पाठशाला में और बाजार में नहीं रहता, तो भ्रष्टाचार, क्रूरता और अधिनायकशाही के लिए रास्ता खुल जाता है।

गांधीजी ने राजनीति को तथा आचार-नीति को संपन्न बनाया। वह प्रत्येक दिन के विचारार्थ विषयों को शाश्वत तथा सार्वभौम मूल्यों के प्रकाश में सुलझाते थे। क्षणभंगुर वस्तुओं का सार खींचकर वह स्थायी तत्व निकाल लेते थे। इस प्रकार वह मनुष्य के कार्य को कुंठित करनेवाली प्रचलित धारणाओं के ढांचे को तोड़कर निकल जाते थे। उन्होंने कार्य का एक नया परिमाण खोज निकाला था। व्यक्तिगत सफलता या सुख के लिहाजों से न बंधकर उन्होंने सामाजिक परमाणु का विघटन कर दिया और शक्ति का नया स्रोत पा लिया। इसने उन्हें आक्रमण के वे हथियार दिये, जिनका कोई बचाव नहीं था। उनकी महानता इसमें थी कि वह ऐसे काम करते थे जिन्हें हर एक कर सकता है, परंतु करता नहीं है।

गांधीजी के जीवन-काल में ठाकुर ने लिखा था—"कदाचित यह सफल नहीं हो पायंगे। कदाचित यह उसी प्रकार असफल होंगे, जिस प्रकार मनुष्य को खलता से हटाने में बुद्ध तथा ईसा असफल रहे। परंतु लोग इन्हें सदा ऐसे व्यक्ति की तरह याद करेंगे, जिसने अपने जीवन को आनेवाले अनंत युगों के लिए एक नसीहत बना दिया।"

: २१ :

अदम्य इच्छा-शक्ति

१९४२ की मई, जून और जुलाई में भारत में दम घोटनेवाली शून्यता का अनुभव होता था। भारतवासी हताश प्रतीत होते थे। ब्रिटिश सेनानायक, संयुक्त राज्य के जनरल जोज़ेफ स्टिलवेल बची-खुची सेना और हजारों भारतीय शरणार्थी जीतते हुए जापानियों से बचने के लिए बर्मा से भाग रहे थे। जापान भारत के दरवाजे तक आ पहुंचा था। भारत को धावे से बचाने के लिए इंग्लैंड के पास शक्ति नजर नहीं आती थी। हल्ला मचानेवाले भारतवासी अपनी नितांत असहायता से झुंझला रहे थे और तंग आ गये थे। राष्ट्रीय संकट उपस्थित था, तनाव बढ़ता जा रहा था, खतरा सामने था, मौका पुकार रहा था, परंतु भारतवासियों के पास न तो आवाज थी और न कुछ करने की सामर्थ्य।

गांधीजी के लिए यह स्थिति असह्य थी। हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। उनका विश्वास था और उन्होंने अपने पीछे चलनेवाले विशाल समुदाय को सिखाया था कि भारतवासियों को अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

गांधीजी को अंधकारपूर्ण भविष्य का पूर्वाभास तो नहीं हो सकता था, परंतु तत्काल परिवर्तन की अत्यावश्यक अपेक्षा का उन्हें जरूर भान हो गया था। स्वाधीन राष्ट्रीय सरकार की शीघ्र स्थापना के लिए वह इंग्लैंड पर अधिक-से-अधिक दबाव डालने को कटिबद्ध थे।

परम शांतिवादी गांधीजी की इच्छा थी कि भारत आक्रमण करनेवाली सेना की सफल अहिंसक पराजय का एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करे। साथ ही वह इस वास्तविकता को भी पहचानते थे कि देशों के बीच मरने-मारने का भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है। १४ जून १९४२ के 'हरिजन' में गांधीजी ने घोषणा की थी—"यदि यह मान लिया जाय कि राष्ट्रीय सरकार बन जायगी और वह मेरी आशाओं के अनुरूप होगी, तो उसका पहला काम होगा आक्रांता राष्ट्रों की कार्रवाइयों से बचाव के हित संयुक्त राष्ट्रों के साथ सुलहनामा करना।"

तो क्या गांधीजी युद्ध-प्रयत्न में सहायता करेंगे? नहीं। संयुक्त राष्ट्रीय-सेनाएं भारत भूमि पर रहने दी जायंगी और भारतवासी ब्रिटिश सेना में भर्ती हो सकेंगे या अन्य सहायता दे सकेंगे। परंतु यदि उनकी बात चले, तो भारतीय सेना तोड़ दी

जायंगी और भारत की नई राष्ट्रीय सरकार विश्व-शांति स्थापित करने में अपनी सारी सामर्थ्य, प्रभाव तथा साधन लगा देगी।

क्या ऐसा होने की उन्हें आशा थी ? नहीं। उन्होंने कहा था—"राष्ट्रीय सरकार बनने के बाद मेरी आवाज शायद अरण्यरोदन के समान हो जाय और राष्ट्रवादी भारत शायद युद्ध का दीवाना बन जाय।"

१९४२ की गर्मियां बीतते-बीतते यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार ठुकराये हुए क्रिप्स-प्रस्ताव से आगे नहीं बढ़ेगी। नेहरू वाशिंगटन से कुछ संकेत का इंतजार कर रहे थे। उन्हें आशा थी कि रूज़वेल्ट चर्चिल को भारत में नया कदम बढ़ाने के लिए राजी कर लेंगे। कुछ कांग्रेसजनों को शंका थी कि सविनय-अवज्ञा की पुकार पर देश में प्रतिक्रिया होगी या नहीं और कुछ को आशंका थी कि यह प्रतिक्रिया हिंसा में प्रकट होगी। गांधीजी की कोई शंकाएं नहीं थीं। अपना दावा कायम करने के लिए राष्ट्र में जो आगा-पीछा न सोचनेवाली उमंग थी, उसे वह व्यक्त कर रहे थे।

कांग्रेस कार्य-समिति ने १४ जुलाई को वर्धा में प्रस्ताव पास किया कि "भारत में ब्रिटिश शासन तुरंत समाप्त होना चहिए" और यदि उसकी बात नहीं मानी गई तो, प्रस्ताव में कहा गया कि "कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर सविनय-अवज्ञा-आंदोलन छेड़ेगी, जो अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी के नेतृत्व में होगा।"

यह प्रस्ताव अगस्त के प्रारंभ में बंबई में बुलाये गये कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में रखा जानेवाला था। इस बीच गांधीजी ने सेवाग्राम से जापानियों के नाम एक अपील प्रकाशित की, जिसमें जापान को चेतावनी दी गई कि वह भारत की स्थिति का लाभ उठाकर धावा बोलने की चेष्टा न करे।

इसके बाद गांधीजी बंबई गये। 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' के प्रतिनिधि ए०टी० स्टील से उन्होंने कहा—"यदि कोई मुझे समझा सके कि युद्ध के दौरान में भारत को आजादी देने से युद्ध-प्रयत्न खतरे में पड़ जायगा, तो मैं उसकी दलील सुनने को तैयार हूं।

स्टील ने पूछा—"अगर आपको विश्वास हो जाय तो क्या आप आंदोलन बंद कर देंगे ?"

"अवश्य," गांधीजी ने उत्तर दिया—"मेरी शिकायत तो यह है कि ये भले

आदमी दूर-दूर से मुझे बातें सुनाते हैं, दूर-दूर से मुझे गालियां देते हैं, परंतु नीचे उतरकर कभी मुझसे सीधी बातचीत नहीं करते।"

७ अगस्त को महासमिति के अधिवेशन में कई सौ कांग्रेसी नेताओं ने भाग लिया और ७ व ८ को दिन-दिन भर वाद-विवाद करके उन्होंने वर्धा-प्रस्ताव को कुछ संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया।

८ अगस्त को आधी रात के कुछ ही देर बाद गांधीजी ने महासमिति के सदस्यों के सामने भाषण दिया। उन्होंने जोर देकर कहा—"वास्तविक संघर्ष तुरंत ही प्रारंभ नहीं हो जाता। आप लोगों ने कुछ अधिकार मुझे सौंपे हैं। मेरा पहला काम होगा वाइसराय से मुलाकात करना और उनसे प्रार्थना करना कि कांग्रेस की मांग स्वीकार की जाय। इनमें दो-तीन सप्ताह लग सकते हैं। इस बीच आप लोगों को क्या करना है ? चरखा तो है ही। ...लेकिन आपको इससे भी अधिक कुछ करना है। ...इसी क्षण से आपमें से हर एक यह समझ ले कि वह आजाद है और इस तरह बर्ताव करे मानो वह आजाद है और इस साम्राज्यवादी की एड़ी के नीचे नहीं है।" गांधीजी इस भौतिकवादी धारणा को उलट रहे थे कि परिस्थितियां मनःस्थिति को बनाती हैं। नहीं, मनःस्थिति परिस्थितियों को ढाल सकती है।

प्रतिनिधि लोग घर जाकर सो गये। कुछ ही घंटे बाद पुलिस ने गांधीजी, नेहरू तथा अन्य बीसियों लोगों को जगाया और सूर्योदय से पहले ही उन्हें जेल में पहुंचा दिया। गांधीजी को पूना के पास यरवडा में आगाखां के महल में रखा गया। श्रीमती नायडू, मीरा बहन, महादेव देसाई और प्यारेलाल नैयर को भी उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन कस्तूरबा और डा० सुशीला नैयर भी पकड़ी गईं।

गांधीजी के साथ एक सप्ताह रहने के बाद मैंने वाइसराय से मुलाकात की थी और उन्हें वह संदेश दिया था जो सेवाग्राम में मुझे सौंपा गया था—गांधीजी वाइसराय से बातचीत करना चाहते हैं। वाइसराय ने उत्तर दिया था—"यह उच्च स्तर की नीति का मामला है और इस पर अच्छाई-बुराई के लिहाज से गौर किया जायगा।"

गांधीजी के जेल के फाटकों में बंद होते ही हिंसा की धाराओं के फाटक खुल गये।

गांधीजी का मिजाज भी लड़ाकू हो रहा था। रंगमंच पर छा जाने की अदम्य क्षमता से युक्त कारावद्ध महात्माजी का व्यक्तित्व आगाखां के सुनसान महल

की दीवारों को तोड़कर बाहर निकल गया और उसने पहले तो ब्रिटिश सरकार के दिमाग को और फिर भारतीय जनता के दिमाग को घेर लिया।

१४ अगस्त को गांधीजी ने वाइसराय को जेल से अपना पहला पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने सरकार पर तोड़-मरोड़ और गलत बयानी का आरोप लगाया। लिनलिथगो ने उत्तर दिया कि "आपकी आलोचना से सहमत होना मेरे लिए संभव नहीं है और न नीति में परिवर्तन करना ही संभव है।"

गांधीजी ने कई महीनों प्रतीक्षा की। १९४२ की अंतिम तारीख को उन्होंने लिखा:

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

"यह बिल्कुल व्यक्तिगत पत्र है।...मेरा खयाल था कि हम आपस में मित्र हैं।... मगर ९ अगस्त के बाद की घटनाओं से मुझे शंका हो गई है कि अब भी आप मुझे मित्र समझते हैं या नहीं। कड़ी कार्रवाई करने से पहले आपने मुझे बुलाया क्यों नहीं? अपने संदेह मुझे बतलाये क्यों नहीं और यह क्यों नहीं निश्चय किया कि आपको मिले हुए तथ्य सही भी हैं या नहीं?"

इसलिए गांधीजी ने पत्र के अंत में लिखा—"मैंने उपवास के द्वारा शरीर को सूली पर चढ़ाने का निश्चय किया हैं। मुझे मेरी गलती या गलतियों का यकीन दिला दो, तो मैं सुधार करने को तैयार हूं। ...अगर आप चाहें, तो बहुत से रास्ते निकाल सकते हैं। नया साल हम सब के लिए शांति लेकर आये।

मैं हूं,
आपका सच्चा दोस्त,
मो० क० गांधी"

वाइसराय को यह पत्र चौदह दिन बाद मिला। अग्निकांडों और हत्याकांडों का जिक्र करते हुए लिनलिथगो ने अपने उत्तर में लिखा—"मुझे गहरा दुख है कि आपने इस हिंसा और अपराध की निंदा के लिए एक शब्द भी नहीं लिखा।"

इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा—"९ अगस्त के बाद की घटनाओं के लिए मुझे खेद अवश्य है, किंतु क्या इसके लिए मैंने भारत सरकार को दोषी नहीं ठहराया है? इसके अलावा, जिन घटनाओं पर मेरा न तो प्रभाव है और न काबू तथा जिनके बारे में मुझे केवल इकतरफा बयान मिला है, उन पर मैं कोई मत प्रकट नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि यदि आप हाथ नहीं उठाते और मुझे मुलाकात का मौका देते, तो अच्छा ही परिणाम निकलता।"

लिनलिथगो ने इस पत्र का तत्काल उत्तर दिया और लिखा—"मेरे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है कि हिंसा तथा लूटमार के खेदजनक आंदोलन के लिए कांग्रेस को तथा उसके अधिकृत प्रवक्ता—आपको—जिम्मेदार मानूं। आपको उचित है कि ८ अगस्त के प्रस्ताव तथा उसमें व्यक्त की गई नीति का परित्याग करें और भविष्य के लिए मुझे समुचित आश्वासन दें।"

इसके प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"सरकार ने ही जनता को उभाड़कर पागलपन की सीमा तक पहुंचा दिया है। मैंने जीवन-भर अहिंसा के लिए प्रयत्न किया है, फिर भी आप मुझ पर हिंसा का अपराध लगाते हैं। इसलिए जब मेरे दर्द को मरहम नहीं मिल सकती, तो मैं सत्याग्रही के नियम का पालन करूंगा, अर्थात शक्ति के अनुसार उपवास करूंगा। यह ९ फरवरी को शुरू होगा और इक्कीस दिन बाद समाप्त होगा। ... मेरी इच्छा आमरण उपवास की नहीं है, परंतु यदि ईश्वर की इच्छा हो, तो मैं कठिन परीक्षा को सही-सलामत पार करना चाहता हूं। यदि सरकार अपेक्षित कदम उठाये, तो उपवास जल्दी समाप्त हो सकता है।"

वाइसराय ने ५ फरवरी को तुरंत एक लंबा पत्र भेजा, जिसमें दंगे-फिसादों के लिए फिर कांग्रेस को ही जिम्मेदार बताया। पत्र के अंत में कहा गया था—"आपकी तंदुरुस्ती और आयु के खयाल से, उपवास के आपके निश्चय पर मुझे खेद है। आशा है, आप उपवास का विचार छोड़ देंगे। ... मैं तो राजनैतिक उद्देश्यों के लिए उपवास के प्रयोग को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस मानता हूं, जिसका कोई भी नैतिक औचित्य नहीं है।"

गांधीजी ने लौटती डाक से इसका उत्तर भेज दिया। उन्होंने लिखा—"यद्यपि आपने मेरे उपवास को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस बतलाया है, तथापि मेरे लिए तो यह उस न्याय के वास्ते सर्वोच्च अदालत को अपील है, जिसे मैं आपसे प्राप्त नहीं कर सका हूं।"

उपवास शुरू होने के दो दिन पूर्व सरकार उपवास के समय के लिए गांधीजी को छोड़ने को तैयार हो गई। गांधीजी ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि जेल से छूटने पर वह उपवास नहीं करेंगे। इस पर सरकार ने घोषणा की कि जो कुछ परिणाम होगा, उसकी जिम्मेदारी गांधीजी पर होगी। परंतु वह जेल में जिन डाक्टरों को तथा बाहर के मित्रों को बुलाना चाहें, बुला सकते हैं।

उपवास १० फरवरी को, घोषणा की हुई तारीख के एक दिन बाद, शुरू

हुआ। पहले दिन गांधीजी काफी प्रसन्न थे और दो दिन तक वह सुबह और शाम आधा घंटा घूमने भी जाते रहे। परंतु शीघ्र ही उनके स्वास्थ्य की बुलेटिनें चिंता उत्पन्न करने लगीं। छठे दिन छः डाक्टरों ने बयान दिया कि गांधीजी की हालत ज्यादा गिर गई है। दूसरे दिन वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल के तीन सदस्यों—सर होमी मोदी, श्री नलिनीरंजन सरकार और श्री अणे—ने सरकार के उस दोषारोपण के विरोध में कौंसिल से त्यागपत्र दे दिये, जिसके कारण गांधीजी को उपवास करना पड़ा था। महात्माजी को छोड़ने के लिए देश भर में मांग होने लगी। ग्यारह दिन बाद लिनलिथगो ने गांधीजी की रिहाई के तमाम प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

गांधीजी की परिचर्या के लिए कलकत्ता से डा० विधानचंद्र राय आ गये। अंग्रेज डाक्टरों ने सलाह दी कि महात्माजी को बचाने के लिए इंजेक्शनों के द्वारा उनके शरीर में खुराक पहुंचाई जाय। भारतीय डाक्टरों ने कहा कि इससे उनकी मृत्यु हो जायगी। गांधीजी इंजेक्शनों के विरुद्ध थे। वह इन्हें हिंसा मानते थे।

यरवडा पर भीड़ जमा होने लगी। सरकार ने जनता को महल के मैदान में जाने की और गांधीजी के कमरे में कतार बांधकर निकलने की अनुमति दे दी। देवदास और रामदास भी आ पहुंचे।

इंग्लैंड की भारत मित्र समिति के होरेस अलेक्जेंडर ने बीच में पड़कर सरकार से बातचीत करने का प्रयत्न किया। इन्हें झिड़की दे दी गई। श्री अणे मरणासन्न महात्माजी से मिलने आये।

गांधीजी नमक या फलों का रस मिलाये बिना पानी ले रहे थे। उनके गुर्दे जवाब देने लगे और खून गाढ़ा होने लगा। तेरहवें दिन नब्ज कमजोर पड़ गई और चमड़ी ठंडी और गीली हो गई।

आखिरकार महात्माजी को इस बात पर राजी कर लिया गया कि उनके पीने के पानी में मुसंबी के ताजे रस की कुछ बूंदें मिला दी जायं। इससे उलटियां बंद हो गईं। गांधीजी प्रसन्न दिखाई देने लगे।

२ मार्च को उपवास की समाप्ति पर कस्तूरबा ने गांधीजी को एक गिलास में तीन छटांक नारंगी का रस पानी मिलाकर दिया। वह बीस मिनट तक घूंट-घूंट करके इसे पीते रहे। उन्होंने डाक्टरों को धन्यवाद दिया और धन्यवाद देते समय रो पड़े। आगामी चार दिन तक गांधीजी ने केवल नारंगी का रस लिया,

फिर बकरी के दूध, फलों के रस और फलों के गूदे पर आ गये। उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा।

भारत के प्रमुख गैर-कांग्रेसी नेताओं ने अब गांधीजी की रिहाई के लिए तथा सरकार द्वारा समझौते की नई नीति अपनाई जाने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया। सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य लोगों ने गांधीजी से मिलने की अनुमति मांगी। लिनलिथगो ने इन्कार कर दिया।

२५ अप्रैल को, भारत में रूज़वेल्ट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि विलियम फिलिप्सन, अमरीका लौटने से पूर्व, विदेशी संवाददाताओं को बताया—"मैं चाहता था कि गांधीजी से मिलूं और बातचीत करूं। इसके लिए मैंने संबंधित अधिकारियों से अनुमति देने की प्रार्थना की, परंतु मुझे सूचना दी गई कि आवश्यक अनुमति नहीं दी जा सकती।"

लिनलिथगो के व्यवहार ने गांधीजी के हृदय में कटुता उत्पन्न कर दी, जो उनके स्वभाव में नहीं थी। जब वाइसराय अपना बढ़ा हुआ कार्यकाल पूरा करके जाने की तैयारी में थे, तो २७ सितंबर १९४३ को गांधीजी ने उन्हें लिखा :

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

"भारत से आपकी बिदाई के समय मैं आपसे कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

"जिन उच्च अधिकारियों से परिचय का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ है, उन सबमें आपके कारण मुझे जितना गहरा दुख हुआ है, उतना और किसीके कारण नहीं हुआ। इस खयाल ने मुझे बहुत चोट पहुंचाई है कि आपने झूठ को प्रश्रय दिया और वह भी ऐसे व्यक्ति के बारे में, जिसे किसी समय आप अपना मित्र समझते थे। मैं आशा और प्रार्थना करता हूं कि किसी दिन ईश्वर आपको यह महसूस करने की बुद्धि दे कि एक महान राष्ट्र के प्रतिनिधि होकर आप गंभीर गलती में पड़ गये।

"सद्भावनाओं के साथ,

मैं अभी तक हूं
आपका मित्र
मो० क० गांधी"

लिनलिथगो ने ७ अक्तूबर को उत्तर दिया :

"प्रिय श्री गांधी,

"मुझे आपका २७ सितंबर का पत्र मिला। मुझे वास्तव में खेद है कि मेरे किन्हीं कार्यों अथवा शब्दों के बारे में आपकी वे भावनाएं हैं, जो आपने बयान की

हैं। परंतु मैं, जितनी नम्रता से हो सकता है, आपको स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि प्रस्तुत घटनाओं के संबंध में मैं आपकी व्याख्या स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

"जहां तक समय तथा विचारणा के शोधक गुणों का संबंध है, ये तो अपने प्रभाव में स्पष्टतया सार्वत्रिक हैं और कोई भी बुद्धिमान इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

मैं हूं,
आपका
लिनलिथगो"

गांधीजी के लिए जेल में यों रहना एक बेचैनी भरी ट्रैजडी थी, जिसमें कोई राहत नहीं थी। व्यापक हिंसा ने तथा उसे रोकने की असमर्थता ने उन्हें व्याकुल कर दिया था।

व्यक्तिगत क्षति ने इस दुख को और भी गहरा कर दिया। आगाखां महल में आने के छः दिन बाद ही महादेव देसाई को अकस्मात दिल का दौरा हुआ और वह बेहोश हो गये।

गांधीजी ने पुकारा—"महादेव, महादेव !"

"महादेव, देखो, बापू तुम्हें पुकार रहें है," कस्तूरबा ने चिल्लाकर कहा।

परंतु महादेव का प्राणांत हो चुका था।

इस मृत्यु से महात्माजी को भारी आघात पहुंचा। महल के मैदान में जिस स्थान पर महादेव देसाई की अस्थियां गाड़ी गई थीं, वहां वह रोज जाते थे।

शीघ्र ही इससे भी गहरे व्यक्तिगत शोक ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया।

कस्तूरबा बहुत दिनों से बीमार थीं और दिसंबर १९४३ में श्वास नली का प्रदाह पुराना पड़ जाने से उनकी हालत गंभीर हो गई। डा० गिल्डर तथा डा० सुशीला नैयर उनकी चिकित्सा कर रहे थे, परंतु कस्तूरबा ने प्राकृतिक चिकित्सक डा० दीनशा मेहता को बुलाना चाहा। उन्होंने कई दिन तक सारे उपचार किये। अंत में जब वह हार मान गये, तो डा० गिल्डर, डा० नैयर तथा डा० जीवराज मेहता ने अपने प्रयत्न फिर चालू किये। परंतु ये भी असफल रहे। सरकार ने उनके पुत्रों तथा पौत्रों को उनसे मिलने की अनुमति दे दी। बा ने अपने सबसे बड़े पुत्र हरिलाल गांधी से खासतौर पर मिलने की इच्छा प्रकट की।

गांधीजी घंटों तक बा के बिस्तर के पास बैठे रहे। उन्होंने सब दवाइयां रोका दीं और शहद तथा पानी के सिवा सब खूराक बंद करा दीं। उन्होंने कहा—"यदि

ईश्वर की इच्छा होगी तो यह अच्छी हो जायगी, नहीं तो मैं इसे जाने दूंगा, परंतु अब और दवाइयां नहीं दूंगा ।"

पेनिसिलिन, जो उस समय भारत में दुष्प्राप्य थी, हवाई जहाज द्वारा कलकत्ते से मंगवाई गई। देवदास ने इसके लिए बहुत जोर दिया था।

गांधीजी को मालूम नहीं था कि पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगाया जाता है। मालूम होने पर उन्होंने इसे रोक दिया। २१ फरवरी को हरिलाल गांधी आ गये। वह नशे में थे और कस्तूरबा के सामने से उन्हें जबरदस्ती हटाया गया। बा रोने लगीं और अपना माथा पीटने लगीं। (हरिलाल अपने पिता की अंत्येष्ठि में बेपहचाने शामिल हुए थे और उस रात देवदास के पास ठहरे थे। १९ जून १९४८ को बंबई के क्षय-चिकित्सालय में इस परित्यक्त की मृत्यु हो गई।)

दूसरे दिन गांधीजी की गोद में सिर रखे हुए कस्तूरबा ने प्राण त्याग दिये। देवदास ने चिता में आग दी। अस्थियां महादेव देसाई की अस्थियों के पास गाड़ दी गईं।

अंत्येष्ठि के बाद गांधीजी अपने बिस्तर पर चुपचाप बैठ गये और समय-समय पर जैसे विचार आते गये वह कहते गये—"बा के बिना मैं जीवन की कल्पना नहीं कर सकता।...उसकी मृत्यु से जो जगह खाली हुई है, वह कभी नहीं भरेगी। ...हम दोनों बासठ वर्ष तक साथ रहे।...और वह मेरी गोद में मरी। इससे अच्छा क्या होता ? मैं हद से ज्यादा खुश हूं।"

कस्तूरबा की मृत्यु के छः सप्ताह बाद गांधीजी को सख्त मलेरिया ने घेर लिया और उन्हें सन्निपात हो गया। बुखार १०५ डिगरी तक चढ़ गया। शुरू में उन्होंने सोचा था कि फलों के रस से और उपवास से इसका इलाज हो जायगा, इसलिए उन्होंने कुनैन लेने से इन्कार कर दिया। परंतु दो दिन बाद वह ढीले पड़ गये। दो दिन में उन्हें कुल तैंतीस ग्रेन कुनैन दी गई और बुखार जाता रहा।

३ मई को गांधीजी के चिकित्सकों ने बुलेटिन निकाला कि उनकी रक्तहीनता बढ़ गई है और उनका रक्त-चाप गिर गया है। "उनकी साधारण अवस्था फिर गंभीर चिंता उत्पन्न कर रही है।" भारत भर में उनकी रिहाई के लिए आंदोलन फैल गया। ६ मई को सुबह ८ बजे गांधीजी और उनके साथी रिहा कर दिये गये। बाद की परीक्षा से पता लगा कि उनकी आंतों में हुकवर्म तथा पेचिश के कीटाणु थे।

जेल में गांधीजी का यह अंतिम निवास था। कुल मिलाकर वह २०८९ दिन

भारत की जेलों में और २४९ दिन दक्षिण अफरीका की जेलों में रहे।

जेल से छूटने के बाद गांधीजी बंबई के पास जुहू में समुद्र-तट पर शांतिकुमार मुरारजी के घर में ठहरे।

श्रीमती मुरारजी ने एक चलचित्र देखने का सुझाव रखा। गांधीजी ने जीवन में कोई चलचित्र नहीं देखा था। बहुत-कुछ कहने पर वह राजी हो गये। वहीं घर पर उन्हें 'मिशन टु मास्को' नामक फिल्म दिखाई गई।

"आपको कैसी लगी ?" मुरारजी ने पूछा।

"मुझे पसंद नहीं आई," गांधीजी ने उत्तर दिया। उन्हें बालरूम का नाच और स्त्रियों के संक्षिप्त वस्त्र पसंद नहीं आये। फिर उन्हें एक भारतीय चलचित्र 'रामराज्य' दिखाया गया।

डाक्टर लोग गांधीजी का इलाज कर रहे थे और गांधीजी मौन के द्वारा खुद अपना इलाज कर रहे थे। शुरू में उन्होंने पूर्ण मौन रखा, कुछ सप्ताह बाद वह शाम को ४ बजे से ८ बजे तक बोलने लगे। यह प्रार्थना का समय था।

कुछ सप्ताह बाद वह फिर कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े।

: २२ :

जिन्ना और गांधी

मोहम्मदअली जिन्ना, जो अपने को गांधीजी के मुकाबले का समझते थे, बंबई में संगमरमर की एक विशाल अर्द्ध-चंद्राकार कोठी में रहते थे। यह कोठी उन्होंने द्वितीय महायुद्ध के समय में बनवाई थी और १९४२ में जब मैं उनसे मिला, तो उन्होंने कैफियत देते हुए कहा कि अभी तक यह पूरी तरह सजी नहीं है।

जिन्ना की ऊंचाई छः फुट से ऊपर थी और वजन नौ स्टोन था[1]। वह बहुत ही दुबले-पतले थे। उनका सुगठित सिर सफेद बालों से ढका हुआ था, जो पीछे की ओर बाये हुए थे। उनका घुटा हुआ चेहरा पतला था, नाक लंबी और नोकदार थी। कनपटियां धंसी हुई और गालों में गहरे गड्ढे थे, जिनके कारण गालों की हड्डियां उभरी हुई नजर आती थीं। दांत खराब थे। जब वह बोलते नहीं थे, तो ठोड़ी को नीचे दबा लेते थे, होठ भींच लेते, बड़ी-बड़ी भौहों में बल डाल लेते। परिणाम-

---

१. एक स्टोन १४ पौंड अर्थात करीब ७ सेर का होता है।

स्वरूप उनके चेहरे पर निषेध करनेवाली गंभीरता आ जाती थी। हंसते तो वह शायद ही कभी हों।

मैंने जिन्ना को सुझाया कि धार्मिक विद्वेष, राष्ट्रीयता और सीमाओं ने मानवता को संतप्त कर दिया है और युद्ध कराया है, संसार को समरसता की आवश्यकता है, नये-नये अनैक्यों की नहीं।

"आप तो आदर्शवादी हैं," जिन्ना ने उत्तर दिया—"मैं व्यवहारवादी हूं। मैं तो जो है, उसीको लेता हूं। मिसाल के लिए, फ्रांस और इटली को ही ले लीजिये। इनके रीति-रिवाज और मजहब एक हैं। इनकी जुबानें भी एक-सी हैं। फिर भी ये अलग-अलग हैं।"

"तो क्या आप यहां भी वही गड़बड़-घोटाला पैदा करना चाहते हैं, जो यूरोप में है ?" मैंने पूछा।

"मुझे तो उन विभेदक विशेषताओं का सामना करना होगा, जो मौजूद हैं," उन्होंने कहा।

जिन्ना धर्मनिष्ठ मुसलमान नहीं थे। वह शराब पीते थे और सुअर का मांस खाते थे, जो इस्लामी शरिअत के खिलाफ है। वह शायद ही कभी मस्जिद में जाते हों और न अरबी जानते थे, न उर्दू। चालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने धर्म से बाहर एक अठारह-वर्षीय पारसी युवती से विवाह किया। दूसरी ओर, जब उनकी इकलौती सुंदर पुत्री ने एक ईसाई बने हुए पारसी से विवाह किया, तो उन्होंने उसे त्याग दिया। उनकी पत्नी भी उन्हें छोड़ गई और कुछ ही दिन बाद १९२९ में मर गई। पिछले वर्षों में उनकी बहन फातिमा, जो दांतों की डाक्टर थी और उन्हींकी शक्ल-सूरत की थी, उनकी सदा की साथिन और सलाहकार बन गई।

अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में जिन्ना ने हिंदुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया। १९१७ में, मुस्लिम लीग के जलसे में हिंदुओं के कथित प्रभुत्व पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"डरो मत। यह एक हौवा है, जो आपको इसलिए दिखाया गया है कि आप उस सहयोग और एके से डरकर भाग जायें, जो निजी हुकूमत के लिए जरूरी है।"

जिन्ना कभी कांग्रेस के नेता थे। उनके घर पर हुई दो में से पहली मुलाकात में उन्होंने मुझसे कहा—"होमरूल लीग में नेहरू ने मेरे मातहत काम किया। गांधी ने भी मेरे मातहत काम किया। जब मुस्लिम लीग बनी, तो मैंने कांग्रेस को राजी किया कि वह हिंदुस्तान की आजादी के रास्ते में एक कदम के तौर पर लीग को

मुबारकबाद दे। १९१५ में मैंने बंबई में लीग और कांग्रेस के जलसे एक ही वक्त रखवाये, ताकि एके का जज़्बा पैदा हो। अंग्रेजों ने इस एके में खतरा देखकर खुली सभा भंग करवा दी। मेरा मकसद हिंदू-मुस्लिम एका था। इसलिए बैठक बंद जगह में हुई। १९१६ में मैंने लखनऊ में दोनों के जलसे एक साथ करवाये और लखनऊ-समझौता कराने में मेरा ही हाथ था। १९२० तक, जब गांधी रोशनी में आये, यही हालत थी। अब हिंदू-मुस्लिम संबंध बिगड़ने लगे। १९३१ में गोलमेज परिषद में मुझे यह साफ दीखने लगा कि एके की उम्मीद फिजूल है, गांधी यह नहीं चाहते। मैं मायूस हो गया। मैंने इंग्लैंड में ही रहने का इरादा कर लिया। १९३५ तक मैं वहीं रहा। हिंदुस्तान लौटने का मेरा इरादा नहीं था। लेकिन हर साल हिंदुस्तान से आनेवाले दोस्त मुझे हालत बतलाते थे और कहते थे कि मैं बहुत-कुछ कर सकता हूं। आखिर मैंने हिंदुस्तान वापस आने का इरादा किया।"

जिन्ना एक सांस में ताव के साथ ये सब बातें कह गये। कुछ ठहरकर और सिगरेट का कश लगाकर उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"ये सब बातें मैं आपको यह बताने के लिए कह रहा हूं कि गांधी आजादी नहीं चाहते। वह नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जायें। वह तो सबसे पहले हिंदू हैं। नेहरू नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जायें। ये दोनों 'हिंदू राज' चाहते हैं।"

'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता जार्ज ई० जॉन्स, जो जिन्ना से कई बार मिले थे, अपनी पुस्तक 'ट्यूमल्ट इन इंडिया' में लिखते हैं—"जिन्ना एक उत्कृष्ट राजनैतिक कारीगर हैं, यह मैकियावेली[1] की नीतिशून्य परिभाषा में आते हैं।... उनकी व्यक्तिगत कमियां हैं—कुछ अमैत्रीपूर्ण एकांतिकता, अहंकार तथा तंग दृष्टिकोण। वह बहुत ही संशयी व्यक्ति हैं, जो यह समझते हैं कि जीवन में अनेक बार उनके साथ अन्याय हुआ है। उनकी दलित तीव्रता मानसिक रोग की सीमा पर पहुंच गई है। अपने ही में रमे हुए और दूसरों से विलग जिन्ना इतने घमंडी हैं कि अशिष्ट बन गये हैं।"

जिन्ना के सिवा मुस्लिम लीग के सारे अगुआ लोग बड़े-बड़े जागीरदार, जमींदार और नवाब थे। मुस्लिम लीग को चंदा देनेवाले इन जमींदारों ने मुसलमान किसानों को हिंदू किसानों से जुदा करने के लिए मजहब का सहारा लिया।

मुसलमानों का उच्च-वर्ग (जमींदार लोग) और मध्यम-वर्ग जिन्ना के लिए

---

१. मध्य-यूगीन इटली का एक कटनीतिज्ञ।

तैयार था, लेकिन अपनी संख्या बढ़ाने के लिए उन्हें किसानों की जरूरत थी। उन्हें जल्दी पता लग गया कि मजहबी जोश उभाड़कर वह मुसलमान किसानों को मिला सकते हैं। इसका गुर था पाकिस्तान, मुसलमानों का अलग राज्य।

जिन्ना की सूझ के पाकिस्तान में छः करोड़ मुसलमान शामिल थे, जो मुस्लिम बहुमतवाले प्रांतों में बसे हुए थे और हिंदू प्रभुत्व से बचे हुए थे। लेकिन ऐसा पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए जिन्ना को मुसलमानों की मजहबी और राष्ट्रवादी भावनाएं उभाड़ना जरूरी था और बदले में यह खतरा उठाना भी जरूरी था कि हिंदू बहुमतवाले प्रांतों में हिंदुओं की भावनाएं भी इसी तरह उभड़ जायं और उनमें रहनेवाले मुसलमानों को हानि उठानी पड़े।

जिन्ना यह दांव खेलने को तैयार हो गये।

धर्मविहीन जिन्ना एक धार्मिक राज्य बनाना चाहते थे। पूर्णतया धार्मिक गांधी एक धर्म-निरपेक्ष राज्य चाहते थे।

इसमें संदेह नहीं कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक संबंधों को आपसी मनोबल और आपसी रियायतें दरकार थीं। गांधीजी को मनुष्य के स्वभाव में इतना विश्वास था कि वह समझते थे कि धैर्य के साथ यह संभव है।

इसके विपरीत जिन्ना तुरंत दो टुकड़े चाहते थे। गांधीजी राष्ट्रीयता की लेही से भारत को एक करना चाहते थे, जिन्ना धर्म की बारूद का उपयोग करके उसके दो टुकड़े करना चाहते थे।

१९४४ में जेल से रिहाई के समय से लेकर १९४८ में मृत्यु के समय तक, विभाजन की दुखांत घटना गांधीजी के सिर पर लटकी रही।

जून १९४४ में जब गांधीजी बीमारी के बाद कुछ स्वस्थ हुए, तो वह राजनैतिक अखाड़े में फिर उतर आये। उन्होंने मुलाकात के लिए वाइसराय वेवल को लिखा। वेवल ने उत्तर दिया—"हमारे दोनों के दृष्टिकोणों के बीच मूलभूत मतभेद का विचार करते हुए फिलहाल हमारा मिलना किसी अर्थ का नहीं हो सकता।"

तब गांधीजी ने अपना ध्यान जिन्ना पर केंद्रित किया। गांधीजी सदा से महसूस करते थे कि यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो जाय, तो इंग्लैंड को भारत की स्वाधीनता देनी पड़ेगी।

राजगोपालाचारी की प्रेरणा से गांधीजी ने १७ जुलाई को जिन्ना को पत्र लिखा, जिसमें आपसी बातचीत का सुझाव था।

लंबा-चौड़ा पत्र-व्यवहार हुआ। गांधीजी और जिन्ना की बातचीत ९ सितंबर को शुरू हुई और २६ सितंबर को टूट गई। इसके बाद सारा पत्र-व्यवहार समाचार पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया।

गांधीजी और जिन्ना के बीच दीवार थी दो राष्ट्रों का सिद्धांत।

"क्या हम 'दो राष्ट्रों' के प्रश्न पर मतभेद के बारे में एकमत नहीं हो सकते और फिर इस समस्या को आत्म-निर्णय के आधार पर हल नहीं कर सकते ?" गांधीजी ने दलील दी।

गांधीजी का सुझाव था कि मुस्लिम बहुमतवाले बलूचिस्तान, सिंध तथा सीमांत प्रांत में; और बंगाल, आसाम तथा पंजाब के हिस्सों में, भारत से विलग होने के बारे में मत लिये जायं। अगर विलग होने के पक्ष में मत आयें, तो यह करार कर लिया जाय कि भारत आजाद हो जाने के बाद जल्दी-से-जल्दी इनका एक अलग राज्य बना दिया जाय।

जिन्ना ने तीन बार 'नहीं' कहा। वह अंग्रेजों के भारत में रहते हुए विभाजन चाहते थे। मत लेने की उनकी निराली योजना थी। वह चाहते थे कि विलग होने के प्रश्न का निपटारा केवल मुसलमानों के बहुमत से किया जाय। स्पष्ट है कि गांधीजी जिन्ना के इस सुझाव को नहीं मान सकते थे।

वाशिंगटन के ब्रिटिश दूतावास द्वारा संकलित गांधी-जिन्ना बातचीत संबंधी खरीते में लिखा है—"मि० जिन्ना मजबूत स्थिति में हैं। उनके पास देने को वह चीज है, जिसकी मि० गांधी को बेहद और फौरन जरूरत है, अर्थात अधिकार का एक महत्वपूर्ण भाग तुरंत देने के वास्ते ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के लिए मुसलमानों का सहयोग।... इसके विपरीत मि० गांधी के पास देने को कोई चीज नहीं है, जिसके लिए मि० जिन्ना ठहर न सकते हों। मि० जिन्ना की निगाह में एक या दो साल पहले स्वाधीनता की संभावना मुसलमानों की सुरक्षा के मुकाबले में कुछ नहीं है।"

एक चतुर सौदेबाज के पैंतरों का यह चतुर विश्लेषण है। जिन्ना स्वाधीनता के लिए ठहर सकते थे। गांधीजी समझते थे कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय यही है।

इस समय इतिहास ने बीच में आकर जिन्ना के मनसूबे बिगाड़ दिये। और फिर काबिल जिन्ना ने इतिहास बिगाड़ दिया।

तीसरा भाग

दो राष्ट्रों का उदय

: १ :

स्वाधीनता के द्वार पर

३० अगस्त १९४४ को मैं वेंडल विल्की से उनके दफ्तर में, जो न्यूयार्क बंदरगाह के किनारे था, मिला। वह नेक आदमी थे। सितंबर १९४४ में उनकी मृत्यु से अमरीका की एक अमूल्य निधि चली गई। उन्होंने कहा था—"युद्ध तो दस में से सात हिस्से जीता जा चुका है, परंतु शांति दस में से नौ हिस्से हारी जा चुकी है।" उन्होंने सारे पूर्व का दौरा किया था और यूरोप तथा एशिया के बीच, गोरे तथा काले आदमियों के बीच, स्वतंत्र लोगों तथा औपनिवेशिक पराधीनों के बीच पुराने संघर्षों को स्थायी होते हुए देखा था। वह महसूस करते थे कि या तो नया विश्व बनेगा या नया विश्व-युद्ध होगा।

दूसरे लोग भी अनुभव करने लगे थे कि अधिनायकशाही के विरुद्ध युद्ध से आजादी के क्षेत्र को विस्तृत करने का नैतिक कर्तव्य उत्पन्न हो जाता है।

ज्यों-ज्यों इंग्लैंड विजय के निकट पहुंचता जा रहा था, त्यों-त्यों स्पष्ट होता जाता था कि भारत में राजनैतिक परिवर्तनों को टाला नहीं जा सकता।

१९४५ तक भारत इतना मुंहजोर हो चुका था कि उसे काबू में नहीं रखा जा सकता था और इंग्लैंड ने युद्ध में इतना भारी नुक्सान उठाया था कि गांधीजी के साथ दूसरी अहिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए, या गांधीजी काबू खो बैठें, तो हिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए, जन तथा धन का जो जबरदस्त खर्च जरूरी होता, उसका वह इरादा भी नहीं कर सकता था।

लार्ड वेवल को तो यह चीज खासतौर पर नजर आने लगी थी। भारत सचिव लियोपोल्ड एस० एमरी ने १४ जून १९४५ को ब्रिटिश लोक सभा में कहा था—"भारतीय शासन, जिस पर जापान के विरुद्ध युद्ध ने तथा युद्धोत्तर नियोजन ने महान कार्यों का भारी बोझ डाल दिया है, अब वर्तमान राजनैतिक तनाव से और भी अधिक दब गया है।" इस भारतीय शासन के निर्देशक वेवल थे।

वेवल एक सेनानायक, कवि और असाधारण व्यक्ति थे।

१९४४ में चर्चिल ने वेवल को वाइसराय नियुक्त किया।

मार्च १९४५ में वेवल लंदन गये।

लंदन के 'टाइम्स' ने २० मार्च १६४५ को अपने संपादकीय लेख में भारत के बारे में अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए लिखा था—"लोगों में व्यापक विश्वास फैला हुआ है कि इस देश को राजनैतिक पहल फिर से शुरू करनी चाहिए।... पहला सुझाव तो यह है कि भारवासियों को पूर्ण सत्ता हस्तांतरित किये जाने की तैयारी के लिए सरकारी मशीन का ढांचा, कर्मचारियों की नियुक्ति तथा सरकारी पद्धति बदलनी चाहिए। दूसरे, भारत के दलों तथा हितों को आज जुदा करनेवाले आपसी विरोधों का लगातार कायम रहना अंग्रेजी तथा भारतीय राजनीतिज्ञता के लिए लज्जा की बात है।..."

इंग्लैंड का जनमत, यहां तक कि कट्टर जनमत भी, भारत के बारे में चर्चिल की हठधर्मी-युक्त अचल स्थिति का साथ छोड़ता जा रहा था।

वेवल लंदन में लगभग दो महीने ठहरे। भविष्यवक्ता लोग इंग्लैंड के आसन्न आम चुनावों में मजदूर दल की विजय की भविष्यवाणी कर रहे थे। विदेश नीति आमतौर पर घरू नीति का प्रतिबिंब हुआ करती है और वेवल के कार्यकाल के अभी चार वर्ष बाकी थे।

अप्रैल १६४५ में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र का मसविदा बनाने के लिए होनेवाली सान फ्रांसिस्को-कान्फ्रेंस से पहले भारतीय तथा विदेशी संवाददाताओं ने महात्माजी से वक्तव्य मांगा। गांधीजी ने दृढ़ता से कहा—"भारत की राष्ट्रीयता का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीयता। जबतक मित्रराष्ट्र युद्ध की प्रभावकारी शक्ति में तथा उसके साथ चलनेवाली धोखा-धड़ी और जालसाजी में विश्वास नहीं त्याग देते और जबतक वे सब जातियों तथा राष्ट्रों की आजादी तथा समानता पर आधारित सच्ची शांति गढ़ने के लिए दृढ़-संकल्प नहीं होते, तबतक न तो मित्रराष्ट्रों के लिए शांति है, न संसार के लिए।...भारत की आजादी संसार की सब शोषित जातियों को प्रदर्शित कर देगी कि उनकी आजादी निकट है और आगे से किसी भी हालत में उनका शोषण नहीं किया जायेगा।"

"शांति औचित्यपूर्ण होनी चाहिए।" गांधीजी ने आगे कहा—"उसमें न तो दंड और न ही बदले की भावना के लिए स्थान होना चाहिए। जर्मनी और जापान अपमानित नहीं होने चाहिएं। सशक्त कभी बदले की भावना नहीं रखता। इसलिए शांति के फल का समान वितरण होना चाहिए। तब प्रयत्न उनको मित्र बनाने का होगा। मित्रराष्ट्र अपने लोकतंत्र को अन्य किसी उपाय से सिद्ध नहीं कर सकते।" लेकिन उन्हें डर था कि सान फ्रांसिस्को-कान्फ्रेंस के पीछे अविश्वास

श्रौर भय की घटाएं थीं, जो लड़ाई को जन्म देती हैं।

गांधीजी जानते थे कि श्राजादी शांति की जुड़वां बहन है श्रौर निर्भयता दोनों की जननी है। इसमें किसे शक था कि १९६० से पहले भारत श्राजाद हो जायगा श्रौर साथ ही अधिकांश दक्षिण-पूर्व एशिया भी ? इसमें किसे शक था कि यदि ये श्राजाद नहीं हुए, तो पश्चिम का जीवन भयानक स्वप्न बन जायगा श्रौर यूरोप का पुनरुत्थान असंभव हो जायगा ?

ये विचार भारत के प्रति इंग्लैंड के रुख का निर्माण करने लगे थे।

वेवल भारत के लिए एक नई योजना पर ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेकर नई दिल्ली वापस श्राये श्रौर १४ जून को उन्होंने इसे श्राकाशवाणी से प्रसारित किया। उसी दिन उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम श्राज़ाद को तथा जवाहरलाल नेहरू श्रौर अन्य नेताश्रों को छोड़ दिया। २५ जून को उन्होंने भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों को शिमला बुलाया।

कांग्रेस के नेता जाने के लिए राजी हो गये। जिन्ना मुस्लिम लीग के अध्यक्ष की हैसियत से श्रौर लियाकतअली खां उसके मंत्री की हैसियत से शामिल हुए। खिज्रहयात खां श्रौर ख्वाजा नाज़िमुद्दीन को अपने-अपने प्रांतों के भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों की हैसियत से निमंत्रण दिया गया। इसके अतिरिक्त मास्टर तारासिंह सिखों के प्रतिनिधि थे श्रौर श्री शिवराज हरिजनों के। गांधीजी प्रतिनिधि तो नहीं थे, परंतु वह शिमला गये श्रौर जब तक चर्चाएं चलती रहीं, तब तक वहां रहे।

वेवल-योजना के अनुसार वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल में केवल दो अंग्रेज रखे गये थे—वाइसराय तथा प्रधान सेनापति। बाकी सब भारतीय होते। इस प्रकार विदेशी मामले, वित्त, पुलिस श्रादि विभाग भारतीयों के हाथ में रहते।

परंतु फिर भी शिमला-सम्मेलन असफल हो गया। वेवल ने इसके लिए जिन्ना को दोषी ठहराया।

वेवल-योजना में यह विधान था कि वाइसराय की कौंसिल में मुसलमानों तथा सवर्ण हिंदुश्रों का समान अनुपात हो। कांग्रेस को इस पर श्रापत्ति थी, परंतु कांग्रेस समझौते के लिए इतनी उत्सुक थी कि उसने इस नुस्खे को मान लिया।

वेवल ने तब दलों के नेताश्रों से उनकी सूचियां मांगी। जिन्ना के सिवा सबने सूचियां भेज दीं।

जिन्ना ने शिमला-सम्मेलन को ध्वंस किया, इसका एक कारण नजर श्राया।

उन्होंने इसरार किया कि वाइसराय की कौंसिल के तमाम मुसलमान-सदस्यों को मुसलमानों के नेता होने के नाते वह नामजद करें।

मुस्लिम-भारत का प्रतिनिधि होने के जिन्ना के दावे को न तो वेवल कबूल कर सकते थे, न गांधीजी, जो पर्दे के पीछे से कांग्रेस की नीति का संचालन कर रहे थे।

शिमला-सम्मेलन की नौका इस चट्टान से टकराकर डूब गई। भारत के तथा इंग्लैंड के अंग्रेज अधिकारी जिन्ना के सहयोग के बिना कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं हुए।

शिमला-सम्मेलन के दौरान में यूरोप में युद्ध का अंत हो गया था। २६ जुलाई को मजदूर दल ने अनुदार दल को निश्चित रूप से हरा दिया, विन्स्टन चर्चिल के स्थान पर क्लिमेंट आर० एटली प्रधान मंत्री बने।

१४ अगस्त को महान शक्तियों ने जापान का आत्म-समर्पण स्वीकार कर लिया।

इंग्लैंड की मजदूर सरकार ने तुरंत घोषणा की कि वह 'भारत में स्व-शासन की शीघ्र प्राप्ति' कराना चाहती है और वेवल को लंदन बुलाया। मजदूर सरकार के निश्चयों की १९ सितंबर १९४५ को एटली ने लंदन से और वेवल ने नई दिल्ली से घोषणा की।

कांग्रेस कार्य-समिति ने इन प्रस्तावों को 'अस्पष्ट, अपर्याप्त और असंतोष-जनक' समझा, परंतु सरकार का रुख मेल करने का था।

सारे दल चुनाव लड़ने के लिए तैयार हो गये।

विधानमंडलों में गैर-मुस्लिम स्थानों पर कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और मुस्लिम स्थानों पर मुस्लिम लीग को।

गतिरोध भंग नहीं हुआ।

दिसंबर १९४५ में कलकत्ता में बोलते हुए वेवल ने भारत के लोगों से अपील की कि जब वह 'राजनैतिक तथा आर्थिक अवसर के द्वार पर' खड़े हैं, तो उन्हें झगड़े तथा हिंसा से बचना चाहिए।

गांधीजी भी कलकत्ता में ही थे। उन्होंने बंगाल के अंग्रेज गवर्नर रिचर्ड केसी के साथ कई घंटे बिताये। उन्होंने वाइसराय से भी एक घंटा बातचीत की। जब वह वाइसराय-भवन से निकले, तो विशाल भीड़ ने उनका रास्ता रोक लिया कि जबतक वह भाषण नहीं देंगे, तबतक कार को आगे नहीं बढ़ने दिया जायगा। वह

कार में खड़े हो गये और बोले—"शांति के अपने संदेश के कारण ही भारत ने पूर्व में महान प्रतिष्ठा प्राप्त की है।" इसके बाद भीड़ ने उनके लिए रास्ता बना दिया।

उसी दिन जिन्ना ने बंबई में वक्तव्य दिया—"हम भारत की समस्या को दस मिनट में हल कर सकते थे—यदि मि० गांधी कह देते 'मैं मानता हूं कि पाकिस्तान होना चाहिए। मैं मानता हूं कि भारत का एक-चौथाई भाग, जिसमें छः प्रांत—सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब और सीमा प्रांत—शामिल हैं, इन प्रांतों की मौजूदा सीमाओं के साथ पाकिस्तान बनता है।' "

परंतु गांधीजी यह नहीं कह सकते थे, न उन्होंने यह कहा ही। वह तो भारत के अंग-भंग को घोर पाप मानते थे।

: २ :

भारत दुविधा में

गांधीजी कहा करते थे कि वह सवासौ वर्ष जीना चाहते हैं, लेकिन न तो 'चलती-फिरती लाश होकर और न अपने कुटुंबियों तथा समाज पर भार होकर'। पहले उन्होंने बतलाया कि वह शरीर से स्वस्थ कैसे बने रहे। १६०१ में उन्होंने दवा की शीशी फेंक दी और उसके बजाय प्राकृतिक चिकित्सा तथा नियमित आहार-विहार की शरण ली। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने 'अनासक्ति' की साधना की, जो दीर्घायु की कुंजी है। गांधीजी कहते थे—"हरएक को फल की इच्छा किये बिना कर्म करते हुए सवासौ वर्ष जीने का अधिकार है और जीने की इच्छा करनी चाहिए।" कर्म में प्रवृत्ति परंतु उसके फल से निवृत्ति 'वर्णनातीत आनंद' है, 'अमृत' है, जो जीवनदाता है। इससे 'उद्विग्नता अथवा अधीरता' के लिए कोई स्थान नहीं रहता। अहंकार मृत्यु है, स्वार्थ त्याग जीवन है।

गांधीजी ने एक नया ध्येय हाथ में लिया—निसर्गोपचार। उसे वह अपना 'हाल का पैदा हुआ बच्चा' कहते थे। दूसरे बड़े बच्चे भी—खादी, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय भाषा का विकास, अन्न-उत्पादन, भारत के लिए स्वतंत्रता, भारतीयों के लिए स्वाधीनता और विश्व-शांति—उनका शक्तिदायी पोषण पाते रहे। नये बच्चे के लिए एक टस्ट बनाया गया, जिसके गांधीजी तीन ट्रस्टियों में से एक थे।

गांधीजी के चिकित्सक डा० दीनशा मेहता का पूना शहर में एक निसर्गोपचार केंद्र था। इसलिए यह तय हुआ कि ट्रस्ट के पहले कदम के रूप में उसी केंद्र को बढ़ाकर निसर्गोपचार-विश्वविद्यालय बना दिया जाय।

लेकिन एक मौनवार को गांधीजी ने इस योजना को छोड़ने का निश्चय कर लिया। उन्होंने स्वीकार किया—"मुझे सूझा कि मैं मूर्ख था, जो यह उम्मीद करता था कि गरीबों के लिए शहर में संस्था खड़ी करूं।" वह निसर्गोपचार को गरीबों के पास ले जाना चाहते थे और यह आशा नहीं रखते थे कि गरीब उनके पास आयें। इस भूल में एक शिक्षा निहित थी—"किसी भी बात को वेद-वाक्य मत मानो, भले ही वह किसी महात्मा ने क्यों न कही हो, जबतक कि वह तुम्हारे मस्तिष्क और हृदय को न जंचे।" गांधीजी यंत्रवत आज्ञापालन को नापसंद करते थे।

वह गांव में निसर्गोपचार का कार्य प्रारंभ करेंगे। उन्होंने लिखा—"यही सच्चा भारत है, मेरा भारत, जिसके लिए मैं जीवित रहता हूं।" उन्होंने तत्काल अपने इरादे पर अमल किया। थोड़े ही दिनों में वह पूना-शोलापुर रेलवे लाइन पर तीन हजार की आबादीवाले उरुली नामक गांव में जम गये, जहां पानी प्रचुर मात्रा में था, अच्छी जलवायु थी, फलों के बागीचे थे, तार-डाकघर था, पर टेली-फोन नहीं था।

पहले दिन ३० किसान निसर्गोपचार-केंद्र में आये। गांधीजी ने स्वयं ६ की परीक्षा की। हर रोगी को उन्होंने एक ही चीज बताई : भगवान का बराबर नाम लो, धूप-स्नान लो, मालिश और कटि-स्नान, गाय का दूध, छाछ, फलों का रस और खूब पानी। भगवान का नाम ओठ हिलाने से कुछ अधिक होना चाहिए। सारे जीवन भर और जबतक जाप चले उसमें पूरी आत्मा डूबी रहनी चाहिए। गांधीजी ने बताया—"सारे मानसिक और शारीरिक कष्ट एक ही कारण से होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनका इलाज भी एक ही हो। उन्होंने कहा कि हममें से हरएक आदमी शरीर या मस्तिष्क से रोगी है। राम-नाम के जाप के साथ-साथ शुचिता, भलाई, सेवा और आत्म-त्याग पर ध्यान केंद्रित करने से मिट्टी की पट्टी, स्नान और मालिश द्वारा लाभ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

पदार्थ के ऊपर मन तथा मनःस्थिति की शक्ति का गांधीजी स्वयं हा एक प्रमाण थे। युवावस्था के बाद तथा युवावस्था में भी वह स्वास्थ्य की ओर पूरा

ध्यान देते थे। वह अपने आस-पास हरएक प्राणी की शुश्रूषा करते थे। वह दूसरों के दुख से दुखी होते थे। उनमें असीम करुणा की क्षमता थी।

स्नेहमयी माता हृदय से इच्छा करती है कि अपने बच्चे का रोग अपने ऊपर ले ले, परंतु उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। गांधीजी के उपवास अछूतों, हड़तालियों, हिंदुओं तथा मुसलमानों की पीड़ाएं दूर करने की आशा में आत्म-पीड़न होते थे। वह पीड़ा देनेवालों के लिए प्रायश्चित्त करते थे। दुख मिटाने तथा पीड़ा कम करने का आंतरिक दबाव मानो गांधीजी के हृदय की गहराई में से निकलनेवाली प्रेरणा थी। गांधीजी का विश्वास था कि उनका मिशन पीड़ा का निवारण है। वह भारत के चिकित्सक थे। जीवन के अंतिम दो वर्षों में भारत ने उन्हें बहुत व्यस्त रखा।

देश में अन्न और वस्त्र का अकाल था। "अन्न-वस्त्र के व्यापारियों को संचय या सट्टा नहीं करना चाहिए," उन्होंने १७ फरवरी १९४६ को लिखा—"जहां-तहां पानी उपलब्ध हो या किया जा सकता हो, उस समूची कृषि-योग्य भूमि पर खेती होनी चाहिए। सारे समारोह बंद हो जाने चाहिएं।..."

वह बंगाल, आसाम और मद्रास में घूम रहे थे। "अधिक अन्न उपजाओ" उनका नारा था। "कातो" उनका अनुरोध था। "पानी की प्रत्येक बूंद, चाहे वह स्नान से आती हो, या हाथ-मुंह धोने से या रसोई-घर से, साग-भाजी की क्यारियों में जानी चाहिए।" उन्होंने शहर के निवासियों से कहा—"साग-भाजी गमलों और टूटे-फूटे पुराने कनस्तरों तक में उगानी चाहिए।"

भूख के कारण देश की बढ़ी हुई संतानोत्पत्ति का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। गांधीजी ने कहा—"खरगोश की भांति आबादी बढ़ाना निश्चय ही बंद हो जाना चाहिए, लेकिन उससे और बहुत-सी बुराइयों को जन्म नहीं मिलना चाहिए। वह ऐसी पद्धति से रुकना चाहिए, जिससे मानव-जाति गौरवान्वित होती है, अर्थात आत्म-संयम के स्वर्ण उपाय द्वारा।"

आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण लूट-पाट तथा अन्य हिंसात्मक विस्फोट होने लगे थे। बंबई में भारी दंगा हो गया, कलकत्ता, दिल्ली तथा अन्य शहरों में लोगों ने आग लगा दी, रास्ता चलनेवालों को नारे लगाने पर मजबूर किया और अंग्रेजों के टोप उतरवा दिये। गांधीजी ने इनकी कड़ी लानत-मलामत की।

१० फरवरी १९४६ को गांधीजी ने लिखा—"अब, जबकि यह लगने लगा है कि हम खुदमुख्तार हो रहे हैं, अनुशासनहीनता और हुल्लड़बाजी

बंद होनी चाहिए और धैर्य, कठोर अनुशासन, सहयोग तथा सद्भावना को इनका स्थान ग्रहण करना चाहिए। मैं इस आशा को गले से लगाये हुए हूं कि जब जनता पर वास्तविक जिम्मेदारी आयगी और कब्जा जमानेवाली विदेशी सेना का असह्य भार हट जायगा, तब हम स्वाभाविक, गौरवशील तथा निग्रही बन जायंगे !" प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा की कि लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा एल्बर्ट वी० अलेक्ज़ेंडर का एक ब्रिटिश केबिनेट मिशन स्वतंत्रता की शर्तें तय करने के लिए भारत भेजा जा रहा है। गांधीजी ने स्वीकार किया—"मैं जोर देकर कहता हूं कि ब्रिटिश सरकार के बयानों पर अविश्वास करना और पहले ही से झगड़ा खड़ा करना दूरदर्शिता के अभाव का द्योतक है। क्या सरकारी प्रतिनिधि-मंडल एक महान राष्ट्र को धोखा देने के लिए आ रहा है ? ऐसा सोचना न तो पुरुषोचित है, न स्त्रियोचित।"

केबिनेट मिशन इंग्लैंड से रवाना होकर २४ मार्च को नई दिल्ली आ पहुंचा और उसने आते ही भारतीय नेताओं से मुलाकातें शुरू कर दीं। अंग्रेज मंत्रियों से मिलने के लिए गांधीजी भी दिल्ली आ गये। पैथिक लारेंस लिखते हैं—"मेरी प्रार्थना पर, आनेवाले महीनों में दिल्ली की कड़ी गर्मी की परवाह न करके वह वार्ताओं की प्रगति के पूरे दौरान में हमारे तथा कांग्रेस कार्य-समिति के संपर्क में रहे।"

कई सप्ताह की भाग-दौड़ के बाद जब कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला, तो केबिनट मिशन ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को शिमला के सम्मेलन के लिए चार-चार प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण दिया। गांधीजी प्रतिनिधि नहीं थे, परंतु परामर्श के लिए हर समय उपलब्ध रहे। बाद के दर्जे पर नेहरू और जिन्ना खानगी तौर पर मुद्दों से जूझते रहे, परंतु कोई समझौता नहीं हो पाया।

अंत में गांधीजी ने केबिनट मिशन से कहा कि वह कोई योजना निकाले।

केबिनट मिशन की योजना, जो १६ मई १९४६ को प्रकाशित हुई, भारत में ब्रिटिश हुकूमत की समाप्ति का प्रस्ताव था, जो इंग्लैंड की ओर से रखा गया था। उस दिन की प्रार्थना-सभा में गांधीजी ने कहा—"केबिनेट मिशन की घोषणा को आप पसंद करें या न करें, परंतु भारत के इतिहास में यह घोषणा गुरुतम महत्व रखती है और इसलिए विचारपूर्ण अध्ययन की अपेक्षा करती है।"

गांधीजी ने इस घोषणा का चार दिन तक मनन किया और फिर बयान दिया—"(घोषणा की) सूक्ष्म परीक्षा के बाद मेरा विश्वास हो गया है कि इस

परिस्थिति में ब्रिटिश सरकार इससे बढ़िया दस्तावेज तैयार नहीं कर सकती थी।"

महात्माजी ने कहा—"ब्रिटिश सरकार का एकमात्र अभिप्राय जल्दी-से-जल्दी अंग्रेजी शासन का अंत करना है।"

केबिनट मिशन ने अपने वक्तव्य में घोषणा की—"बयानों के ढेर से पता लगता है कि मुस्लिम लीग के समर्थकों को छोड़कर लगभग सभी लोग भारत की एकता चाहते हैं।"

फिर भी मिशन ने "भारत के विभाजन की संभावना पर बहुत बारीकी से और निष्पक्षता से" गौर किया।

परिणाम क्या निकला ?

वक्तव्य में दिये गये आंकड़ों के आधार पर मिशन ने सिद्ध किया कि पाकिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में मुसलमानों के अतिरिक्त अल्पसंख्यक ३७.६३ प्रतिशत होंगे और उत्तरी-पूर्वी भाग में ४८.३१ प्रतिशत, जबकि शेष भारत में, पाकिस्तान के बाहर, २ करोड़ मुसलमान अल्पसंख्यक रहेंगे। वक्तव्य में बताया गया—"इन आंकड़ों से पता चलता है कि मुस्लिम लीग ने जिन आधारों पर पाकिस्तान के स्वतंत्र राज्य की मांग की है, उससे सांप्रदायिक अल्पसंख्यक समस्या हल नहीं होगी।"

तब मिशन ने विचार किया कि क्या छोटा पाकिस्तान, जिसमें अ-मुस्लिम भाग शामिल नहीं था, बना सकना संभव है ? "ऐसे पाकिस्तान को," वक्तव्य में कहा गया—"मुस्लिम लीग ने अव्यावहारिक माना।" उससे पंजाब, बंगाल और आसाम के दो नये राज्यों में विभाजित होने की आवश्यकता पड़ती, जबकि जिन्ना इन प्रांतों को पूरा-का-पूरा चाहते थे।

मिशन ने कहा—"भारत-विभाजन से देश की प्रतिरक्षा-शक्ति कमजोर पड़ जायगी और उसके यातायात के साधन दो हिस्सों में बंट जायंगे।

"अंतिम बात भौगोलिक है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दोनों भाग ७०० मील के फासले पर हैं और उन दोनों के बीच यातायात, लड़ाई और शांति हिंदुस्तान की सदिच्छा पर निर्भर करेंगे।

"इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह परामर्श देने में असमर्थ हैं कि जो सत्ता आज अंग्रेजों के हाथों में है, उसे दो बिल्कुल अलग संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न राज्यों को सौंप दिया जाय।"

मिशन ने सिफारिश की कि नव-निर्वाचित प्रांतीय विधानमंडल राष्ट्रीय संवि-

धान सभा के सदस्यों का चुनाव करें। यह सभा भारत का संविधान बनाये।

इस अर्से में लार्ड वेवल एक अंतरिम अथवा अस्थायी सरकार बनाने की कार्रवाई करें।

२१ मई को जिन्ना ने केबिनेट मिशन की आलोचना की। उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि पाकिस्तान ही एकमात्र हल है।

परंतु ४ जून को मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन की योजना स्वीकार कर ली।

अब सारा मामला इस पर निर्भर था कि कांग्रेस क्या करेगी।

दिल्ली की गर्मी और लू से बचने के लिए कांग्रेस कार्य-समिति मसूरी चली गई और अपने साथ गांधीजी को भी ले गई।

भारत की आंखें मसूरी पर लगी हुई थीं। कार्य-समिति ने गांधीजी के साथ विचार-विमर्श किया। ये बैठकें कितनी भाग्य-निर्णायक थीं, इसे उस समय कोई नहीं जानता था।

विदेशी संवाददाता गांधीजी के पीछे-पीछे मसूरी जा पहुंचे। एक ने गांधीजी से पूछा—"यदि एक दिन के लिए आपको भारत का अधिनायक बना दिया जाय, तो आप क्या करेंगे ?"

यदि इस पत्रकार ने यह आशा की हो कि गांधीजी के उत्तर में कांग्रेस के चिर-प्रतीक्षित निर्णय का कुछ संकेत मिलेगा, तो उसे निराश होना पड़ा। "मैं उसे स्वीकार नहीं करूंगा," गांधीजी ने उत्तर दिया—"परंतु यदि स्वीकार कर लूं, तो वह दिन मैं नई दिल्ली में हरिजनों की झोंपड़ियां साफ करने में तथा वाइसराय के महल को अस्पताल बनाने में बिता दूंगा। वाइसराय को इतने बड़े भवन की आवश्यकता ही क्या है ?"

"अच्छा," पत्रकार ने हठ की—"मान लीजिये कि वे आपकी अधिनायकशाही दूसरे दिन भी चालू रखें ?"

गांधीजी ने हंसते हुए कहा—"दूसरे दिन भी पहले दिन का ही सिलसिला होगा।"

केबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर कांग्रेस की अब भी कोई प्रतिक्रिया मालूम नहीं हुई।

८ जून को गांधीजी नई दिल्ली लौट आये, जहां कांग्रेस के विचार-विमर्शों का सिलसिला चलनेवाला था। ब्रिटिश-सरकार की योजना को स्वीकार करने का अनुरोध करने के लिए मद्रास से राजगोपालाचारी भी आ गये थे।

एक सप्ताह और गुजर गया, मगर फिर भी कांग्रेस ने इस बारे में कोई बात नहीं बताई कि वह केबिनेट मिशन की योजना को स्वीकार करेगी या ठुकरा देगी।

१६ जून को लार्ड वेवल ने घोषणा की कि अस्थायी सरकार की रचना के प्रश्न पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच समझौता नहीं हो सका, इसलिए वह उस सरकार के पदों पर चौदह भारतीयों को नियुक्त कर रहे हैं।

कांग्रेस को अब दो प्रश्नों के जवाब देने थे। अस्थायी सरकार में शामिल होना या नहीं? स्वतंत्र संयुक्त भारत के संविधान का मसविदा बनाने के लिए संविधान सभा में जाना या नहीं?

: ३ :

गांधीजी से दुबारा भेंट

मैं २५ जून १९४६ को नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर उतरा। थका हुआ था, परंतु गांधीजी से तुरंत मिलने की ऐसी प्रेरणा हुई कि उसे मैं दबा न सका। मैंने सोचा कि भारत में मेरा पहला काम यही होना चाहिए कि गांधीजी से दो बातें करूं। इसलिए अपना सामान होटल के स्वागत-कक्ष में ही छोड़कर मैं टैक्सी लेकर हरिजन कालोनी में गांधीजी की कुटिया के लिए रवाना हो गया।

गांधीजी कुटिया के बाहर प्रार्थना सभा में बैठे हुए थे। करीब एक हजार आदमी वहां मौजूद थे। गांधीजी की आंखें बंद थीं। कभी-कभी वह आंखें खोलकर संगीत के साथ हाथों से ताल देने लगते थे। वहां कई भारतीय तथा विदेशी संवाददाता भी थे और मृदुला साराभाई, नेहरू तथा लेडी क्रिप्स भी मौजूद थे।

मैं प्रार्थना-मंच की लकड़ी की सीढ़ियों के नीचे बैठ गया। जब गांधीजी नीचे उतरे, तो मुझे देखकर बोले—"ओ हो, तुम यहां हो! अच्छा, इन चार वर्षों में मेरी तंदुरुस्ती पहले से बेहतर तो नहीं हुई है?"

"मैं आपकी बात कैसे काट सकता हूं!" मैंने उत्तर दिया। वह सिर उठाकर हंसने लगे। मेरी बांह पकड़कर वह कुटिया की ओर चले। उन्होंने मेरी यात्रा का, मेरी तबीयत का और मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछा। फिर शायद यह अनुमान करके कि मैं बातचीत के लिए ठहरना चाहता हूं, उन्होंने कहा—"लेडी क्रिप्स यहां आई हुई हैं। क्या कल सुबह मेरे साथ घूमने चलोगे?"

शाम को मैं मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के घर गया। उन्होंने नेहरू, आसफ-

अली तथा कांग्रेस कार्य-समिति के अन्य सदस्यों के साथ मुझे भी रात्रि के भोजन पर बुलाया था। ये लोग उद्वेलित प्रतीत होते थे और आकाशवाणी की सरकारी खबरों को खास ध्यान से सुन रहे थे। उस दिन कांग्रेस ने अपना अंतिम निर्णय केबिनेट मिशन को और वेवल को लिखकर भेज दिया था, परंतु अभी उसकी घोषणा नहीं की गई थी।

दूसरे दिन सुबह मैं बहुत जल्दी उठ गया और टैक्सी करके ५-३० बजे गांधीजी की कुटिया पर जा पहुंचा। हम करीब आधा घंटा घूमे। गांधीजी सारे समय केबिनेट मिशन से हुई वार्ता का ही जिक्र करते रहे। अगले दिन, २७ जून को मैं सुबह ५-३० बजे फिर गांधीजी के यहां गया और उनके साथ आधा घंटा घूमा। १०-३० बजे मुझे जिन्ना से मिलने जाना था। इसी बीच ९-३० बजे मुझे सर क्रिप्स ने भी निमंत्रित किया था। उनके साथ बातचीत करके मैं तत्काल रवाना हुआ।

लेकिन कुछ दूर जाकर टैक्सी ने झटके दिये और खड़ी हो गई। सिख ड्राइवर ने इंजन में कुछ खटर-पटर की, मगर चूंकि जिन्ना के पास पहुंचने का समय हो रहा था, इसलिए मैंने तांगा किराये किया। तांगे का घोड़ा भी अड़ियल निकला और मैं जिन्ना के यहां पैंतीस मिनट देर से पहुंचा। मैंने बहुत क्षमा मांगी और सफाई दी कि किस तरह टैक्सी ने धोखा दिया और तांगा धीरे-धीरे चला।

उन्होंने रुखाई से कहा—"मुझे उम्मीद है, आपके चोट नहीं आई।"

टैक्सी और तांगे की चर्चा से छुटकारा पाकर मैंने कहा—"ऐसा लगता है कि हिंदुस्तान आज़ाद होनेवाला है।"

जिन्ना ने जवाब नहीं दिया। न कुछ कहा। उन्होंने अपनी ठोड़ी झुकाई, मेरी ओर कड़ी निगाह से देखा, खड़े होकर हाथ बढ़ाया और कहा—"अब मुझे जाना है।"

मैंने पूछा कि क्या मैं अगले दिन फिर आ सकता हूं? नहीं, वह व्यस्त होंगे। वह बंबई जा रहे हैं। क्या मैं बंबई में मिल सकता हूं? नहीं, वहां भी वह व्यस्त रहेंगे। अबतक वह मुझे दरवाजे पर ले आये थे। मैं कभी नहीं जान सकूंगा कि वह मेरे देरी से आने के कारण नाराज हुए थे या भारत की आसन्न आजादी के बारे में मेरे कथन से।

सोमवार १ जुलाई को मैं हवाई जहाज से बंबई पहुंचा और मंगलवार की शाम को पूना में डा० दीनशा मेहता के प्राकृतिक चिकित्सा सदन गया, जहां

गांधीजी ठहरे हुए थे। यहां मैं तीन दिन रहा। नेहरू भी कुछ समय के लिए यहीं थे।

५ जुलाई को मैं गांधीजी के साथ बंबई आ गया और ६ तथा ७ को कांग्रेस महा-समिति के अधिवेशन में रहा।

१६ जुलाई को मैं पंचगनी गया और वहां मैंने अड़तालीस घंटे गांधीजी के साथ बिताये।

ऐसा नहीं लगता था कि गांधीजी १९४२ के बाद से अब ज्यादा बूढ़े हो गये हों। उनके कदम अब इतने लंबे और तेज नहीं पड़ते थे, परंतु न तो वह घूमने से थकते थे और न दिन-दिन भर की मुलाकातों से। वह हमेशा खुश-मिजाज रहते थे।

शुरू-शुरू में नई दिल्ली में सुबह घूमते समय उन्होंने रूस के साथ युद्ध की अफवाहों के बारे में पूछा था। मैंने बताया था कि युद्ध के बारे में चर्चा तो बहुत-कुछ है, लेकिन यह सिर्फ चर्चा ही है। "आपको पश्चिम की ओर ध्यान देना चाहिए," मैंने सुझाव दिया।

"मैं ?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं भारत को भी नहीं समझा सका हूं। हमारे चारों ओर हिंसा-ही-हिंसा है। मैं तो खाली कारतूस हूं।"

द्वितीय महायुद्ध के बाद, मैंने सुझाया, बहुत से यूरोपियन और अमरीकन आध्यात्मिक दिवालिएपन का अनुभव कर रहे हैं। वह उसका एक कोना भर सकते हैं। भारत को भौतिक-सामग्री चाहिए। उसे इस बात का भ्रम है कि उससे सुख आयेगा। हमारे पास भौतिक-सामग्री थी; लेकिन उससे सुख नहीं आया। पश्चिम हल निकालने के लिए हाथ-पैर पीट रहा है।

"लेकिन मैं तो एशियाई हूं," गांधीजी ने कहा—"केवल एशियाई !" वह हंसने लगे, फिर कुछ रुककर बोले—"ईसा भी तो एशियाई थे।"

इस तथा आगे की बात में मुझे निराशा-भरा स्वर दिखाई दिया, लेकिन उसके नीचे आशा-भरा स्वर भी था। यदि वह १२५ वर्ष जीवित रहते, तो अपने काम को पूरा करने का उन्हें काफी समय मिल जाता।

पूना के प्राकृतिक चिकित्सा सदन में मैं शाम को ८-३० बजे पहुंचा। मुझे गांधीजी का कमरा बताया गया और मैं भीतर गया। वह एक गद्दे पर बैठे हुए थे और उनका सारा शरीर सफेद दुशाले से ढका था। उन्होंने ऊपर नहीं देखा। पोस्टकार्ड लिखना समाप्त करके उन्होंने गरदन उठाई और कहा—"ओ हो !" मैं उनके सामने घुटनों के बल बैठ गया और हमने हाथ मिलाये।

"तुम 'डैकन क्वीन' से आये हो," उन्होंने कहा—"उस गाड़ी पर तो खाना भी नहीं मिलता।"

मैंने कहा—"मुझे उसकी परवाह नहीं है। मुझे तो पहले ही से भोजन का निमंत्रण मिल चुका था।"

"यहां का मौसम तो आश्चर्यजनक है," मैंने कहा—"आप तो सेवाग्राम की गर्मी की यंत्रणा झेलते थे।"

"नहीं," उन्होंने आपत्ति की—"वह यंत्रणा नहीं थी। किंतु नई दिल्ली में मैं टब में बर्फ डालकर उसी तरह बैठता था, जैसाकि तुम सेवाग्राम में किया करते थे। मुझे तो टब में बैठे-बैठे लोगों से मिलने में और पत्र लिखने में भी शर्म नहीं लगती थी। यहां पूना का मौसम मजे का है।"

तुरंत ही मेरे सवाल किये बिना वह विस्तार के साथ हिंसा के बारे में बोलने लगे। उन्होंने दक्षिण अफरीका के दंगों में एक निर्दोष आदमी के मारे जाने का, भारतीयों को पेड़ से बांधकर कोड़े लगाये जाने का, अहमदाबाद के हिंदू-मुस्लिम दंगे का और फिलस्तीन के यहूदियों का जिक्र किया। वह कहने लगे कि ईसा यहूदी थे, मगर यहूदियत के सुंदरतम पुष्प थे। ईसा के चार शिष्यों ने उनके बारे में सच्ची बात कही। परंतु पाल यहूदी नहीं थे। वह यूनानी थे और उनका दिमाग वक्तृत्व तथा तर्क से भरा था। उन्होंने ईसा के उपदेश का रूप विकृत कर दिया। ईसा में बड़ी शक्ति थी—प्रेम की शक्ति, लेकिन ईसाईयत जब पश्चिम के हाथ में पहुंची, तो बिगड़ गई। वह बादशाहों का धर्म बन गई।

मैं जाने के लिए उठा। "अच्छी नींद सोइये," मैंने कहा।

"मैं तो हमेशा ही अच्छी नींद सोता हूं। आज मेरा मौन-दिवस था और मैं चार बार सोया। मैं तख्ते पर ही सो गया।"

"मालिश कराते-कराते।" एक महिला ने बतलाया।

"तुम भी यहां मालिश कराओ।" गांधीजी ने अनुरोध किया।

शाम के भोजन के बाद मैं खुली छत पर लगे हुए गांधीजी के बिस्तर के पास से गुजरा। दो स्त्रियां उनके पांवों तथा पिंडलियों की मालिश कर रही थीं। उनका बिस्तर एक लकड़ी का तख्ता था, जिस पर गद्दा बिछा था तथा जिसके सिरहाने के नीचे दो ईंटें लगाई हुई थीं। मच्छरदानी लगी थी। उन्होंने मुझे पुकारा—"मुझे आशा है कि तुम सुबह जल्दी उठ जाओगे ताकि मेरे साथ नाश्ता ले सको।" उन्होंने बतलाया कि पहला नाश्ता सुबह चार बजे होता है।

"इससे तो मैं क्षमा चाहता हूं।"

"तो दूसरा नाश्ता ५ बजे।"

मैंने मुंह बनाया और सब हंसने लगे।

"अच्छा तो तुम ९ बजे मेरे साथ तीसरे नाश्ते में शामिल होना। ६ बजे उठ जाना," उन्होंने कहा।

मैं सुबह ६-३० बजे उठा। जब मैंने आंगन में कदम रखा, तो गांधीजी एक भारतीय से बातें कर रहे थे। उन्होंने मेरा अभिवादन किया और हम घूमने के लिए बाहर चल पड़े।

मैंने याद दिलाई—"कल रात आपने कहा था कि पाल ने ईसा के उपदेशों को विकृत कर दिया। क्या आपके साथ के लोग भी ऐसा ही करेंगे?"

"इस संभावना का जिक्र करनेवाले तुम पहले व्यक्ति नहीं हो," उन्होंने उत्तर दिया—"उनके भीतर क्या है, वह मुझे दिखाई देता है। हां, मैं जानता हूं कि शायद वे भी ठीक वैसा ही करने का प्रयत्न करें। मैं जानता हूं कि भारत मेरे साथ नहीं है। काफी भारतवासी ऐसे हैं, जिनको मैं अहिंसा की शक्ति का कायल नहीं कर सका हूं।"

उन्होंने फिर दक्षिण अफरीका में काले लोगों की यातनाओं की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने पूछा कि अमरीका में हब्शियों के साथ कैसा बर्ताव होता है। उन्होंने कहा—"सभ्यता का निर्णय अल्पसंख्यकों के साथ के व्यवहार से होता है।"

एक बलिष्ठ लंकावासी से मालिश कराने के बाद मेरी थकावट उतर गई और मैंने गांधीजी के कमरे में झांका। उसमें दरवाजा नहीं था, केवल एक पर्दा पड़ा था, जिसे मैंने सरका दिया। उन्होंने मुझे देख लिया और कहा—"भीतर आ जाओ। तुम तो हर समय आ सकते हो।" वह 'हरिजन' के लिए लेख लिख रहे थे। ११ बजे तक मैं कई बार भीतर गया और बाहर आया।

डा० मेहता की पत्नी गुलबाई फलों के टुकड़ों से भरा कटोरा लाईं और उसे चटाई पर रख गईं। गांधीजी का तीसरा नाश्ता पहले ही हो चुका था। इसलिए मैं खाते-खाते उनकी बातें सुनता रहा। उन्होंने बतलाया कि वह भारत में एक वर्ग-हीन तथा जाति-हीन समाज के निर्माण का प्रयत्न कर रहे हैं। वह उस दिन के लिए तरसते थे, जब सब जातियां एक हो जायं तथा ब्राह्मण लोग हरिजनों के साथ विवाह-संबंध करने लगें। "मैं सामाजिक क्रांतिवादी हूं," उन्होंने दृढ़ता से कहा—"असमानता से हिंसा की तथा समानता से अहिंसा की उत्पत्ति होती है।"

मैं जानता था कि दक्षिण अफरीका में काले लोगों के विरुद्ध बढ़ती हुई घृणा उन्हें व्याकुल कर रही थी। मैंने कहा—"मुझे आशा है कि इस मामले में आप हिंसा की कोई चीज नहीं करेंगे। आप हिंसाशील हैं।" वह हंसने लगे। मैं कहता गया—"आपके कुछ उपवास हिंसात्मक होते हैं।"

"तुम चाहते हो कि मैं केवल हिंसात्मक शब्दों तक ही सीमित रहूं।" उन्होंने मत प्रकट किया।

"जी हां।"

"मैं नहीं जानता कि कब उपवास कर बैठूं," उन्होंने व्याख्या करते हुए कहा—"इसको निर्धारित करनेवाला तो ईश्वर है। मुझे तो अकस्मात प्रेरणा होती है। परंतु मैं जल्दबाज़ी नहीं करूंगा। मरने की मेरी इच्छा नहीं है।"

शाम को प्रार्थना के समय मेंह बरसने लगा। सत्संगियों ने छाते खोल लिये। पीछे की तरफ से विरोध की ध्वनि उठी और छाते बंद हो गये।

भोजन से पहले गांधीजी ने मुझसे साथ घूमने चलने को कहा। मैंने थोड़ा विरोध करते हुए कहा—"बारिश में आप कहां घूमने जायंगे!"

उन्होंने बांह फैलाकर कहा—"बूढ़ेराम, आओ!"

जो निजी कमरा मुझे दिया गया था, उसका द्वार उस छत की ओर था, जहां गांधीजी सोते थे। रात को सोने के लिए जाते समय मैं उनके बिस्तर के पास से गुजरा। मैंने चुपचाप हाथ उठाकर उन्हें नमस्कार किया, परंतु उन्होंने मुझे आवाज दी—"आज रात अच्छी तरह सोना। परंतु हम ४ बजे अपनी प्रार्थना से तुम्हें जगा देंगे।"

"मुझे आशा नहीं है," मैंने कहा और उनके नजदीक चला गया।

उन्होंने श्रीमती मेहता से हिंदुस्तानी में या गुजराती में बात की और मुझे लगा कि वह उन्हें डांट रहे हैं। फिर मुझसे बोले—"हम तुम्हारी ही बात कर रहे हैं। तुम जानने के लिए उत्सुक हो?"

"मुझे कुछ-कुछ पता लग गया," मैंने उत्तर दिया—"अब आपने मुझसे कह तो दिया, मगर यह नहीं बताया कि आप क्या बात कर रहे थे। यह आपने और भी बुरा किया। जबतक आप नहीं बतलायंगे, तबतक मैं सत्याग्रह करूंगा।"

"बहुत अच्छा!" उन्होंने हंसकर कहा।

"मैं सारी रात आपके बिस्तर के पास बैठा रहूंगा।"

"बैठे रहो!" उन्होंने लय के साथ कहा।

"मैं यहां बैठा-बैठा अमरीकी गीत गाऊंगा।"

"बहुत अच्छा ! तुम्हारे गाने से मुझे नींद आ जायगी।"

इस बात में सबको मजा आ रहा था।

अब काफी देर हो चुकी थी, इसलिए मैंने विदा ली। मैंने श्रीमती मेहता से बात की। गांधीजी ने उन्हें इसलिए डांटा था कि उन्होंने ६ बजे के बजाय ११ बजे उनके कमरे में मुझे नाश्ता दिया और इसके अलावा मुझे विशेष भोजन दिया। किसीके साथ विशेष सुविधा का व्यवहार नहीं होना चाहिए।

सुबह उठकर मैं गांधीजी के कमरे में गया। उन्होंने अपने साथ घूमने चलने को कहा। मैंने भारत की राजनैतिक स्थिति में अगले कदम के बारे में उनकी सम्मति मांगी। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि कांग्रेस से मिली-जुली सरकार बनाने को कहे। तमाम अल्पसंख्यक समुदाय सहयोग देंगे।"

"क्या आप मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी शामिल करेंगे ?"

"अवश्य," उन्होंने उत्तर दिया—"मि० जिन्ना अत्यंत महत्वपूर्ण पद ले सकते हैं।"

कुछ देर बाद उन्होंने यूरोप तथा रूस की चर्चा शुरू की। मैंने कहा कि मास्को के पास संसार को देने के लिए कुछ नहीं है। वह तो राष्ट्रीयतावादी, साम्राज्यवादी तथा बृहत्तर स्लाव राष्ट्र का समर्थक बन गया है। इससे पश्चिम की संतुष्टि नहीं होगी।

"तुम क्यों चाहते हो कि मैं पश्चिम के पास जाऊं ?"

"पश्चिम के पास मत जाइये। परंतु पश्चिम से अपनी बात कहिये।"

"पश्चिमवाले मुझसे यह अपेक्षा क्यों रखते हैं कि मैं उनसे कहूं कि दो-और-दो चार होते हैं ? यदि वे समझते हैं कि हिंसा तथा युद्ध का मार्ग बुरा है, तो इस प्रकट सचाई को बतलाने के लिए मेरी क्या जरूरत है ? इसके अलावा, मेरा काम यहां अधूरा पड़ा है।"

मैंने कहा—"फिर भी पश्चिम को आपकी आवश्यकता है। आप भौतिकवाद के प्रतिवाद हैं, इसलिए स्तालिनवाद तथा राज्यवाद-रूपी विष की काट हैं।"

नेहरू भी कृष्ण मेनन के साथ सदन में आ पहुंचे। गांधीजी ने मुझसे कहा—"नेहरू का मस्तिष्क वक्तृत्वमय है।" नेहरू ने, मेनन ने, मैंने तथा कुछ अन्य लोगों ने साथ बैठकर भोजन किया।

नेहरू में असीम आकर्षण, शिष्टता और सहृदयता है तथा अपने भावों को

शब्दों में व्यक्त करने की प्रतिभा है। गांधीजी उन्हें कलाकार कहते थे।

गांधीजी नेहरू को पुत्र की भांति प्यार करते थे और नेहरू गांधीजी को पिता की भांति प्यार करते थे। अपने तथा गांधीजी के दृष्टिकोण की गहरी भिन्नता को नेहरू ने कभी नहीं छिपाया। गांधीजी इस स्पष्टवादिता का स्वागत करते थे। दोनों का पारस्परिक स्नेह मतैक्य पर निर्भर नहीं था।

नेहरू के मानस की गहराई में कोई चीज है, जो आत्म-समर्पण के विरुद्ध विद्रोह करती है। अधिकतर भारतीय नेता जिस प्रकार बिना हिचकिचाहट के गांधीजी के आज्ञाकारी बने हुए थे, उससे नेहरू का हृदय दूर भागता था। वह शंका करते थे, बहस करते थे और प्रतिरोध करते थे और अंत में आत्म-समर्पण कर देते थे। वह अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता के लिए लड़ते हैं। पराभव से वह भड़कते हैं। परंतु यदि वह हार मानते हैं, तो विनय और नम्रता के साथ। गांधीजी उनकी कमजोरियों को जानते थे और नेहरू स्वयं अपनी मर्यादाओं को महसूस करने लगे हैं। राजनीति में नेहरू जीवन-भर दलगत राजनीति के पेचों में उतने माहिर नहीं हो पाये, जितने कि महात्माजी और पटेल। वह संयोजक नहीं हैं, जननायक हैं; भीतर जोड़-तोड़ करनेवाले नहीं हैं, बाहर के लिए प्रवक्ता हैं। उनकी बात का असर सबसे अधिक बुद्धिजीवियों पर पड़ता है, लेकिन यह असर दिमाग पर नहीं, दिल पर पड़ता है। वह संसार के एक अग्रणी राजनीतिज्ञ हैं, परंतु राजनीतिज्ञ नहीं। वह तो राजनीतिज्ञों के बीच खोये हुए एक भले आदमी हैं।

नेहरू की पुस्तकें आत्मा का सौंदर्य, आदर्श की उच्चता तथा अहं का केंद्रीकरण प्रकट करती हैं। गांधीजी पूर्णतया बहिर्मुख प्रतीत होते थे। वह अपने लिए भार नहीं थे। नेहरू सदा अपनी समस्या से जूझते रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा सदन में दूसरे दिन के तीसरे पहर नेहरू मेरे बिस्तर पर घंटे-भर पालथी लगाकर बैठे रहे और मैं वहां रखी अकेली कुर्सी पर। वह अपने प्यारे काश्मीर की यात्रा को गये थे। महाराजा ने उनका प्रवेश रोक दिया। सीमांत की चौकी पर उनका रास्ता रोकनेवाले संगीनधारी सिपाही से वह हाथापाई कर बैठे। अब उन्होंने कहा—"मुझे यकीन है कि जिस समय मैं केबिनेट मिशन के साथ वार्ताओं में लगा हुआ था, उस समय ब्रिटिश एजेंट वाइसराय से पूछे बिना मुझे काश्मीर में घुसने से नहीं रोक सकता था, और चूंकि ऐसा हुआ, इसलिए यह नहीं लगता कि अंग्रेज भारत छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं।"

नेहरू ने तीसरे पहर के कई घंटे गांधीजी के साथ अकेले में बिताये। शाम को

में गांधीजी के कमरे में गया और मैंने उन्हें कातते हुए पाया। मैंने कहा कि मैं तो समझता था कि आपने कातना छोड़ दिया। "नहीं! मैं कातना कैसे छोड़ सकता हूं?" उन्होंने कहा--"भारतवासियों की संख्या चालीस करोड़ है। इनमें से दस करोड़ बच्चे-बेघरबार आदि निकाल दो। यदि बाकी के तीस करोड़ रोजाना एक घंटा काता करें, तो हमको स्वराज्य मिल जाय।"

"आर्थिक प्रभाव के कारण या आध्यात्मिक प्रभाव के कारण?" मैंने पूछा।

"दोनों ही," वह बोले—"यदि तीस करोड़ जनता दिन में एक बार एक समान काम करे, इसलिए नहीं कि किसी हिटलर की आज्ञा है, बल्कि एक आदर्श से प्रेरित होकर, तो स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हमारे अंदर हेतु की पर्याप्त एकता हो जायगी।"

"जब आप मुझसे बात करने के लिए कातना बंद करते हैं, तो स्वराज्य को पीछे ढकेलते हैं?"

"ठीक है," उन्होंने स्वीकार किया—"तुमने स्वराज्य को छः गज पीछे हटा दिया है।"

दूसरे दिन सुबह गांधीजी और उनके करीब दस साथी और मैं पूना स्टेशन पर बंबई की गाड़ी में सवार हुए। रास्ते भर मूसलाधार पानी बरसता रहा और डिब्बे की छत से और खिड़कियों की दरारों से पानी भीतर आने लगा। रास्ते में कई स्टेशनों पर स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ता गांधीजी से परामर्श करने के लिए गाड़ी में चढ़े। बीच-बीच में उन्होंने 'हरिजन' के लिए एक लेख लिखा और दूसरा लेख सुधारा। एक बार उन्होंने मेरी ओर देखकर मुस्कराया और दो-चार बातें कीं। संपादकीय-कार्य समाप्त होने पर वह लेट गये और तत्काल गहरी नींद लेने लगे। वह करीब पंद्रह मिनट सोये।

गांधीजी खिड़की के पास बैठे हुए थे। मूसलाधार वर्षा के बावजूद हरएक स्टेशन पर विशाल भीड़ जमा थी। एक स्टेशन पर दो लड़के, जिनकी आयु करीब चौदह वर्ष की होगी और जो सिर से पैर तक पानी में तर हो रहे थे, गांधीजी की खिड़की के बाहर हाथ उठा-उठाकर कूदने लगे और चिल्लाने लगे—"गांधीजी, गांधीजी, गांधीजी!" गांधीजी मुस्कराये।

मैंने पूछा—"आप इनके लिए क्या हैं?"

उन्होंने अंगूठे बाहर निकालकर दोनों हाथों की मुट्ठियां कनपटी के पास रखीं और बोले—"सींगदार आदमी! एक तमाशा!"

बंबई के अंतिम स्टेशन पर भीड़ से बचने के लिए गांधीजी एक छोटे स्टेशन पर गाड़ी से उतर गये। वह तथा अन्य कांग्रेसी नेता कांग्रेस महा-समिति की बैठक के लिए बंबई में एकत्र हो रहे थे। इस बैठक में कार्य-समिति के उस निर्णय पर बहस होनेवाली थी, जिसमें भारत के संविधान की दूरवर्ती योजना स्वीकार की गई थी, परंतु अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना अस्वीकार किया गया था।

महा-समिति का यह दो-दिवसीय अधिवेशन एक पंडाल में हुआ। मंच पर सफेद खादी बिछी हुई थी। सफेद बारीक खादी के कपड़े पहने हुए नेता लोग फर्श पर बैठे थे। मंच के बीच में बाईं ओर पीछे की तरफ एक बड़ा तख्त लगा हुआ था, जिस पर सफेद खादी बिछी हुई थी। यह खाली पड़ा था। सफेद चूड़ीदार पाजामा, सफेद कुर्ता और बादामी जाकट पहने हुए नेहरू अध्यक्ष के स्थान पर बैठे थे। मत देने के अधिकारी ढाई सौ प्रतिनिधि पंडाल में बैठे हुए थे। इनके अलावा पंडाल में सैकड़ों दर्शक तथा बीसियों भारतीय और विदेशी संवाददाता भी थे।

चर्चाओं के दौरान में एक स्त्री पीछे की ओर से मंच पर आई और तख्त पर एक चपटी पेटी रखकर चली गई। कुछ ही देर बाद गांधीजी आये, तख्त पर बैठ गये और पेटी खोलकर कातने लगे।

दूसरे दिन रविवार, ७ जुलाई को, गांधीजी ने तख्त पर बैठे-बैठे समिति के समक्ष भाषण दिया।

यह भाषण, जो बिना पूर्व तैयारी के दिया गया था, 'हरिजन' में तथा भारत के अन्य समाचार-पत्रों में ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हुआ था। इसके करीब १७०० शब्द गांधीजी ने बहुत धीरे-धीरे लगभग पंद्रह मिनट में बोले, मानो वह अपनी कुटिया में किसी एक आदमी से बात कर रहे हों।

उन्होंने कहा :

"मुझे बताया गया है कि केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के बारे में मेरे कुछ पिछले शब्दों से जनता के दिमाग में काफी भ्रम पैदा हो गया है। एक सत्याग्रही होने के नाते मेरी सदा यह कोशिश रहती है कि पूर्ण सत्य बोलूं और सत्य के सिवा कुछ न बोलूं। मैं आपसे कभी भी कोई बात छिपाना नहीं चाहता। मानसिक दुराव से मुझे घृणा है। परंतु भावों को व्यक्त करने के लिए अच्छी-से-अच्छी भाषा भी अपूर्ण माध्यम होती है। कोई भी आदमी जो कुछ महसूस करता है या विचार करता है, उसे शब्दों के द्वारा पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। पुराने जमाने के ऋषि-मुनि भी इस अक्षमता का निवारण नहीं कर पाये।...

"केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के संबंध में दिल्ली के अपने एक भाषण में मैंने यह जरूर कहा था कि जहां पहले मुझे प्रकाश दिखाई देता था, वहां अब अंधकार दिखाई देता है। यह अंधकार अभी हटा नहीं है। शायद वह और भी गहरा हो गया है। यदि मैं अपना मार्ग स्पष्ट देख पाता, तो कार्य-समिति से कह सकता था कि संविधान-सभा संबंधी प्रस्ताव को ठुकरा दे। कार्य-समिति के सदस्यों से मेरे कैसे संबंध हैं, यह आप जानते हैं।...बाबू राजेंद्रप्रसाद नेचंपारन में मेरे दुभाषिये और मुंशी का काम किया। सरदार (पटेल) के लिए मेरा शब्द कानून है।...ये दोनों मुझसे कहते हैं कि जहां पिछले अवसरों पर मैं अपनी अंतःप्रेरणा की पुष्टि तर्क के द्वारा कर सका था और उनके मस्तिष्क तथा हृदय दोनों को संतुष्ट कर सका था, वहां इस बार मैं ऐसा नहीं कर सका। मैंने उन्हें बतलाया कि यद्यपि मेरा हृदय आशंकाओं से भरा हुआ था, तथापि इसके लिए मैं कोई दलील नहीं दे सकता था, वरना मैं उनसे कह देता कि प्रस्तावों को एकदम ठुकरा दें। अपनी आशंकाएं उनके सामने रखना मेरा कर्तव्य था, ताकि वे सावधान हो जायं। परंतु मैं जो कुछ कहूं, उसकी परीक्षा उन्हें तर्क के आधार पर करनी चाहिए और मेरे दृष्टिकोण को तभी स्वीकार करना चाहिए जब उन्हें उसके सही होने का यकीन हो जाय।...

"एक सत्याग्रही से मैं यह आशा नहीं करूंगा कि वह कहे कि अंग्रेज लोग जो-कुछ करते हैं, वह बुरा है। अंग्रेज लोग लाजिमी तौर पर बुरे नहीं हैं।...हम लोग खुद भी दोषों से बरी नहीं हैं। अगर अंग्रेजों में कुछ अच्छाई न होती, तो वे अपनी मौजूदा ताकत को नहीं पहुंच सकते थे। उन्होंने आकर भारत का शोषण किया, क्योंकि हम आपस में लड़ते रहे और अपना शोषण होने देते रहे। परमात्मा के जगत में शुद्ध बुराई कभी फलीभूत नहीं होती। जहां शैतान का राज्य है, वहां भी ईश्वर का शासन है, क्योंकि शैतान का अस्तित्व उसीकी मर्जी पर है।...

"हमको धैर्य और नम्रता और अनासक्ति की आवश्यकता है।... संविधान सभा फूलों की सेज नहीं, बल्कि केवल कांटों की सेज होनेवाली है। आपको उससे दूर नहीं भागना चाहिए।...

"हमको कायरता नहीं दिखानी चाहिए, बल्कि अपने काम में श्रद्धा और साहस के साथ लग जाना चाहिए।...मेरे हृदय को जिस अंधकार ने घेर रखा है, उसकी परवाह न कीजिये। ईश्वर उसे प्रकाश में बदल देगा।"

भाषण के बीच दो-तीन बार सबने तालियां बजाईं।

कार्य-समिति के प्रस्ताव के पक्ष में २०४ मत आये और विरोध में ५१।

बरसात की गर्म और सीलभरी बंबई में कुछ दिन ठहरकर मैं जयप्रकाश-नारायण तथा उनकी पत्नी प्रभावती के साथ पंचगनी के लिए रवाना हो गया, जहां गांधीजी का नया मुकाम था। पूना तक तो हम लोग रेल में गये, फिर कार में बैठे।

जयप्रकाश तो शाम को सतारा में एक सभा में बोलने के लिए ठहर गये और प्रभावती तथा मैं कार द्वारा पहाड़ियों पर चढ़ते हुए और कुहरे को पार करते हुए, आधी रात के लगभग पंचगनी पहुंचे।

सुबह प्रभावती ने अपना सिर गांधीजी के चरणों पर रख दिया। उन्होंने स्नेह से उसकी पीठ थपथपाई। भोजन के समय तक जयप्रकाश भी आ गये। चूंकि वहां जयप्रकाश तथा मैं—दो ही आगंतुक थे, इसलिए गांधीजी से बातचीत करने का मुझे काफी अवसर मिला।

शुरू में उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने क्या देखा। मुझे संविधान सभा में विश्वास रखने तथा न रखनेवालों के बीच स्पष्ट दरार दिखाई दे रही थी।

गांधीजी—"मैं संविधान सभा को अ-क्रांतिकारी नहीं मानता। मेरा विश्वास है कि वह सविनय अवज्ञा का स्थान पूरी तरह ले सकती है।"

मैं—"आपका खयाल है कि अंग्रेज लोग ईमानदारी का खेल रहे हैं ?"

गांधीजी—"मेरा खयाल है कि इस बार अंग्रेज ईमानदारी का खेल खेलेंगे।"

मैं—"आपको यकीन है कि वे भारत छोड़कर जा रहे हैं ?"

गांधीजी—"हां।"

मैं—"मुझे भी यकीन हैं। परंतु मैं जयप्रकाश को यकीन नहीं दिला सकता। लेकिन फर्ज कीजिये कि अंग्रेज नहीं जायं, तो आप अपने तरीके का विरोध करेंगे, जयप्रकाश के तरीके का तो नहीं ?"

गांधीजी—"नहीं। जयप्रकाश को मेरे साथ आना होगा। मैं उसके मुकाबले में खड़ा नहीं होऊंगा। १९४२ में मैंने कहा था कि मैं अपरिचित पथ पर चल रहा हूं। अब मैं ऐसा नहीं करूंगा। तब मैं जनता को नहीं पहचानता था। अब मैं जानता हूं कि मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता।"

मैं—"१९४२ में आप नहीं जानते थे कि हिंसा होगी ?"

गांधीजी—"यह बात सही है।"

मैं—"मतलब यह है कि अगर संविधान-सभा असफल हो गई, तो आप सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं चलायेंगे ?"

गांधीजी—"यदि उस समय तक समाजवादी और साम्यवादी ठंढे नहीं पड़े, तो नहीं।"

मैं—"यह तो संभव नहीं नजर आता।"

गांधीजी—"जब भारत के वायुमंडल में इतनी हिंसा भरी है, तो मैं सविनय अवज्ञा का विचार नहीं कर सकता। आज कुछ सवर्ण हिंदू हरिजनों के साथ ईमानदारी का बर्ताव नहीं कर रहे।"

मैं—"कुछ सवर्ण हिंदुओं से आपका अभिप्राय कुछ कांग्रेसजनों से है ?"

गांधीजी—"बहुत से कांग्रेसजन तो नहीं, परंतु कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने हृदय से अस्पृश्यता का त्याग नहीं किया है। यही दुख की बात है।...मुसलमान भी महसूस करते हैं कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। एक कट्टर हिंदू के घर में एक मुसलमान एक ही दरी पर बैठकर हिंदू के साथ भोजन नहीं कर सकता। यह झूठा धर्म है। भारत में झूठी धार्मिकता है। उसे सच्चे धर्म की आवश्यकता है।"

मैं—"कांग्रेस को आप नहीं समझा पाये ?"

गांधीजी—"नहीं, मैं सफल नहीं हुआ। मैं असफल हो गया। लेकिन फिर भी कुछ प्राप्त हुआ है। मदुरा तथा दूसरे कई तीर्थ-स्थानों में हरिजन मंदिरों में जाने लगे हैं। उन्हीं मंदिरों में सवर्ण पूजा करते हैं।"

सुबह की बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

गांधीजी 'प्रकाश अंदर डाल' रहे थे और दूसरों में दोष देखने के बजाय प्रकाश-किरण कांग्रेस और हिंदुओं की बुराइयों को दिखाने में मदद कर रही थी। कुछ हिंदू इसे पसंद नहीं करते थे और जिन्ना और इंग्लैंड को दोष देते थे।

दोपहर को जयप्रकाश एक घंटा गांधीजी के साथ रहे।

जयप्रकाश—"कांग्रेस देश की शक्ति को संगठित नहीं कर रही है। आज कांग्रेस में योग्यता का स्थान नहीं है। जात-बिरादरी और सगे-संबंधी का महत्व है। यही कारण है कि हम समाजवादी संविधान सभा में नहीं जायेंगे। हमें ऐसा लगता है कि कांग्रेस कार्यकारिणी एक प्रकार की लाचारी से दबी है। 'अगर हम लोग ब्रिटिश प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते, तो क्या कर सकते हैं ?' यह उसका कहना है। यह कमजोरी का रुख है। वह चाहती है कि ब्रिटिश मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौते का रास्ता निकालें। हम अंग्रेजों से कह सकते थे, 'आप जाओ। हम आप सुलझ लेंगे।' अगर अंग्रेज इसे पसंद न करते, तो हमें जेल में डाल सकते थे।"

गांधीजी—"जेल तो चोरों और डाकुओं के लिए जेल है। मेरे लिए तो वह महल है। थॉरो को पढ़ने से पहले ही मैंने जेल जाने की बात निकाली थी। टाल्स्टाय ने एक रूसी पत्र में लिखा था कि मैंने एक नई चीज खोजी है। एक रूसी स्त्री ने उसका अनुवाद करके मेरे पास भेजा। मैंने जेल के भीतर से ही सरकार से लड़ाई लड़ी है। जेल जाने से स्वराज आ सकता है, बशर्ते कि उसके पीछे का सिद्धांत सही हो, लेकिन आज जेल जाना तो एक मजाक हो गया है।"

जयप्रकाश नारायण—"आज तो हमें अंग्रेजों को जेल भेजना चाहिए।"

गांधीजी—"क्यों ? कैसे ? इसकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो एक भाषा का अलंकार है और तुम जैसे व्यक्ति के मुंह से नहीं निकलना चाहिए। हिंसात्मक युद्ध के बाद भी यह आवश्यक नहीं होगा। इसी ढंग से चर्चिल कहा करते थे कि वह हिटलर के साथ क्या करेंगे और नात्सी युद्धापराधियों के मुकदमों की मूर्खता और शैतानी देखो। अपराधियों का मुकदमा करनेवालों में कुछ उतने ही अपराधी हैं।"

कई प्रांतों में कांग्रेस ने सरकार बना ली थी और गांधीजी और जयप्रकाश देख रहे थे कि वहां किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ़ रहा है।

जिस वेदना ने गांधीजी का अंत किया, उसके मार्ग पर उनके पैर पड़ने लगे थे।

तीसरे पहर गांधीजी ने मुझे एक घंटे से अधिक समय दिया। अमरीका के हब्शियों की समस्या पर कुछ देर बातचीत के बाद मैंने कहा—"भारत में आने के बाद मुझे यहां कुछ समझदार लोग मिले हैं।"

गांधीजी—"अच्छा ! तुम्हें मिले हैं? बहुत नहीं होंगे !"

मैं—"आप तथा दो-तीन और।" वह हंसने लगे। "कुछ तो कहते हैं कि हिंदू-मुस्लिम संबंध सुधरे हैं, कुछ कहते हैं कि बिगड़े हैं।"

गांधीजी—"जिन्ना तथा अन्य मुस्लिम नेता एक समय कांग्रेसी थे। उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी, क्योंकि मुसलमानों के प्रति हिंदुओं का कृपालुओं जैसा बर्ताव उन्हें खटकता था। मुसलमान लोग धर्मांध हैं, परंतु धर्मांधता का जवाब धर्मांधता से नहीं दिया जा सकता। अशिष्ट व्यवहार चिढ़ानेवाला होता है। कांग्रेस के प्रतिभाशाली मुसलमान उससे तंग आ गये। उन्हें हिंदुओं में मनुष्यों का भाई चारा नहीं मिला। वह कहते हैं कि इस्लाम मनुष्यों का भाई चारा है। वास्तव में वह मुसलमानों का भाई चारा है। कांग्रेस और लीग के बीच दरार पैदा करने में हिंदू

भेद-भाव ने हिस्सा लिया है। जिन्ना प्रतिभाशाली हैं, लेकिन उनकी प्रतिभा में खोट है। वह अपने-आपको पैगंबर समझते हैं।"

मैं—"वह एक वकील हैं।"

गांधीजी—"तुम उनके साथ अन्याय करते हो। १९४४ में उनके साथ अठारह दिन की अपनी बातचीत की मैं तुम्हें साक्षी देता हूं। वह सचमुच अपने को इस्लाम का त्राता मानते हैं।"

मैं—"मुसलमान लोग प्रकृति और साहस के धनी होते हैं। वे सहृदय और और मैत्रीपूर्ण होते हैं।"

गांधीजी—"हां।"

मैं—"परंतु जिन्ना रूखे हैं। वह छिछले आदमी हैं। वह तो मामले की वकालत करते हैं, ध्येय का प्रचार नहीं।"

गांधीजी—"मैं मानता हूं कि वह छिछले आदमी हैं। लेकिन मैं उन्हें फरेबी नहीं समझता। उन्होंने भोले-भाले मुसलमानों पर जादू डाल रखा है।"

मैं—"हिंदू छापवाली कांग्रेस मुसलमानों को कैसे अपना सकती है?"

गांधीजी—"पल भर में—अछूतों को समानता देकर।"

मैं—"सुना है कि हिंदुओं और मुसलमानों का आपसी संपर्क कम हो रहा है।"

गांधीजी—"ऊपर के स्तर का राजनैतिक संपर्क टूटता जा रहा है।"

मैं—"१९४२ में जिन्ना ने मुझसे कहा था कि आप स्वाधीनता नहीं चाहते।"

गांधीजी—"तो मैं क्या चाहता हूं?"

मैं—"उनका कहना था कि आप हिंदू-राज चाहते हैं।"

गांधीजी—"वह बिल्कुल गलत बात कहते हैं। इसमें जरा भी तथ्य नहीं है। मैं मुसलमान हूं, हिंदू हूं, बौद्ध हूं, ईसाई हूं, यहूदी हूं, पारसी हूं। अगर वह कहते हैं कि मैं हिंदू-राज चाहता हूं, तो वह मुझे जानते ही नहीं। उनकी इस बात में सचाई नहीं है। वह मानो एक क्षुद्र वकील की तरह बात कर रहे हों। ऐसे आरोप कोई सनकी ही लगा सकता है।... मेरा विश्वास है कि मुस्लिम लीग संविधान सभा में शामिल हो जायगी। परंतु सिखों ने इन्कार कर दिया है। सिख लोग यहूदियों की तरह अड़ियल होते हैं।"

मैं—"आप भी अड़ियल हैं।"

गांधीजी—"मैं?"

मैं--"आप अड़ियल आदमी हैं। आप जिद्दी हैं। आप हर चीज अपने ढंग की चाहते हैं। आप मृदु स्वभाव के अधिनायक हैं।"

इस पर सब लोग हंस पड़े और गांधीजी भी इस हंसी में खुलकर शामिल हुए।

गांधीजी--"अधिनायक ? मेरे पास कोई सत्ता नहीं है। मैं कांग्रेस को नहीं बदल पाया। उसके विरुद्ध शिकायतों का मेरे पास एक पुलिंदा है।"

मैं—"अठारह दिन जिन्ना के साथ रहकर आपको क्या पता लगा ?"

गांधीजी—"मुझे पता लगा कि वह सनकी हैं। सनकी आदमी कभी-कभी सनक छोड़ देता है और समझदार बन जाता है। उनके साथ बातचीत का मुझे कभी अफसोस नहीं हैं। मैं इतना जिद्दी कभी नहीं रहा कि सीखने से इन्कार कर दूं। मेरी हरएक सफलता एक सीढ़ी की तरह हुई है। जिन्ना के साथ मैं इसलिए आगे नहीं बढ़ सका कि वह सनकी हैं, परंतु बातचीत के समय उनके बर्ताव ने मुसलमानों के दिलों में भी उनके लिए नफरत पैदा कर दी है।"

मैं—"तो फिर हल क्या है ?"

गांधीजी—"जिन्ना को अभी पच्चीस वर्ष और काम करना है।"

मैं—"वह तो आप ही के बराबर जीना चाहते हैं।"

गांधीजी—"तो जबतक मैं १२५ वर्ष का न होऊं, तबतक उन्हें जीना चाहिए।"

मैं—"फिर आपका न मरना अच्छा है, वरना वह मर जायेंगे और आपको हत्या लगेगी। (हंसी) वह आपकी मृत्यु के दूसरे ही दिन मर जायेंगे।"

गांधीजी--"जिन्ना पथ-भ्रष्ट नहीं किये जा सकते और वह बहादुर हैं।... अगर जिन्ना संविधान सभा में नहीं जायं, तो अंग्रेजों को दृढ़ रहना चाहिए और हमको अकेले ही योजना को कार्यान्वित करने देना चाहिए। अंग्रेजों को जिन्ना की जबरदस्ती के आगे नहीं झुकना चाहिए। चर्चिल हिटलर के आगे नहीं झुका।"

१८ जुलाई को महात्माजी से मेरी अंतिम बातें हुईं। मैंने कहा--"अगर कार्य-समिति आपके 'अंधेरे में टटोलने' के अनुसार, अथवा आपके शब्दों में आपकी अंत:प्रेरणा के अनुसार चली होती, तो उसने संविधान-सभावाली केबिनेट मिशन-योजना ठुकरा दी होती ?"

गांधीजी--"हां, परंतु मैंने यह नहीं होने दिया।"

मैं--"आपका मतलब है कि आपने इसरार नहीं किया।"

गांधीजी—"इससे भी अधिक। मैंने उन्हें अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार चलने से रोक दिया, जब तक कि उन्हें भी ऐसा न लगे। इसकी कल्पना करने से कोई लाभ नहीं है कि क्या हुआ होता। तथ्य यह है कि डा० राजेंद्रप्रसाद ने मुझसे पूछा—'क्या आपकी अंतःप्रेरणा इतनी दूर जाती है कि चाहे हम उसे समझें या न समझें, आप हमको दूरवर्ती प्रस्ताव स्वीकार करने से रोकेंगे ?' मैंने उत्तर दिया—'नहीं, आप अपनी बुद्धि के अनुसार चलिये, क्योंकि मेरी खुद की बुद्धि मेरी अंतःप्रेरणा का समर्थन नहीं करती। मेरी अंतःप्रेरणा मेरी बुद्धि से विद्रोह करती है। मैंने अपनी आशंकाएं आपके सामने रख दी हैं, क्योंकि मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। जबतक मेरी बुद्धि सहारा न दे, तबतक मैं खुद अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार नहीं चलता।' "

मैं—"परंतु आपने तो मुझसे कहा था कि जब कभी आपकी अंतःप्रेरणा आवाज देती है, तो आप उसके अनुसार चलते हैं, जैसाकि आप उपवासों के पहले किया करते हैं।"

गांधीजी—"हां, परंतु इन अवसरों पर भी उपवास शुरू होने से पहले मेरी बुद्धि मौजूद रहती है।"

मैं—"फिर आप वर्तमान राजनैतिक स्थिति में अपनी अंतःप्रेरणा को क्यों घुसेड़ते हैं ?"

गांधीजी—"मैंने ऐसा नहीं किया। लेकिन मैं वफ़ादार रहा। मैं केबिनेट मिशन की ईमानदारी में अपनी आस्था बनाये रखना चाहता था। इसलिए मैंने केबिनेट मिशन से कह दिया कि मेरी अंतःप्रेरणा को आशंकाएं हैं।"

मैं—"क्या इसका यह अर्थ है कि केबिनेट-मिशन के इरादे सच्चे थे ?"

गांधीजी—"शुरू में मैंने उन्हें जो प्रमाण-पत्र दिया था, उसका एक शब्द भी वापस नहीं लेना चाहता।"

मैं—"क्या आप इसलिए संविधान समर्थक बन गये हैं कि आपको हिंसा का भय है ?"

गांधीजी—"मेरा कहना है कि हमको संविधान सभा में जाकर उसका उपयोग करना चाहिए। अगर अंग्रेज़ बेईमान हैं, तो उनकी पोल खुल जायगी। हानि हमारी नहीं होगी, उनकी तथा मानवता की होगी।"

मैं—"मेरा खयाल है कि आप आज़ाद हिंद फौज तथा सुभाषचंद्र बोस की भावना से डरते हैं। वह चारों ओर फैल रही है। उसने नौजवानों चित

मोह लिया है और आप इसे जानते हैं और उनके चित्त की इस अवस्था से डरते हैं। नौजवान पीढ़ी भारत के लिए दीवानी है।"

गांधीजी—"उसने देश के मन को नहीं मोहा है। यह अतिशयोक्ति है। हां, नौजवानों तथा स्त्रियों का एक वर्ग उनका अनुगामी है। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने हिंदुओं को दयालुता विशेष रूप से दी है। 'दयालु हिंदू' शब्दों का प्रयोग निंदा के तौर पर किया जाता है। परंतु मैं इन्हें सम्मान के शब्दों की तरह लेता हूं, जैसे चर्चिल के शब्द 'नंगा फकीर'। मैंने तो इन शब्दों को प्रशंसासूचक मान लिया और इसके बारे में चर्चिल को लिखा। मैंने चर्चिल से कहा कि मैं तो नंगा फकीर बनना चाहूंगा, परंतु अभी तक बन नहीं पाया हूं।"

मैं—"क्या चर्चिल ने कोई जवाब दिया ?"

गांधीजी—"हां, उन्होंने वाइसराय की मार्फत शिष्टतापूर्वक मेरे पत्र की प्राप्ति स्वीकार की। ...खैर तथाकथित सभ्यता से अछूती और अभ्रष्ट, अस्वाभाविकता-रहित स्त्रियां मेरे साथ हैं।"

मैं—"किंतु आप बोस के प्रशंसक हैं। आपका विश्वास है कि वह जीवित हैं।"

गांधीजी—"बोस-संबंधित कथाओं को मैं प्रोत्साहन नहीं देता। मैं उनसे सहमत नहीं था। अब मुझे विश्वास नहीं है कि वह जीवित हैं।"

मैं—"मेरी दलील यह है कि बोस जर्मनी और जापान गये। ये दोनों फासिस्त देश है। अगर वह फासिस्तवाद के समर्थक थे, तो आपको उनसे कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। अगर वह देशभक्त थे और समझते थे कि जर्मनी और जापान भारत को बचा लेंगे, तो वह मूर्ख थे और राजनीतिज्ञों का मूर्ख होना बुरा है।"

गांधीजी—"मालूम होता है, राजनीतिज्ञों के बारे में तुम्हारी बहुत अच्छी राय है। अधिकतर राजनीतिज्ञ मूर्ख होते हैं। ...मुझे भारी दिक्कतों के विरुद्ध काम करना पड़ रहा है। ... हिंसा की क्रियाशील प्रवृत्ति फैली हुई है, जिसका मुकाबला करना है और मैं अपने ढंग से चल रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह एक ऐसा अवशेष है, जो समय पाकर अपने-आप खत्म हो जायगा। यह जिंदा नहीं रह सकता। यह भारत की भावना के प्रतिकूल तो है ही। लेकिन बातों से क्या फायदा ? मैं तो एक रहस्यपूर्ण दैव में विश्वास करता हूं, जो हमारे भाग्य का विधाता है—आप उसे ईश्वर के नाम से पुकारिये या किसी अन्य नाम से।"

: ४ :

नोआखाली की महान यात्रा

कांग्रेस ने अस्थायी सरकार में शामिल होने से इन्कार कर दिया, क्योंकि जिन्ना के हठ पर लार्ड वेवल ने उन्हें एक पद पर मुसलमान को नामज़द करने का अधिकार नहीं दिया। यह सही है कि वेवल ने सार्वजनिक रूप से बतला दिया था कि अंतरिम सरकार की रचना आगे के लिए उदाहरण नहीं मानी जायगी। कांग्रेस को डर था कि यह मिसाल बन जायगी और उसने जिन्ना के इस अधिकार को मानने से सख्ती के साथ इन्कार कर दिया कि वह मंत्रिमंडल में कांग्रेसी मुसलमान की नियुक्ति को रोक सकते हैं।

तदनुसार वेवल ने कांग्रेस तथा लीग से अपने-अपने उम्मीदवारों की सूचियां भेजने को फिर कहा, परंतु कांग्रेस की इच्छा के अनुसार यह स्पष्ट कर दिया कि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के मनोनीतों को नहीं रोक सकता। इस पर जिन्ना ने अस्थायी सरकार में सम्मिलित होने का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। १२ अगस्त १९४६ को वेवल ने नेहरू को सरकार बनाने का कार्य-भार सौंपा। नेहरू ने जो सरकार बनाई, उसमें एक हरिजन-सहित छः कांग्रेसी हिंदू, एक ईसाई, एक सिख, एक पारसी और दो मुसलमान, जो मुस्लिम लीग के नहीं थे, लिये। वेवल ने घोषणा की कि मुस्लिम लीग चाहे तो अपने पांच सदस्यों के नाम अस्थायी सरकार के लिए दे सकती है। जिन्ना ने कोई ध्यान नहीं दिया।

मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त को "सीधी कार्रवाई का दिन" मनाया। कलकत्ता में चार दिन भीषण दंगे हुए।

२४ अगस्त की शाम को शिमला में सर शफ़ातअहमद खां की छुरों से हत्या कर दी गई। इन्होंने नेहरू की अस्थायी सरकार में शामिल होने के लिए मुस्लिम लीग से इस्तीफ़ा दे दिया था।

२ सितंबर को नेहरू भारत के प्रधान मंत्री बने।

गांधीजी २ सितंबर को नई दिल्ली की भंगी-बस्ती में थे। उस दिन वह बहुत सवेरे उठे और नई सरकार के कर्तव्यों के बारे में नेहरू को पत्र लिखा। भारत के इतिहास में यह एक महान पत्र था। अपनी प्रार्थना-सभा में वह शाम को बोले और अंग्रेजों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया। उनके मन में उल्लास नहीं था। "जल्दी-से-जल्दी आपके हाथ में सारी शक्ति आ जायगी," उन्होंने

दर्शकों से वादा किया—"अगर पं० नेहरू—आपके बिना ताज के बादशाह व प्रधान मंत्री—तथा उनके साथी अपने कर्तव्य का पालन करें।" मुसलमान हिंदुओं के भाई हैं, हालांकि वह अभी तक सरकार में नहीं हैं और गांधीजी ने कहा कि भाई गुस्से का बदला गुस्से से नहीं देता।

परंतु जिन्ना ने २ सितंबर को 'मातम का दिन' घोषित कर दिया।

गांधीजी ने इन संकेतों को गलत नहीं पढ़ा। उन्होंने ९ सितंबर को कहा—"अभी तक हम गृह-युद्ध में नहीं फंसे हैं, परंतु उसके नजदीक जा रहे हैं।" सितंबर भर बंबई में गोलीबाजी और छुरेबाजी की घटनाएं होती रहीं। पंजाब में भी गड़बड़ फैल गई। बंगाल और बिहार मार-काट से थर्रा उठे।

भारत की इस अशांत स्थिति से भयभीत होकर वेवल ने मुस्लिम लीग को नई सरकार में लाने के प्रयत्न दुगुने कर दिये। जिन्ना अंत में राजी हो गये और उन्होंने चार मुस्लिम लीगी सदस्यों को तथा एक अछूत को नियुक्त किया।

दोनों जातियों के बीच लगातार मार-काट के विरुद्ध गांधीजी रोज प्रचार करते थे। उन्होंने कहा—"कुछ लोगों को खुशी है कि हिंदू अब इतने बलवान हो गये हैं कि उन्हें मारने की कोशिश करनेवालों को वे बदले में मार सकते हैं। मैं तो इसे अच्छा समझूंगा कि हिंदू लोग बिना बदला लिये मर जायं।"

बहुत से कांग्रेसी मंत्री और उनके सहायक तथा प्रांतीय अधिकारी हरिजन बस्ती में गांधीजी की कुटिया पर सलाह लेने आते थे। गांधीजी 'महा-प्रधान-मंत्री' थे।

हिंदू-मुस्लिम फिसादों की बढ़ती हुई आग गांधीजी को चैन नहीं लेने दे रही थी, परंतु मानव-जीवों में उनकी आस्था बनी हुई थी।

पागल बने हुए मनुष्यों में अब गांधीजी देवत्व की खोज करने लगे।

अक्तूबर में पूर्वी बंगाल के नोआखाली तथा टिपरा देहाती क्षेत्रों में हिंदुओं पर मुसलमानों के व्यापक हमले हुए। इनसे महात्माजी इतने भयभीत हुए, जितने शहरी दंगों से नहीं हुए थे। अभी तक भारत के गांवों में दोनों जातियों के लोग मेल-जोल से रहते थे। अब यदि जातीय विद्वेष देहात में भी फैल गया, तो राष्ट्र का सत्यानाश हो जायगा। गांधीजी ने गड़बड़ के स्थानों पर जाने का निश्चय किया। मित्रों ने उनका इरादा बदलने की कोशिश की, परंतु उन्होंने जवाब दिया—"मैं तो यह जानता हूं कि जबतक मैं वहां नहीं पहुंचूंगा, तबतक मुझे शांति नहीं मिलेगी।" उन्होंने लोगों से कहा कि स्टेशन पर उन्हें विदा करने न आयें।

परंतु लोगों की भीड़ पहुंच गई। सरकार ने उनके लिए स्पेशल गाड़ी का इंतज़ाम कर दिया। रास्ते में हरएक बड़े स्टेशन पर विशाल जन-समुदायों ने गाड़ी को घेर लिया। इस हल्ले-गुल्ले से थके-थकाये गांधीजी पांच घंटा देर से कलकत्ता पहुंचे।

जिस दिन गांधीजी दिल्ली से रवाना हुए, उस दिन कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगे में बत्तीस आदमी मारे गये। कलकत्ता पहुंचने के दूसरे दिन गांधीजी औपचारिक रूप से बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज़ से मिले और फिर बंगाल के प्रधान-मंत्री श्री हसन सुहरावर्दी के यहां काफी देर ठहरे। दूसरे दिन, ३१ अक्तूबर को, उन्होंने सुहरावर्दी के साथ कलकत्ता की उजड़ी हुई गलियों का दौरा किया। मनुष्य को पशुओं से भी नीचा गिरानेवाले सामूहिक पागलपन की निराशापूर्ण भावना ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया, परंतु फिर भी वह आशावादी बने रहे।

अब वह नोआखाली जा रहे थे, जहां मुसलमानों ने हिंदुओं की हत्याएं की थीं, हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था, हिंदू स्त्रियों पर बलात्कार किया था तथा हिंदू घरों और मंदिरों को जला डाला था। गांधीजी ने कहा था—"यह त्रस्त नारीत्व की पुकार है, जो मुझे बरबस नोआखाली बुला रही है।... जब तक झगड़े की अंतिम चिनगारियां बुझ न जायं, तब तक मैं बंगाल छोड़कर नहीं जाऊंगा। यदि जरूरत पड़े, तो मैं यहां मर जाऊंगा, परंतु असफलता स्वीकार नहीं करूंगा।"

प्रार्थना-सभा में गांधीजी के इन शब्दों पर कितने ही श्रोताओं की आंखों में आंसू आ गये।

परंतु दुखी महात्माजी के लिए अभी और भी संताप बाकी थे। नोआखाली की घटनाओं ने बिहार में हिंदुओं का रोष भड़का दिया था। २५ अक्तूबर को 'नोआखाली दिवस' मनाया गया। अगले सप्ताह में 'लंदन टाइम्स' के दिल्ली-स्थित संवाददाता के विवरण के अनुसार, दंगइयों द्वारा ४५८० आदमी मार डाले गये। गांधीजी ने बाद में यह संख्या दस हजार से ऊपर कूती थी। मरनेवालों में अधिक संख्या मुसलमानों की थी।

बिहार के अत्याचारों के समाचार कलकत्ता में गांधीजी के पास पहुंचे और वह बहुत दुखी हुए। उन्होंने बिहारियों के नाम एक संदेश भेजा—"मेरे स्वप्नों के बिहार ने उन्हें झूठा कर दिया है। ऐसा न हो कि जिस बिहार ने कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ाने में इतना काम किया है, वही सबसे पहले उसकी कब्र खोदनेवाला बन जाय।"

इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप गांधीजी ने घोषणा की कि वह 'कम-से-कम भोजन करेंगे' और 'यदि पथभ्रष्ट बिहारी लोग नया अध्याय न शुरू करेंगे', तो यह 'आमरण उपवास' बन जायगा।

बिहार की भीषणताओं के फलस्वरूप बंगाल में प्रतिशोध की आशंका से नेहरू और पटेल तथा लियाकतअली खां और अब्दुर्रब निश्तर हवाई जाहज में दिल्ली से कलकत्ता जा पहुंचे। लार्ड केवल भी आ गये। डर था कि ईद के त्यौहार पर मुसलमानों का धार्मिक जोश न भड़क उठे।

कलकत्ता से चारों मंत्री बिहार गये। नेहरू ने जो कुछ देखा तथा सुना, उससे क्रोधित होकर उन्होंने धमकी दी कि अगर हिंदुओं ने मार-काट बंद न की, तो वह बिहार पर हवाई जहाजों से बम गिरवा देंगे। परंतु गांधीजी ने आलोचना की—"यह अंग्रेजों का तरीका है। फौज की सहायता से दंगों को दबाकर वे लोग भारत की आजादी को दबा देंगे।"

नेहरू ने घोषणा की कि जब तक बिहार में शांति स्थापित नहीं हो जायगी, वह वहां से नहीं जायंगे। ५ नवंबर को गांधीजी ने उन्हें एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा—"बिहार के समाचारों ने मुझे झकझोर डाला है।...जो सुनाई दे रहा है, उसका आधा भी सत्य है, तो उससे पता चलता है कि बिहार मानवता को भूल गया है।... मेरी आंतरिक पुकार कहती है—'इस प्रकार के विवेक शून्य हत्याकांड को देखने के लिए तुम जीवित मत रहो।... क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं ?' यह तर्क मुझे बेरोक उपवास की ओर ले जा रहा है।"

कलकत्ता में तथा अन्यत्र ईद शांतिपूर्वक ग्रुजर गई। महात्माजी को बिहार से संतोषजनक समाचार मिले। उनका कर्तव्य नोआखाली में था, जहां मुसलमानों की मार-काट के सामने हिंदू भाग रहे थे। भय आजादी और लोकतंत्र का शत्रु है। अहिंसात्मक बहादुरी हिंसा के विष को मारनेवाली है। वह नोआखाली के हिंदुओं के सामने बहादुर बनकर उन्हें बहादुरी का पाठ सिखायेंगे। इतने ही महत्व की बात यह थी कि गांधीजी जानना चाहते थे कि वह मुसलमानों पर भी असर डाल सकते हैं या नहीं। यदि अहिंसा, अ-प्रतिशोध तथा भाईचारे की भावना मुसलमानों तक नहां पहुंच सकती, तो आजाद, संयुक्त भारत कैसे बन सकता है ?

गांधीजी ने कहा—"मान लो, मुझे कोई मार डालता है, तो बदले में किसी दूसरे को मारकर तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और अगर तुम इस बारे में सोचो, तो पता चलेगा गांधी को सिवा गांधी के कौन मार सकता है ? आत्मा को कोई भी

नष्ट नहीं कर सकता ?"

क्या वह सोचते थे कि नोग्राखाली में कोई मुसलमान उन्हें मार डालेगा ? क्या उन्हें इस बात का भय था कि बदले की भावना से हिंदू सारे देश में मुसलमानों को कत्ल कर डालेंगे ?

नोग्राखाली जाने की तड़प इतनी जोरदार थी कि रोकी नहीं जा सकती थी।

गांधीजी ६ नवंबर को कलकत्ता से नोग्राखाली के लिए रवाना हुए। नोग्राखाली भारत का सबसे दुर्गम भाग है। वह गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के जलावरुद्ध मुहाने की भूमि में स्थित है। यातायात और दैनिक जीवन संबंधी वहां भारी कठिनाइयां हैं। बहुत से गांवों में नावों से पहुंचा जा सकता है। जिले की सड़कों को बैलगाड़ी भी पार नहीं कर सकती। वह ४० मील का भू-भाग है, जिसमें २५ लाख व्यक्ति हैं, ८० प्रतिशत मुसलमान। गृह-युद्ध और धार्मिक कटुता से उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। कुछ गांव तो विध्वंस पड़े थे। गांधीजी ने इस दूरस्थ क्षेत्र द्वारा प्रस्तुत भौतिक या आध्यात्मिक चुनौती को जान-बूझकर स्वीकार किया था। उन्होंने महीनों धीरज रखा। ५ दिसंबर को उन्होंने नोग्राखाली से लिखा—"मेरा वर्तमान मिशन मेरे जीवन का बड़ा ही कठिन और जटिल मिशन है।... मैं हर प्रकार की संभावना के लिए उद्यत हूं। 'करो या मरो' को यहां कसौटी पर चढ़ाना है। 'करने' का यहां अर्थ है कि हिंदू और मुसलमान शांति और सद्भाव के साथ मिल-जुलकर रहें। इस प्रयत्न में मैं अपनी जान की बाजी लगा दूंगा।"

गांधीजी के साथ बंगाल के कई मंत्री और गांधीजी के सचिव तथा सहायक नोग्राखाली तक गये। गांधीजी ने अपने शिष्यों को गांवों में बिखेर दिया और अपने साथ प्रो० निर्मलकुमार बसु, परशुराम तथा मनु गांधी को रखा।

उन्होंने कहा कि अपना खाना वह स्वयं पकायेंगे और अपनी मालिश स्वयं करेंगे। मित्रों ने विरोध करते हुए कहा कि मुसलमानों से सुरक्षा के लिए उनके साथ पुलिस रहनी ही चाहिए। उन्होंने कहा कि उनकी डाक्टर सुशीला नैयर भी उनके पास रहनी चाहिए। लेकिन नहीं, वह, उनके भाई प्यारेलाल, सुचेता कृपालानी, आभा और कनु, सब एक-एक गांव में बैठ जायं; ऐसे गांव में, जो प्रायः विरोधी और एकांत में थे और अपने प्रेम के उदाहरण से वहां की हिंसा को निर्मूल करें। प्यारेलाल मलेरिया ज्वर में पड़े थे। उन्होंने गांधीजी को एक पुर्जा भेजा कि क्या उनकी देखभाल के लिए सुशीला उनके पास आ सकती है ? गांधीजी ने उत्तर दिया—"जो गांवों में जा रहे हैं, उन्हें इस इरादे से जाना चाहिए कि जीवित रहेंगे या

मर जायंगे। अगर वे बीमार पड़ते हैं, तो उनको वहीं अच्छा होना है या वहीं मरना है। तभी जाने का कुछ अर्थ होगा। व्यवहार में इसका मतलब यह होता है कि उन्हें गांव के उपचारों या प्रकृति के पंच-तत्वों से संतुष्ट रहना चाहिए। डा० सुशीला के पास देख-भाल को अपना गांव है। उसकी सेवाएं इस समय हमारे दल सदस्यों के लिए नहीं हैं। वे पूर्वी बंगाल के ग्रामवासियों के लिए पहले ही से गिरवी रखी जा चुकी हैं।" वह स्वयं अपने पर इसी प्रकार का निर्मम और सख्त अनुशासन लागू कर रहे थे।

नोग्राखाली की यात्रा में गांधीजी उनच्चास गांवों में गये। वह सुबह चार बजे उठते, तीन-चार मील नंगे पांव चलकर एक गांव में पहुंचते, वहां लोगों के साथ बातचीत तथा निरंतर प्रार्थना करते हुए, एक या दो या तीन दिन ठहरते, फिर अगले गांव को चल पड़ते। गांव में पहुंचकर वह किसी ग्रामीण की झोंपड़ी में, और हो सकता तो किसी मुसलमान की झोंपड़ी में, जाते और कहते कि वह उनको तथा उनके साथियों को अपने यहां ठहरा लें। दुत्कारे जाने पर वह आगे की झोंपड़ी में कोशिश करते। वह स्थानीय फलों तथा सब्जियों पर, और मिल जाता तो बकरी के दूध पर, निर्वाह करते। ७ नवंबर १९४६ से २ मार्च १९४७ तक उनका यही जीवन रहा। उनकी आयु का सतत्तरवां वर्ष अभी पूरा हुआ था।

रास्ता चलने में कठिनाई होती थी। उनके पांवों में बिवाइयां फट गईं। परंतु वह चप्पल बहुत कम पहनते थे। नोग्राखाली का झगड़ा इसलिए पैदा हुआ कि वह लोगों का अहिंसा के द्वारा इलाज करने में सफल नहीं हुए थे। इसलिए यह उनकी प्रायश्चित्त की यात्रा थी और प्रायश्चित्त करनेवाला यात्री जूते नहीं पहनता। विरोधी तत्व कभी-कभी उनके रास्ते में कांच के टुकड़े, कांटे और मैला बिखेर देते। वह उन्हें दोष न देते। उनके नेताओं ने उन्हें भरमा दिया था। कितने ही स्थानों पर दलदल के ऊपर बने हुए पुलों को पार करना पड़ता था। ये पुल बांसों की दस-पंद्रह फुट ऊंची बैसाखियों पर चार-पांच मोटे बांसों को बांधकर बनाये हुए होते थे। इन भोंड़े, डावांडोल पुलों पर पकड़ के लिए एक ओर बांस की हत्थी लगी रहती थी, परंतु यह भी किसी पुल में होती थी, किसीमें नहीं। एक बार गांधीजी का पैर फिसल गया और वह नीचे दलदल में गिर पड़े होते, परंतु उन्होंने फुर्ती से अपने-आपको संभाल लिया। ऐसे पुलों को कुशलता से और बेखतरे पार करने के लिए उन्होंने नीचे पुलों पर चलने का अभ्यास किया।

हिंदू स्त्रियों का धर्म बदलने के लिए मुसलमान लोग उनकी चूड़ियां फोड़

डालते थे और उनके माथे का सौभाग्य-सिंदूर हटा देते थे। हिंदू पुरुषों को डाढ़ियां रखने के लिए, मुसलमानों की तरह तहमद बांधने के लिए और कुरान पढ़ने के लिए मजबूर किया गया। मूर्तियां तोड़ डाली गईं और हिंदू मंदिर भ्रष्ट कर दिये गये। सबसे बुरी बात यह की गई कि हिंदुओं से उनकी गौएं कटवाई गईं और सबको मांस खिलाया गया।

शुरू में गांधीजी के कुछ सहयोगियों ने सलाह दी कि वह हिंदुओं पर जोर डालें कि वे संकटग्रस्त क्षेत्रों को छोड़कर दूसरे प्रांतों में जा बसें। गांधीजी ने इस प्रकार की पराजय-भावना को बड़े ताव के साथ अस्वीकार कर दिया। आबादियों की अदला-बदली करना यह मानने के समान होगा कि भारत का संयुक्त रहना असंभव है।

नोआखाली की समस्या का अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने निश्चय किया कि प्रत्येक गांव में एक ऐसा मुसलमान और एक हिंदू छांटा जाय, जो गांव के सारे निवासियों की सुरक्षा की गारंटी कर सकें और आवश्यकता पड़े, तो उनकी रक्षा के लिए जान भी दे दें। इस उद्देश्य से उन्होंने दोनों संप्रदायों के लोगों से बातें कीं। एक बार वह झोंपड़ी में फर्श पर मुसलमानों के बीच बैठे हुए अहिंसा की खूबियों पर व्याख्यान दे रहे थे। सुचेता कृपालानी ने महात्माजी को एक पर्चा दिया, जिसमें लिखा था कि उनके दाहिनी ओर बैठे हुए आदमी ने हाल के दंगों में कई हिंदुओं की हत्याएं की थीं। गांधी धीरे से मुस्कराये और आगे बोलते रहे। या तो हत्यारे को फांसी पर चढ़ा दो—और गांधीजी का फांसी में विश्वास नहीं था—अन्यथा उसे दयालुतापूर्वक ठीक करने का प्रयत्न करो। अगर तुम उसे जेल में डालो, तो दूसरे आ जायंगे। परंतु गांधीजी जानते थे कि उन्हें एक सामाजिक रोग का इलाज करना है, एक या अधिक व्यक्तियों का सफाया कर देने से यह रोग मिटनेवाला नहीं था। इसलिए गांधीजी उन्हें क्षमा कर देते थे और उनसे कह भी देते थे और हिंदुओं से भी कहते थे कि उन्हें क्षमा कर दें। वह उनसे कहते थे कि वह स्वयं अपराधी हैं, क्योंकि वह हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करने में असफल हुए।

यह दुनिया ऐसे ही वैमनस्य से भरी हुई है। "लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अपने दुश्मन को प्यार करो, जो तुम्हें कोसें, उन्हें आशीर्वाद दो, जो तुम्हें घृणा करें, उनकी भलाई करो और जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करें, तुम्हारा हनन करें, उनके लिए प्रार्थना करो।...क्योंकि जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हींको प्यार करोगे तो

उसमें तारीफ क्या हुई !" यह थी ईसा की सिखावन। गांधीजी ने उस पर अमल किया।

एक गांव में गांधीजी ने अपनी शिष्या अमतुस सलाम को भेजा था। उन्होंने देखा कि इस गांव के मुसलमान अपने हिंदू पड़ोसियों के साथ अभी तक दुर्व्यवहार कर रहे हैं। फिलिप्स टैलबॉट लिखते हैं—"गांधी परंपरा के अनुसार अमतुस सलाम ने निश्चय किया कि जबतक मुसलमान लोग एक हिंदू के घर से लूटी हुई बलि की तलवार नहीं लौटायंगे, तबतक वह खाना नहीं खायेंगी ।...तलवार तो मिली नहीं, शायद वह किसी पोखर में फेंक दी गई थी। जो भी हुआ हो, जब अमतुस सलाम के अनशन के पच्चीसवें दिन गांधीजी उस गांव में पहुंचे, तो वहां के घबराये हुए मुसलमान निवासी कोई भी बात मानने के लिए तैयार थे।...कई घंटों की चर्चाओं के बाद गांधीजी ने गांव के नेताओं से यह प्रतिज्ञा भरवा ली कि वह फिर कभी हिंदुओं को नहीं सतायेंगे।"

गांधीजी और उनके सहयोगी बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम कर रहे थे। यात्रा के शुरू में उनकी प्रार्थना-सभाओं में मुसलमान लोग खूब जमा हो जाते थे, परंतु लीगी नेताओं ने मुसलमानों के इस आचरण को पसंद नहीं किया। मुल्लाओं ने इसके खिलाफ फतवा दे दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि गांधीजी ईमानवालों को झूठी कसमें खिला रहे हैं। गांधीजी के प्रति मुसलमानों का आकर्षण था, पर न तो इसे लीगी नेता मुसलमान पसंद करते थे और न धर्मांध मुसलमान।

एक मुलाकात में गांधीजी ने कहा था—"मैंने अपने लोगों से कह दिया है कि फौज या पुलिस की मदद पर निर्भर न रहें। तुम्हें लोकतंत्र स्थापित करना है और फौज तथा पुलिस पर निर्भरता लोकतंत्र के साथ मेल नहीं खाती।" वह लोगों के दिमाग बदलकर उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करना चाहते थे। उन्होंने एक मित्र से कहा—"यदि यह बात पूरी हो गई, तो मेरे लिए मेरे जीवन की महान विजय होगी ।...मैं बंगाल से पराजित होकर नहीं लौटना चाहता। अगर आवश्यकता हुई, तो मैं स्वयं हत्यारे के हाथों अपनी जान दे दूंगा।"

कभी-कभी उनके निकटतम सहकर्मी डरते थे कि दूर-दूर के गांवों में उन अकेलों का न मालूम क्या हाल हो जाय। गांधीजी ने उन्हें हिदायत दी—"तुम लोगों को व्यर्थ खतरे में नहीं पड़ना चाहिए, परंतु स्वाभाविक तौर पर जो कुछ आ पड़े, उसका मुकाबला करना चाहिए।"

६ जनवरी को गांधीजी का मौन-दिवस था और उनका प्रार्थना-प्रवचन

श्रोताओं को पढ़कर सुनाया गया। उस दिन वह चंडीपुर में थे और उन्होंने लोगों को अपने वहां आने का अभिप्राय बतलाया--"मेरे सामने एक ही उद्देश्य है और वह बिल्कुल स्पष्ट है। वह यह कि ईश्वर हिंदुओं तथा मुसलमानों के हृदयों को शुद्ध करे और दोनों जातियां आपसी संदेह तथा भय से मुक्त हो जायं। आप लोग इस प्रार्थना में मेरे साथ शरीक हों और कहें कि परमात्मा हम दोनों का है और वह हमें सफलता दे।"

ऐसा करने के लिए उन्हें इतनी दूर से क्यों आना पड़ा ?

"मेरा उत्तर है कि अपनी इस यात्रा में मैं अपनी शक्ति भर ग्रामीणों को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि मेरे हृदय में किसीके लिए तनिक भी दुर्भावना नहीं है। ऐसा मैं उन लोगों के बीच रहकर और घूमकर ही सिद्ध कर सकता हूं, जो मुझ पर विश्वास करते हैं।"

इस गांव में गांधीजी को खबर मिली कि दंगे के दिनों में जो हिंदू घर छोड़कर भाग गये थे, उनका लौटकर आना शुरू हो गया है। दूसरी ओर उनकी प्रार्थना-सभा में उपस्थिति कम होने लगी। "लेकिन," अपने व्याख्यान की स्वयं रिपोर्ट करते हुए गांधीजी ने लिखा—"ऐसा होने पर भी कोई कारण नहीं है कि मैं निराश होकर अपने ध्येय को छोड़ दूं। मैं अपना चर्खा लेकर गांव-गांव घूमूंगा। मेरे लिए यह कार्य भगवद्भक्ति है।"

१७ जनवरी को पत्रों में प्रकाशित हुआ कि पिछले छः दिनों में गांधीजी बीस घंटे रोज काम करते रहे हैं। प्रत्येक दिन उन्होंने अलग-अलग गांवों में बिताया और उनकी झोंपड़ी में लोगों की भीड़ सलाह, सांत्वना तथा दोष स्वीकार करने के लिए आती रहती थी।

नारायणपुर गांव में एक मुसलमान ने रात में उन्हें आश्रय दिया और दिन में भोजन। गांधीजी ने उसे सार्वजनिक रूप से धन्यवाद दिया। इस प्रकार का आतिथ्य अब बढ़ता जा रहा था।

इस मुसलमान ने गांधीजी से पूछा कि इतनी कठिन यात्रा का कष्ट उठाने के बजाय वह जिन्ना से समझौता क्यों नहीं कर लेते ? उन्होंने जवाब दिया—"नेता को उसके अनुयायी बनाते हैं। पहले लोगों को आपसी शांति स्थापित करनी चाहिए और तब पड़ोसियों के प्रति उनकी शांति-भावना का प्रतिबिंब उनके नेताओं पर पड़ेगा। ... अगर उनका पड़ोसी बीमार पड़ जाय, तो क्या वे कांग्रेस या लीग से पूछने के लिए दौड़ेंगे कि क्या करना चाहिए ?"

किसीने पूछा कि क्या शिक्षा से मदद नहीं मिलेगी ? गांधीजी ने कहा—"शिक्षा ही काफी नहीं है। जर्मन पढ़े-लिखे थे, लेकिन फिर भी वे हिटलर के अधीन हो गये। शिक्षा या ज्ञान से आदमी नहीं बनता, बल्कि शिक्षा असली जीवन का निर्माण करनेवाली होनी चाहिए। अगर वे यह नहीं जानते कि अपने पड़ोसियों के साथ भ्रातृ-भाव से कैसे रहें, तो उनके सब बातों का ज्ञान रखने से क्या लाभ ?"

अगर सवाल यह हो कि हम अपनी जान दें या हत्यारे की लें, तो आप क्या सलाह देंगे ?

गांधीजी ने कहा—"मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं है कि पहला मार्ग श्रेयस्कर होगा।"

२२ जनवरी को पनियाला गांव की प्रार्थना-सभा में पांच हजार नर-नारी उपस्थित थे। किसीने पूछा—"आपकी राय में सांप्रदायिक दंगों का क्या कारण है ?"

"दोनों जातियों की मूर्खता," उन्होंने जवाब दिया।

२७ जनवरी को पल्ला गांव में गांधीजी से पूछा गया—"यदि किसी स्त्री पर आक्रमण हो, तो उसे क्या करना चाहिए ? क्या वह आत्म-हत्या कर ले ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"जीवन की मेरी योजना में आत्म-समर्पण के लिए जगह नहीं है। स्त्री के लिए आत्म-समर्पण से अच्छा यही है कि वह आत्म-हत्या कर ले।"

५ फरवरी को श्रीनगर में स्वयंसेवकों ने एक मंच बनाया था और ऊपर चंदोवा लगाया था। गांधीजी ने उन्हें लताड़ा—"यह श्रम और धन का अपव्यय है।" उन्होंने प्रार्थना-सभा में कहा—"मुझे तो बस एक ऊंचा चबूतरा चाहिए, जिस पर मेरी मांस-रहित हड्डियों को आराम देने के लिए कोई साफ मुलायम चीज बिछी हो।" फिर वह हंस पड़े और उन्होंने अपने बिना दांत के मसूड़े दिखा दिये।

गांधीजी की सभाओं में अमीर मुसलमानों की अपेक्षा गरीब मुसलमान अधिक आते थे। उन्हें समाचार मिले कि संपत्तिवान और शिक्षित मुसलमान गरीबों को आर्थिक दबाव का डर दिखा रहे थे। इन लोगों ने गांधी-विरोधी पोस्टर भी लगवाये। २० फरवरी को टिपरा जिले में बिश्काटाली गांव से लौटते समय गांधीजी बांस के सुंदर वनों तथा नारियल के झुरमुटों में होकर गुजरे। उन्होंने पेड़ों पर पोस्टर लगे हुए देखे, जिन पर लिखा था—"बिहार को याद

करो, तुरंत टिपरा छोड़कर चले जाओ।" "आपको बार-बार चेतावनी दी जा चुकी है, फिर भी आप घर-घर घूमने पर तुले हुए हैं। भलाई इसीमें है कि चले जाओ।" "जहां आपकी जरूरत है, वहां जाइये। आपका पाखंड सहन नहीं किया जायगा। पाकिस्तान मंजूर करो।"

फिर भी प्रार्थना सभाओं में भीड़ बढ़ती ही गई।

एक जगह एक विद्यार्थी ने गांधीजी से पूछा—"क्या यह सच नहीं है कि ईसाई-यत और इस्लाम प्रगतिशील धर्म हैं और हिंदू धर्म स्थिर या प्रतिगामी ?"

गांधीजी बोले—"नहीं, मुझे किसी धर्म में कोई स्पष्ट प्रगति देखने को नहीं मिली। अगर संसार के धर्म प्रगतिशील होते, तो आज जो संसार लड़खड़ा रहा है, वह नहीं होता।"

एक प्रश्नकर्ता ने पूछा—"अगर एक ही खुदा है तो क्या एक ही मज़हब नहीं होना चाहिए ?"

"एक पेड़ में लाखों पत्ते होते हैं," गांधीजी ने उत्तर दिया—"जितने नर और नारियां हैं, उतने ही मज़हब हैं, परंतु सबकी जड़ खुदा में है।"

गांधीजी को एक लिखित प्रश्न दिया गया—"क्या धार्मिक शिक्षा स्कूलों के राज्य-मान्य पाठ्यक्रम का अंग होना चाहिए ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं राज्य-धर्म में विश्वास नहीं करता, भले ही सारे समुदाय का एक ही धर्म हो। राज्य का हस्तक्षेप शायद हमेशा नापसंद किया जायगा। धर्म तो शुद्ध व्यक्तिगत मामला है।...धार्मिक संस्थाओं को आंशिक या पूरी राज्य-सहायता का भी मैं विरोधी हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि जो संस्था या जमात अपनी धार्मिक शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था खुद नहीं करती, वह सच्चे धर्म से अनजान हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यों के स्कूलों में सदाचार की शिक्षा नहीं दी जायगी। सदाचार के मूलभूत नियम सब धर्मों में समान है।"

मुसलमान आलोचकों ने उन्हें चेतावनी दी कि वह पर्दे का जिक्र न करें। एक हिंदू की यह हिम्मत कि वह उनकी स्त्रियों से चेहरा उघाड़ने को कहे ! मगर गांधीजी फिर भी यह जिक्र करते रहे।

२ मार्च १९४७ को गांधीजी नोआखाली से बिहार के लिए रवाना हो गये। उन्होंने फिर किसी दिन आने का वादा किया। वापस आने का वादा उन्होंने इस-लिए किया कि उनका मिशन पूरा नहीं हुआ था।

नोआखाली में गांधीजी का कार्य आंतरिक शांति पुनः स्थापित करना था

ताकि भागे हुए हिंदू वापस आ जायं और अपने-आपको सुरक्षित महसूस करें और इसलिए कि मुसलमान उन पर दुबारा हमले न करें। रोग बहुत गहरा था, किंतु उसके भीषण विस्फोट क्वचित् और क्षणिक थे। इसलिए गांधीजी निराश नहीं हुए थे। वह समझते थे कि यदि स्थानीय समुदायों पर बाहर के राजनैतिक प्रचार का बुरा असर न पड़े, तो वे शांति के साथ रह सकते हैं।

नोआखाली की पुकार बराबर आग्रह कर रही थी। गांधीजी दिल्ली से संदेश भेज सकते थे या प्रवचन सुना सकते थे। परंतु वह कर्मयोगी थे। उनका विश्वास था कि करने और कर सकने का भेद ही संसार की अधिकतर समस्याओं को हल करने के लिए काफी है। उन्होंने जीवन भर इस भेद को मिटाने का प्रयत्न किया। इसमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

: ५ :

पश्चिम को एशिया का संदेश

नवंबर १९४६ के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड के प्रधान मंत्री एटली ने एक असाधारण सम्मेलन के लिए नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली को लंदन बुलाया।

संविधान सभा ९ दिसंबर को नई दिल्ली में बैठनेवाली थी। जिन्ना बार-बार घोषित कर चुके थे कि मुस्लिम लीग उसका बहिष्कार करेगी। लंदन सम्मेलन का उद्देश्य मुस्लिम लीग को संविधान सभा में शामिल करना था।

दिसंबर के शुरू में नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली हवाई जहाज से लंदन गये।

लंदन में जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह भारत को हिंदू राज्य तथा मुस्लिम राज्य में विभाजित करना चाहते हैं।

यद्यपि महान प्रयत्न के बाद एटली कांग्रेस और मुस्लिम लीग को अपने यहां बुलाने में सफल हुए, तथापि सम्मेलन मतभेद में ही समाप्त हो गया।

अतः ६ दिसंबर को एटली ने घोषित किया कि अगर मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना संविधान सभा ने कोई संविधान स्वीकार कर लिया, तो "सम्राट की सरकार यह विचार नहीं कर सकती कि ऐसा संविधान देश के किन्हीं अनिच्छुक भागों पर लादा जाय।"

लंदन से वापस लौटते ही नेहरू नोआखाली में श्रीरामपुर गांव गये और वहां

२७ दिसंबर १९४६ को उन्होंने गांधीजी को लंदन-सम्मेलन की ऐतिहासिक असफलता का समाचार सुनाया।

गांधीजी ने आसाम को और सिखों को गुटों में बांटनेवाली धाराओं का विरोध करने की सलाह दी। उनकी राय में यह भारत के टुकड़े करने की चाल थी और वह ऐसी किसी बात का समर्थन नहीं कर सकते थे, जिसका फल भारत का विभाजन हो।

परंतु फिर भी कांग्रेस महा-समिति ने इन धाराओं को स्वीकार करने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया।

कांग्रेस में गांधीजी का प्रभाव कम हो रहा था।

हिंदू-मुस्लिम मेल-जोल में गांधीजी को अब भी विश्वास था। नेहरू और पटेल जानते थे कि इन धाराओं का अर्थ पाकिस्तान का प्रारंभ है, परंतु गृह-युद्ध के सिवा दूसरा चारा न देखकर वे उन्हें मानने पर राजी हो गये। उन्हें आशा थी कि जिन्ना भारत के तीन संघीय राज्यों में विभाजन से संतुष्ट हो जायंगे और पाकिस्तान की मांग छोड़ देंगे।

प्रधान मंत्री एटली का अगला कदम यह था कि २० फरवरी १९४७ को उन्होंने ब्रिटिश लोक सभा में वक्तव्य दिया कि इंग्लैंड भारत को जून १९४८ से पहले छोड़ देगा।

मार्च के पहले सप्ताह में कार्य-समिति ने अपने अधिवेशन में एटली के वक्तव्य को अधिकृत रूप से स्वीकार कर लिया और मुस्लिम लीग को आपसी बातचीत के लिए निमंत्रण दिया। साथ ही समिति ने पंजाब की व्यापक खून-खराबी पर भी ध्यान दिया। वास्तव में उसने पंजाब की घटनाओं को इतना अंधकारपूर्ण और गंभीर समझा कि पंजाब के विभाजन की संभावना मान ली।

इधर पश्चिम की घटनाओं से विकल होकर गांधीजी पूर्वी बंगाल से बिहार आ गये। एक दिन का भी विश्राम लिये बिना उन्होंने इस प्रांत का दौरा शुरू कर दिया।

जहां-कहीं वह गये, वहां उन्होंने प्रायश्चित्त और क्षतिपूर्त्ति का उपदेश दिया। तमाम भगाई हुई मुसलमान स्त्रियां लौटा दी जायं, लूटी हुई या नष्ट की गई संपत्ति का हर्जाना दिया जाय।

किसी हिंदू का तार आया, जिसमें महात्माजी को चेतावनी थी कि हिंदुओं ने जो कुछ किया, उसकी निंदा न करें। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में इस तार का जिक्र

किया और कहा—'यदि मैं अपने हिंदू भाइयों के अथवा किसी भी दूसरे भाई के कुकृत्यों को सहारा देने लगूं, तो हिंदू होने के दावे का अधिकारी नहीं रहूंगा।"

किसी जगह बोलने से पहले गांधीजी वहां उन मुसलमानों या मसलमान-परिवारों के बरबाद घरों पर जाते थे, जो मौत या शारीरिक चोट के शिकार हो गये थे। वह बार-बार यही कहते थे कि हिंदू लोग भागे हुए मुसलमानों को वापस बुलायें और उनकी झोंपड़ियां दुबारा बनायें और उन्हें फिर काम-धंधे से लगायें। अत्याचार करनेवाले हिंदुओं को उन्होंने आत्म-समर्पण के लिए कहा।

जिस दिन गांधीजी मसूड़ी कसबे में पहुंचे, दंगों के पचास भागे हुए अभियुक्तों ने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया।

जब गांधीजी की कार देहात में होकर गुजरती थी, तो हिंदुओं की टोलियां उन्हें ठहरने का इशारा करती थीं और मुसलमानों की सहायता के लिए थैलियां भेंट करती थीं। फौज या पुलिस की मदद के बिना हिंसा को रोकने का यह तरीका था।

२२ मार्च १९४७ को लार्ड माउंटबैटन अपनी पत्नी एडवीना के साथ नई दिल्ली आ पहुंचे। चौबीस घंटे बाद जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से वक्तव्य दिया कि विभाजन ही एकमात्र हल है, वरना "भयंकर विनाश होगा।"

अपने आगमन के चार दिन के भीतर लार्ड माउंटबैटन ने गांधीजी और जिन्ना को वाइसराय भवन आने का निमंत्रण दिया। गांधीजी बिहार के भीतरी भाग में थे। माउंटबैटन ने उन्हें हवाई जहाज से लाने का प्रस्ताव किया। गांधीजी ने कहा कि वह यात्रा के उसी साधन को पसंद करते हैं, जिसका उपयोग करोड़ों जन करते हैं।

३१ मार्च को माउंटबैटन ने गांधीजी के साथ सवा दो घंटे मंत्रणा की।

अगले दिन गांधीजी एशियन रिलेशन्ज़ कान्फ्रेंस में गये, जिसका अधिवेशन नई दिल्ली में २३ मार्च से हो रहा था। उनसे बोलने के लिए कहा गया, तो उन्होंने कहा कि वह दूसरे दिन अंतिम अधिवेशन में भाषण देंगे। परंतु यदि कोई प्रश्न पूछे जायं, तो वह उनके उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

"क्या आप संसार की एकता में विश्वास करते हैं और क्या वर्तमान हालतों में यह सफल हो सकती है?"

"अगर यह संसार एक न हो सके, तो मैं इसमें जीना पसंद नहीं करूंगा," गांधीजी ने उत्तर दिया—"निश्चय ही मैं चाहता हूं कि यह स्वप्न मेरे जीवन-काल

में ही पूरा हो जाय। मैं उम्मीद करता हूं कि एशियाई देशों से आये सारे प्रतिनिधि एक-विश्व स्थापित करने के लिए पूरा यत्न करेंगे। यदि वे पक्के इरादे से काम करें, तो स्वप्न अवश्य चरितार्थ हो जायगा।"

एक चीनी प्रतिनिधि ने एक स्थायी एशियाई इंस्टीट्यूट के विषय में पूछा। गांधीजी विषय से दूर हट गये और उनके दिमाग में जो मुख्य समस्या थी, उसीकी चर्चा की। वह बोले—"मुझे खेद है कि मुझे देश की वर्तमान स्थिति का उल्लेख करना पड़ता है। हम नहीं जानते कि आपस में शांति कैसे रखें।...हम सोचते हैं कि हमें 'जंगल के कानून' अर्थात पाशविक-वृतियों का सहारा लेना पड़ेगा। मैं चाहूंगा कि इस प्रकार का अनुभव आप अपने-अपने देशों को न ले जायं।"

उन्होंने एशिया की समस्याओं का भी जिक्र किया। "सारे एशिया के प्रतिनिधि यहां इकट्ठे हुए हैं," वह बोले—"क्या इसलिए कि यूरोप या अमरीका या अन्य गैर-एशियाइयों के खिलाफ युद्ध करें ? मैं पूरे जोर के साथ कहता हूं कि नहीं, यह भारत का उद्देश्य नहीं है।... मैं यह कहना चाहता था कि इस तरह की कान्फ्रेंस नियमित रूप से होनी चाहिएं और अगर आप मुझसे पूछें कहां, तो वह जगह भारत है।"

दूसरे दिन उन्होंने कान्फ्रेंस में भाषण दिया, जिसका वादा उन्होंने पहले दिन किया था। पहले तो उन्होंने अंग्रेजी में बोलने के लिए क्षमा मांगी। फिर स्वीकार किया कि उन्होंने अपने विचारों को एक सूत्र में बांधने की आशा की थी, परंतु समय नहीं मिला।

इसके बाद वह बिना सिलसिले के बोलने लगे :

"आप लोग शहर में इकट्ठे हुए हैं, परंतु भारत शहरों में नहीं है। वास्तविक सचाई गांवों में और गांवों के अछूतों के घरों में है।...

"पूर्व ने पश्चिम की सांस्कृतिक विजय स्वीकार कर ली है। किंतु पश्चिम ने प्रारंभ में अपना ज्ञान पूर्व से प्राप्त किया था, ज़रथुस्त, बुद्ध, मूसा, ईसा, मोहम्मद, कृष्ण, राम तथा अन्य छोटे-मोटे दीपकों से।

"सम्मेलन को एशिया का संदेश समझना चाहिए। इसकी जानकारी पश्चिमी चश्मों के द्वारा या परमाणु बम के द्वारा नहीं होगी। यदि आप पश्चिम को कोई संदेश देना चाहते हैं, तो यह संदेश प्रेम का और सत्य का होना चाहिए। मैं केवल आपके दिमाग को आकर्षित नहीं करना चाहता, आपके दिल को पकड़ना चाहता हूं।

"मुझे आशा है कि एशिया का प्रेम और सत्य का संदेश पश्चिम को जीत

लेगा। इस विजय को खुद पश्चिम भी प्रेम के साथ स्वीकार करेगा। आज पश्चिम सुबुद्धि के लिए तड़प रहा है।"

रचना की दृष्टि से यह भाषण ज्यादा अच्छा नहीं था, परंतु इसमें सारभूत ज्ञान तथा गांधीजी का सार भरा हुआ था। अधिकतर प्रतिनिधियों ने शायद इतने सरल तथा हृदयगत शब्द बहुत वर्षों से नहीं सुने थे।

३१ मार्च और १२ अप्रैल के बीच माउंटबैटन ने छः बार गांधीजी से मंत्रणा की। व्यस्त वाइसराय के साथ जिन्ना की भी इतनी ही बार बातें हुईं।

लंदन में रायल एंपायर सोसाइटी की कौंसिल के सामने भाषण देते हुए ६ अक्तूबर १९४८ को लार्ड माउंटबैटन ने इन बातचीतों का रहस्य खोला था—"समस्या के वास्तविक हल की बात उठाने से पहले मैं उनसे बातचीत करना और उन्हें समझना चाहता था, उनसे मिलना और वार्त्तालाप करना चाहता था। जब मुझे लगा कि जिन व्यक्तियों से मेरा वास्ता पड़ना है, उन्हें मैं कुछ समझ गया हूं, तो मैंने उनसे प्रस्तुत समस्या के बारे में बातचीत शुरू की...

"व्यक्तिगत रूप से मुझे प्रतीत हो गया था कि, उस समय और अब भी, सही हल भारत को संयुक्त रखना ही होता; परंतु मि० जिन्ना ने शुरू से ही यह स्पष्ट कर दिया कि अपने जीते-जी वह संयुक्त भारत स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने विभाजन की मांग की, पाकिस्तान के लिए हठ किया। दूसरी ओर कांग्रेस अविभाजित भारत के पक्ष में थी; परंतु कांग्रेस-नेता गृह-युद्ध बचाने के लिए विभाजन स्वीकार करने पर राजी हो गये। मुझे यकीन था कि मुस्लिम लीग लड़ाई करती।

"जब मैंने जिन्ना से कहा कि विभाजन के लिए कांग्रेस नेताओं का अस्थायी स्वीकृति-पत्र मेरे पास है, तो वह खुशी से उछल पड़े। जब मैंने बताया कि इसका तर्क-संगत परिणाम पंजाब और बंगाल का विभाजन होगा, तो वह भय से चौंक उठे। उन्होंने जोरदार दलीलें दी कि इन प्रांतों का विभाजन क्यों नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि इन प्रांतों की राष्ट्रीय विशिष्टताएं हैं और विभाजन विनाशकारी हो जायगा। मैंने मान लिया, परंतु साथ ही यह भी बताया कि अब मैं कितना ज्यादा महसूस करता हूं कि सारे भारत के विभाजन पर भी यही दलील लागू होती है। यह बात उन्हें पसंद नहीं आई और वह समझाने लगे कि भारत का विभाजन क्यों होना चाहिए। इस तरह हम खूंटे के चारों ओर चक्कर लगाते रहे और अंत में वह समझ गये कि या तो उन्हें अविभाजित पंजाब और बंगाल के साथ संयुक्त भारत लेना पड़ेगा, या विभाजित पंजाब और बंगाल के साथ विभक्त

भारत। अंत में उन्होंने दूसरा हल स्वीकार कर लिया।"

अप्रैल १९४७ में गांधीजी ने किसी प्रकार के विभाजन का अनुमोदन नहीं किया और अपनी मृत्यु के समय तक इसका अनुमोदन करने से इन्कार कर दिया।

१५ अप्रैल को माउंटबैटन की प्रार्थना पर गांधीजी और जिन्ना ने एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें भारत के नाम पर लांछन लगानेवाली हाल की हुल्लड़बाजी और मार-काट की निंदा की गई और राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए बल-प्रयोग को बुरा बताया गया। यह वक्तव्य उस पखवाड़े के अंत में निकाला गया, जब जिन्ना ने माउंटबैटन को यकीन दिलाया कि यदि उनका राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ, तो भारत में गृह-युद्ध फूट पड़ेगा।

इस पखवाड़े में गांधीजी दिल्ली की हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे और वहां रोज शाम को प्रार्थना-सभा चलाते थे। पहली शाम को उन्होंने उपस्थित जनों से पूछा कि उन्हें कुरान की कुछ आयतें पढ़ी जाने पर आपत्ति तो नहीं है। कई विरोधियों ने हाथ ऊंचे कर दिये। इस पर गांधीजी ने सभा भंग कर दी। दूसरी शाम को उन्होंने यही सवाल किया। उस दिन भी कुछ लोगों ने आपत्ति की और उस दिन भी उन्होंने सभा में प्रार्थना नहीं की। तीसरी शाम को भी यही बात हुई।

चौथी शाम को किसीने एतराज नहीं किया। गांधीजी ने बतलाया कि अगर पिछले तीन दिन सारे-के-सारे उपस्थित जन एतराज करते, तो वह कुरान की आयतें जरूर पढ़ते और तैयार रहते कि यदि वे उन्हें मारना चाहें, तो वह ईश्वर का नाम लेते-लेते उनके हाथ से मर जायं, परंतु प्रार्थना-स्थान में वह प्रार्थना की इच्छा रखनेवालों तथा आपत्ति करनेवालों के बीच झगड़ा नहीं होने देना चाहते थे। अंत में अहिंसा की विजय हुई।

गांधीजी की दलील थी—"अरबी में ईश्वर का नाम लेना पाप कैसे हो सकता है?" हिंदू-मुस्लिम एकता उनके जीवन का लक्ष्य था। यदि हिंदुस्तान का अर्थ था केवल हिंदुओं की भूमि और पाकिस्तान का अर्थ था केवल मुसलमानों की भूमि, तो पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों जहर से भरी भूमियां होनेवाली थीं।

१३ अप्रैल को गांधीजी बिहार वापस चले गये।

अब तो अहिंसा के लिए तथा घृणा के विरुद्ध कार्रवाई ही वह राजनैतिक काम था, जिसका कुछ अर्थ था। यदि गांधीजी सिद्ध नहीं कर सके कि हिंदू और मुसलमान मेल-जोल से रह सकते हैं, तो जिन्ना की बात सही थी और पाकिस्तान अनिवार्य था।

सवाल यह था—क्या भारत एक राष्ट्र है, अथवा ऐसा देश है, जिसमें एक-दूसरे से सदा लड़नेवाले धार्मिक समुदाय बसते हैं ?

संसार का एक सबसे बुरा अभिशाप है विगत शताब्दियों का प्रभाव। भारत में सत्रहवीं, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियां बीसवीं शताब्दी को प्रभावित करने के लिए बाकी बच गई हैं। मजहबी जोशों का, प्रांतीय भावनाओं का और देशी रियासतों का भारत में वैसा ही क्षयकारी विभाजक प्रभाव रहा है, जैसा उद्योगवाद तथा राष्ट्रवाद के आधुनिक युग से पहले यूरोप में। चालीस करोड़ की आबादी-वाले भारत में केवल तीस लाख औद्योगिक मजदूर हैं। देश में एकसूत्रता का अभाव था, क्योंकि इस पिछड़े हुए देश की बिखरनेवाली प्रवृत्तियों को दबाने के लिए किसीके भी पास न तो एकीकरण की पर्याप्त सामर्थ्य थी और न एकीकरण की आकर्षक सूझ-बूझ। राष्ट्रवाद के, एकीकरण के उच्च प्रतीक गांधी-जी खुद ही बीते हुए अतीत, संघर्षशील वर्तमान तथा अपने उच्च आदर्शों के भावी संसार का मिश्रण थे।

गृह-युद्ध की धमकी जिन्ना का बल थी, दंगे उसके पूर्व रूप थे। भारत की एकता कायम रखने की एकमात्र आशा यही थी कि जनता को शांत किया जाय और इस प्रकार जिन्ना की धमकी को गीदड़-भभकी सिद्ध कर दिया जाय।

गांधीजी बिना विचलित हुए तथा अकेले ही इस काम में जुट गये।

इतिहास पूछ रहा था कि भारत एक राष्ट्र है या नहीं ?

: ६ :

दुखांत विजय

अप्रैल में बिहार में जोर की गर्मी थी और गांधीजी गांवों की लंबी-चौड़ी यात्राओं का श्रम बरदाश्त नहीं कर सकते थे। परंतु यदि हिंदू लोग पश्चात्ताप न करें और डर से भागे हुए मुसलमानों को वापस न लायें, तो गांधीजी का वहां जाना जरूरी था। उनको एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि उन्हें कृष्ण की तरह वन में चले जाना चाहिए, अहिंसा से देश का विश्वास जाता रहा है। इसके अलावा गीता अहिंसा का उपदेश नहीं देती।

उन्हें समाचार मिला कि नोआखाली में फिर दंगे शुरू हो गये हैं।

परंतु कई घटनाओं ने गांधीजी को उत्साहित किया। गांधीजी के कहने पर

आजाद हिंद फौज के जनरल शाहनवाज़ बिहार ही में रह गये थे। उन्होंने बतलाया कि मुसलमान लोग अपने-अपने गांवों को लौट रहे हैं और हिंदू तथा सिख उन्हें सहायता दे रहे हैं। एक सिख को मस्जिद में भी बुलाया गया था।

इस समाचार से गांधीजी को लगा कि यदि हिंदू लोग सच्चे हिंदू बन जायं और मुसलमानों को गले लगायें, तो सबको अपनी लपटों में लपटनेवाली मौजूदा आग बुझ जाय। बिहार बड़ा प्रांत था। उसके उदाहरण से दूसरों को प्रेरणा मिलेगी। बिहार की शांति कलकत्ता तथा दूसरी जगहों के फिसादों को मिटा देगी। उन्होंने बतलाया कि उनकी अशिक्षित ग्रामीण-मां ने उन्हें सिखाया था कि परमाणु में ब्रह्मांड है। यदि वह अपने इर्द-गिर्द की चीजों को संभाल लेंगे, तो दुनिया अपनी संभाल आप कर लेगी।

नेहरू ने तार द्वारा गांधीजी को दिल्ली बुलाया। एक महान ऐतिहासिक निर्णय के लिए कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक १ मई को होनेवाली थी। गांधीजी गर्मी में पांचसौ मील की यात्रा करके दिल्ली पहुंचे।

माउंटबैटन ने स्थिति का अध्ययन करके पता लगा लिया था कि पाकिस्तान के सिवा कोई चारा नहीं है। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के सामने प्रश्न रखा—क्या वह भारत का विभाजन स्वीकार करेगी? २१ अप्रैल को संयुक्त प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में नेहरू ने कहा था—"अगर मुस्लिम लीग पाकिस्तान चाहती है, तो उसे मिल जायगा, किंतु इस शर्त पर कि वह भारत के उन भागों को न मांगे, जो पाकिस्तान में शामिल नहीं होना चाहते।"

क्या कार्य-समिति भी यही निर्णय करनेवाली थी?

गांधीजी इसके विरुद्ध थे। पटेल डावांडोल थे। वह जिन्ना की धमकियों पर बल-परीक्षा करना चाहते थे। वह मुसलमानों की हिंसा को दबाने के लिए केंद्रीय सरकार का उपयोग करना चाहते थे, परंतु अंत में वह भी राजी हो गये। गृह-युद्ध का खतरा उठाने के बजाय या स्वाधीनता खोने के बजाय कांग्रेस ने पाकिस्तान को मान लेना बेहतर समझा।

आजादी के लिए कांग्रेस ने पाकिस्तान के रूप में ऊंची कीमत अदा की।

गांधीजी ने अपनी झुंझलाहट को छिपाया नहीं। ७ मई की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा—"कांग्रेस ने पाकिस्तान स्वीकार कर लिया है और पंजाब तथा बंगाल का विभाजन मांगा है। भारत के विभाजन का मैं आज भी उतना ही विरोधी हूं, जितना सदा से रहा हूं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? मैं तो केवल यही कर

सकता हूं कि ऐसी योजना से अपने-आपको अलग हटा लूं। ईश्वर के सिवा और कोई भी मुझे इसे स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।"

गांधीजी माउंटबैटन से मिलने गये। अंग्रेजों को उन्होंने सलाह दी कि अपने सैनिकों-सहित भारत छोड़ कर चले जायं और "भारत को उपद्रव तथा अराजकता के भरोसे छोड़ने का खतरा उठा लें।" अंग्रेजों के चले जाने पर कुछ समय उपद्रव होंगे "और हमको निस्संदेह आग में से गुजरना पड़ेगा, परंतु यह आग हमको शुद्ध कर देगी।"

गांधीजी के सुझाव का यह केवल विचारात्मक पहलू था। ठोस रूप में इसकी चतुराई इसकी सादगी में छिपी हुई थी। अंग्रेज लोग भारत को बिना किसी सरकार के नहीं छोड़ सकते थे। उपद्रवों के भरोसे भारत छोड़ जाने की सलाह का अर्थ था भारत कांग्रेस को सौंप देना। अगर इंग्लैंड इन्कार करता, तो गांधीजी चाहते थे कि कांग्रेस भी सरकार को छोड़ दे। उस हालत में देश में शांति कायम रखने की जिम्मेदारी पूरी तरह अंग्रेजों पर रहती और अंग्रेज यह जिम्मेदारी उठाना नहीं चाहते थे।

इसलिए गांधीजी ने अंग्रेजों के सामने जो विकल्प रखा, वह यह था—या तो भारत पर कांग्रेस को शासन करने दो, वरना इस मार-काट के समय में खुद शासन चलाओ।

गांधीजो जानते थे कि पाकिस्तान तब तक संभव नहीं है, जब तक कि ब्रिटिश सरकार उसे न बनाये और अंग्रेज लोग पाकिस्तान तब तक नहीं बनायेंगे, जब तक कि कांग्रेस उसे स्वीकार न करले। जिन्ना तथा अल्पसंख्यकों को संतुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार भारत के टुकड़े नहीं कर सकती थी और बहुमत को नाराज नहीं कर सकती थी। इसलिए कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार नहीं करना चाहिए।

परंतु गांधीजी की कौन सुनता था ? गांधीजी के एक सहयोगी ने लिखा है— "हमारे नेता थक गये थे और दूर दृष्टि खो बैठे थे। कांग्रेस-नेता स्वाधीनता को टालने से डरते थे। गांधीजी इस आशा से देर करना चाहते थे कि अंत में संयुक्त देश का आजादी प्राप्त हो, न कि दो परस्पर विरोधी भारतों को।

१९४८ की गर्मियों में मैंने नेहरू, पटेल आदि से पूछा कि गांधीजी ने कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार करने से रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं किया, अगर कोई मामूली उपाय कारगर न होता, तो वह उपवास करके उसे दबा सकते थे ?

सबका एक ही जवाब था कि गांधीजी का यह तरीका नहीं है कि चरम मुद्दों

पर भी राजी होने के लिए किसीको मजबूर करें। यह सही है, परंतु पूरा उत्तर इससे भी गहरा है। कांग्रेस ने पाकिस्तान मान लिया और शासन-सूत्र संभाले रही। इसका विकल्प केवल यही था कि पाकिस्तान को ठुकरा दिया जाता, शासन-सूत्र छोड़ दिया जाता और जनता में दुबारा सुबुद्धि तथा शांतिप्रियता स्थापित करने पर सारी बाजी लगा दी जाती। परंतु गांधीजी ने देख लिया कि उनके विकल्प में नेताओं को श्रद्धा नहीं है। कमेटियों में वह उन्हें अपने मत का समर्थन करने के लिए दबा सकते थे, परंतु उनमें श्रद्धा नहीं फूंक सकते थे। इसके लिए पहले उन्हें यह सिद्ध करना पड़ता कि हिंदू और मुसलमान मेल-जोल के साथ रह सकते हैं। यह सिद्ध करने का भार गांधीजी पर था और समय बड़ी तेजी से बीता जा रहा था।

गांधीजी कलकत्ता गये। पाकिस्तान पाने के लिए बंगाल का पाकिस्तान तथा हिंदुस्तान के बीच बंटवारा करना होगा। अगर वह बंगाल के मुसलमानों को इस अंग-भंग के दुखद परिणाम समझा सकें, अगर वह बंगाल के विभाजन के लिए हिंदुओं को उमड़ती हुई भावनाओं को रोक सकें, तो शायद वह पाकिस्तान को टाल सकें।

कलकत्ता में गांधीजी ने पूछा—"जब ऊपर के सिरे पर सब ढंग-ढांचा बिगड़ जाता है, तो क्या तले में जनता की सद्‌बुद्धि इस शरारत-भरे असर के खिलाफ अड़कर खड़ी नहीं हो सकती ?" यही उनकी आशा थी।

गांधीजी ने दलील दी कि बंगाल की एक संस्कृति है, एक भाषा है। उसे संयुक्त ही बना रहने दो। लार्ड कर्ज़न द्वारा बंग-भंग के बाद उन्होंने बंगाल को फिर एक करवा लिया था। क्या वे विभाजन से पहले जिन्ना को नहीं रोक सकते ?

छः दिन कलकत्ता ठहरकर गांधीजी बिहार चले गये। बेहद गर्मी के बावजूद वह गांवों का दौरा करने लगे। उनका गीत वही था—"यदि हिंदू लोग भाईचारे की भावना प्रदर्शित करें, तो इससे बिहार का भला होगा, भारत का भला होगा और संसार का भला होगा।"

नेहरू का बुलावा आने पर गांधीजी २५ मई को फिर दिल्ली वापस गये। माउंटबैटन अपने मन में निश्चय करके हवाई जहाज द्वारा लंदन चले गये थे। अफवाह थी कि भारत का विभाजन होगा और इसकी योजना शीघ्र ही घोषित की जायगी। गांधीजी को आश्चर्य था कि ऐसा क्यों हो रहा है। १६ मई १९४६ को केबिनेट मिशन ने विभाजन तथा पाकिस्तान अस्वीकृत कर दिया था। तबसे

कौनसी बात हो गई, जिससे स्थिति बदल गई ? क्या दंगे ? क्या वे हुल्लड़बाजी के आगे घुटने टेक रहे थे ?

वह विभाजन की ओर बढ़ते हुए ज्वार को पीछे ढकेलने का अब भी प्रयत्न कर रहे थे। यह प्रयत्न उनकी जान ले ले, तो भी क्या ? गांधीजी ने कहा था—"आज भारत का जो रूप बन रहा है, उसमें मेरे लिए स्थान नहीं है। मैंने सवासौ वर्ष जीने की आशा छोड़ दी है। शायद मैं साल-दो-साल और जिंदा रहूं। यह दूसरी बात है। परंतु यदि भारत मार-काट की बाढ़ में डूब गया, जैसाकि खतरा दिखाई दे रहा है, तो मैं जीवित नहीं रहना चाहता।"

फिर भी वह बहुत दिनों तक निराशावादी नहीं रह सके। नेहरू चीन के राजदूत डा० लो चिया-ल्युएन को गांधीजी के पास लाये। "आपके खयाल से घटनाएं क्या रूप लेंगी ?" डा० लो ने पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं अदम्य अशावादी हूं। बंगाल, पंजाब और बिहार की तमाम विवेकहीन खून-खराबी को देखते हुए हम जैसे वहशी नजर आ रहे हैं, क्या वैसा बनने के लिए ही हम अब तक जिंदा रहे हैं और कठिन परिश्रम करते रहे हैं ? किंतु मुझे लगता है कि यह इशारा है कि जब हम विदेशी जुए को उतारकर फेंक रहे हैं, तो सारा मैल और सारे झाग ऊपर आ रहे हैं। गंगा में जब बाढ़ आती है, तो पानी गंदला हो जाता है, मैल ऊपर आ जाता है। जब बाढ़ का पानी उतरता है, तो हमको शुद्ध नीला जल दिखाई देता है, जो आंखों को ठंडक पहुंचाता है। मैं इसी आशा में जी रहा हूं। मैं भारत के मनुष्यों को वहशी नहीं देखना चाहता।"

इस अर्से में माउंटबैटन लंदन में भारत के विभाजन की योजना तैयार कर रहे थे।

इस योजना में केवल भारत के विभाजन का नहीं, बल्कि बंगाल, पंजाब और आसाम के विभाजन का भी विधान था—यदि वहां की जनता चाहे।

३ जून १९४७ को प्रधान मंत्री एटली ने ब्रिटिश लोक सभा में तथा माउंटबैटन ने नई दिल्ली में आकाशवाणी से इस योजना की घोषणा की।

नेहरू, पटेल तथा कार्य-समिति ने योजना मंजूर कर ली। कांग्रेस महा-समिति ने १५ जून को १५३ के विरुद्ध २९ मतों से इसे मंजूर करके अधिकृत रूप दे दिया।

प्रस्ताव पास होने के बाद कांग्रेस के अध्यक्ष प्रोफेसर जे० बी० क्रृपालानी ने एक

छोटे-से भाषण में बतलाया कि कांग्रेस ने गांधीजी का साथ क्यों छोड़ दिया। उन्होंने कहा—"हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मार-काट के बुरे-से-बुरे कृत्यों की होड़ चल रही है।... डर यह है कि अगर हम इस तरह एक-दूसरे से बदला लेते और एक-दूसरे का तिरस्कार करते चले जायं, तो धीरे-धीरे हम नर-भक्षकों की अथवा इससे भी बुरी स्थिति में जा गिरेंगे। हर नये झगड़े में पुराने झगड़े के अत्यंत पाशविक तथा हीन कृत्य भी साधारण बन जाते हैं।...मैं तीस साल से गांधीजी के साथ हूं। उनके प्रति मेरी भक्ति कभी विचलित नहीं हुई है। यह भक्ति व्यक्तिगत नहीं, राजनैतिक है। जब कभी मैं उनसे सहमत नहीं हुआ हूं, तब भी मैंने उनकी राजनैतिक अंतःप्रेरणा को अपने खूब तर्कयुक्त विचारों से ज्यादा सही माना है। आज भी मैं मानता हूं कि अपनी महान निर्भयता को लिये हुए वह सही हैं और मेरी दलील त्रुटिपूर्ण है।

"तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूं? इसलिए नहीं हूं कि मैं महसूस करता हूं कि वह अभी तक इस समस्या को सामूहिक रूप से हल करने का कोई रास्ता नहीं निकाल पाये हैं।"

शांति और भाईचारे के लिए गांधीजी की दलील की राष्ट्र पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी।

गांधीजी इसे जानते थे। उन्होंने कहा था—"यदि केवल गैर-मुस्लिम भारत मेरे साथ होता, तो मैं प्रस्तावित विभाजन को रद्द कराने का रास्ता बता सकता था।"

गांधीजी की नव्वे फीसदी डाक गालियों से और घृणा से भरी हुई होती थी। हिंदुओं के पत्रों में पूछा जाता था कि वह मुसलमानों का पक्ष क्यों लेते हैं और मुसलमानों के पत्रों में यह मांग होती थी कि वह पाकिस्तान की स्थापना में रुकावट डालना बंद कर दें।

एक मराठा-दंपति ने दिल्ली आकर हरिजन बस्ती के पास डेरा डाल दिया और घोषणा की कि उन्होंने उपवास शुरू कर दिया है, जो तब तक जारी रहेगा कि जब तक पाकिस्तान की योजना त्याग न दी जाय। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में प्रवचन देते हुए उनसे पूछा—"क्या तुम पाकिस्तान के विरुद्ध इसलिए उपवास कर रहे हो कि मुसलमानों से घृणा करते हो, या इसलिए कि मुसलमानों से प्रेम करते हो? अगर तुम मुसलमानों से घृणा करते हो, तो उपवास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम मुसलमानों से प्रेम करते हो, तो जाओ, अन्य हिंदुओं को भी उनसे प्रेम

करना सिखाओ।" दोनों ने उपवास छोड़ दिया।

गांधीजी विभाजन को एक 'आध्यात्मिक दुर्घटना' कहते थे। वह खून-फिसाद की तैयारियों को देख रहे थे। उन्हें 'सैनिक अधिनायकशाही' की और फिर 'आजादी से विदा' की संभावना दिखाई दे रही थी। उन्होंने कहा—"मेरे निकटतम मित्रों ने जो कुछ किया है, या वह जो कुछ कर रहे हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूं।"

गांधीजी का कहना था कि बत्तीस वर्ष के काम का 'शर्मनाक अंत' हो रहा है। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वाधीन होनेवाला था, परंतु यह विजय एक रूखी राजनैतिक व्यवस्था थी। यह आजादी का खोखा छिलका था। यह दुखांत विजय थी। यह ऐसी विजय थी, जिसमें सेना खुद अपने सेनापति को हराते हुए पाई गई।

गांधीजी ने घोषणा की—"मैं १५ अगस्त के समारोह में भाग नहीं ले सकता।"

स्वाधीनता अपने निर्माता के लिए शोक लेकर आई। अपने देश का पिता अपने ही देश से निराश हो गया। उन्होंने कहा—"मैंने इस विश्वास में अपने को धोखा दिया कि जनता अहिंसा के साथ बंधी हुई है।"

६ अक्तूबर १९४८ को माउंटबैटन ने रायल एंपायर सोसायटी को बताया कि भारत में गांधीजी की तुलना रूज़वेल्ट या चर्चिल जैसे राजनेताओं के साथ नहीं होती। यहां के लोग तो उन्हें अपने मन में मोहम्मद और ईसा की श्रेणी का मानते हैं।

करोड़ों लोग गांधीजी की पूजा करते थे, ढेरों लोग उनके चरणों को अथवा उनके चरणों की धूल को माथे से लगाने का प्रयत्न करते थे। वे उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पण करते थे और उनके उपदेशों को ठुकराते थे। वे उनके शरीर को पावन मानते थे और उनके व्यक्तित्व को अपावन। वे उनमें विश्वास करते थे, किंतु उनके सिद्धांतों में नहीं। वे खोल की स्तुति करते थे और सार को पांवों से कुचलते थे।

१५ अगस्त, स्वाधीनता-दिवस, ने गांधीजी को कलकत्ता में दंगों को रोकने का प्रयत्न करते हुए पाया। सारे दिन उन्होंने उपवास रखा और प्रार्थना की। देश के लिए उन्होंने कोई संदेश नहीं दिया। राष्ट्र के जीवन के औपचारिक उद्घाटन में भाग लेने के लिए राजधानी पहुंचने का निमंत्रण उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उत्सवों के दौर में वह शोकाकुल थे। उन्होंने पूछा—"क्या मुझमें कोई खराबी पैदा हो गई है, या वास्तव में ही ढंग बिगड़ रहा है।"

भारत को आजादी मिली, लेकिन गांधीजी परेशान और बेचैन थे। उनकी

अनासक्ति में कमी आ गई थी। उन्होंने कहा भी था—"मैं समत्व की स्थिति से दूर हट गया हूं।"

परंतु विश्वास ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा। न उन्होंने गुफा में या जंगल में चले जाने का विचार किया। "कोई भी हेतु, जो भीतर से न्यायोचित है, निराश्रय कभी नहीं कहा जा सकता," उन्होंने दृढ़ता से कहा।

२९ अगस्त को उन्होंने अमृतकौर को लिखा था—"मानवता एक महासागर है। यदि महासागर की कुछ बूंदें गंदली हो जायं, तो सारा महासागर गंदला नहीं होता।"

मनुष्य में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। ईश्वर में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। अपने प्रार्थना-प्रवचन में एक दिन उन्होंने कहा था—"मैं जन्म से ही संघर्ष करनेवाला हूं और असफलता को नहीं जानता।"

विभाजन तथ्य था, परंतु उनका कहना था कि "सही आचरण से किसी बुराई को कम करना हमेशा संभव है और अंत में बुराई में से भलाई निकालना भी संभव है।"

कोई छोटा आदमी उद्विग्न हो जाता या कटु बन जाता या अपने मार्ग में बाधा डालनेवालों को पराजित करने की साजिश करता। गांधीजी ने अपने अंदर रोशनी डाली, शायद उनका ही दोष हो। "हे ईश्वर तू मुझे अंधकार से प्रकाश में ले जा।"

गांधीजी अपनी आयु के अठहत्तर वर्ष पूरे कर रहे थे। जो संसार उन्होंने रचा था, वह उनके चारों ओर खंडहर हुआ पड़ा था। उन्हें नये सिरे से निर्माण करना था। कांग्रेस बेहद राजनैतिक दल बन गई थी। उसे जनता के रचनात्मक उत्थान का निमित्त बनना आवश्यक था। वह नई दिशाएं टटोल रहे थे। उनका शरीर बूढ़ा था और जोश जवानों जैसा। वह अनुभव में वृद्ध थे और विश्वास में युवा।

कलकत्ता में लोग उन्हें एक मुसलमान के घर ले गये। इस महल्ले की गली में ताजे खून से पांव रपटते थे और हवा में जलते मकानों के धुएं की दुर्गंध थी।

वियोग-संतप्त लोग इस छोटे से मकान में उनके पास आये और गांधीजी ने उनके आंसू पोंछे। दूसरों के शांति का मरहम लगाने में उन्हें सांत्वना मिलती थी। उन्होंने अपना नया कर्तव्य खोज लिया था। यह उनका पुराना कार्य था। कष्ट-निवारण, प्रेम का प्रसार तथा सब मनुष्यों को भाई-भाई बनाना।

असीसी के संत फ्रांसिस जब अपने बागीचे में फावड़ा चला रहे थे, तो किसीने उनसे पूछा कि अगर उन्हें अचानक यह पता लग जाय कि उसी शाम को उनकी मृत्यु होनेवाली है, तो वह क्या करेंगे?

उन्होंने जवाब दिया—"मैं अपने बागीचे में फावड़ा चलाना समाप्त कर दूंगा।"

गांधीजी उसी बागीचे में फावड़ा चलाते रहे, जिसमें उन्होंने अपने जीवन भर काम किया था। पापियों ने उनके बागीचे में पत्थर और कचरा फेंक दिया था, परंतु वह फावड़ा चलाते रहे।

सत्याग्रह गांधीजी के लिए निराशा तथा दुखों की औषध था। कर्म उन्हें आंतरिक शांति प्रदान करता था।

: ७ :

वेदना की पराकाष्ठा

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। उन्हें राजनीति के अक्षरों का ज्ञान था, भारत की दीवार पर उन्होंने यह हस्तलेख पढ़ लिया था—"तुम्हारे दिन पूरे हो गये!" यह हस्तलेख गांधीजी का था।

भारतवासियों की मर्जी से लार्ड माउंटबैटन भारतीय संघ के गवर्नर-जनरल बने रहे। यह तय हुआ था कि माउंटबैटन पाकिस्तान के भी गवर्नर-जनरल होंगे और इस प्रकार एकता के प्रतीक होंगे। परंतु जिन्ना ने उनकी जगह ले ली।

पाकिस्तान बनने से भारत के दो टुकड़े हो गये। खुद पाकिस्तान के भी दो टुकड़े हो गये। दोनों टुकड़ों के बीच भारतीय संघ का करीब ८०० मील लंबा भाग था।

भारत का विभाजन करनेवाली सीमांत रेखा ने परिवारों के दो भाग कर दिये। इसने कारखानों को कच्चे माल से और खेती की उपज को मंडियों से पृथक कर दिया। पाकिस्तान के अल्पसंख्यक अपने भविष्य के बारे में चिंतित थे। भारतीय संघ के मुसलमान बेचैन थे। दोनों उपनिवेशों में शासक बहुसंख्यकों तथा भयभीत अल्पसंख्यकों के बीच मारकाट शुरू हो गई।

भारत शांति के साथ रह सकता था। अंग-भंग ने मार्मिक शिराओं को काट दिया। इनमें से मानव रक्त तथा धार्मिक विद्वेष का विष बहने लगा।

कलकत्ता तथा बंगाल का पश्चिमी भाग भारतीय संघ में रहा। पूर्वी बंगाल

पाकिस्तान में गया। कलकत्ता की आबादी में तेईस फीसदी मुसलमान थे। हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ पड़े।

गांधीजी ने इस भड़क उठानेवाले मसाले पर शांति का शीतल जल छिड़कने का बीड़ा उठाया।

गांधीजी ९ अगस्त १९४७ को कलकत्ता पहुंचे। जिन्ना के 'सीधी कार्रवाई' के दिन से अब तक, पूरे साल भर कलकत्ता खूनी लड़ाई-झगड़ों से त्रस्त था। धार्मिक उन्माद से भरी हुई गलियों में गांधीजी और हसन सुहरावर्दी बांह-में-बांह डाले घूमे। दंगे के क्षेत्रों में सुहरावर्दी गांधीजी को अपनी कार में खुद ले गये। जहां-कहीं ये दोनों गये, वहां मार-काट मानों काफूर हो गई। हजारों मुसलमान और हिंदू आपस में गले मिले और उन्होंने नारे लगाये "महात्मा गांधी जिंदाबाद!" "हिंदू-मुस्लिम एकता जिंदाबाद !" गांधीजी की दैनिक प्रार्थना-सभाओं में विशाल भीड़ भाईचारा प्रकट करने लगी। १४ अगस्त के बाद कलकत्ता में कोई दंगा नहीं हुआ। गांधीजी ने तूफान को शांत कर दिया था। समाचार-पत्रों ने लंगोटीवाले जादूगर को प्रशंसा के उपहार भेंट किये।

३१ अगस्त को गांधीजी एक मुसलमान के घर में सोये हुए थे। रात को १० बजे के लगभग उन्हें रोष भरी आवाजें सुनाई दीं। वह चुपचाप पड़े रहे। सुहरावर्दी तथा महात्माजी की कई शिष्याएं कुछ हमलावरों को शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे। तभी कांच टूटने लगे, खिड़कियों के कांच पत्थरों और घूंसों से तोड़े जा रहे थे। कुछ नौजवान मकान के भीतर घुस आये और किवाड़ों पर लातें मारने लगे। गांधीजी ने बिस्तर से उठकर अपने कमरे के किवाड़ खोल दिये। वह क्रोध-भरे दंगइयों के सामने खड़े थे। उन्होंने अपने हाथ जोड़ दिये। उनपर ईंट फेंकी गई। यह ईंट उनके पास खड़े एक मुसलमान मित्र के लगी। एक दंगई ने लाठी घुमाई, जो गांधीजी के सिर पर पड़ने से जरा ही बच गई। महात्माजी ने दुख से अपना सिर हिलाया। पुलिस आ गई। पुलिस के अफसर ने गांधीजी से अपने कमरे में चले जाने को कहा। तब पुलिस अफसरों ने दंगइयों को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। बाहर बेकाबू भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु गैस का प्रयोग किया गया। यह भीड़ एक पट्टी-बंधे मुलसमान को देखकर भड़क गई थी और उसका कहना था कि उसे हिंदुओं ने छुरा मारा है।

गांधीजी ने उपवास का निश्चय कर डाला।

१ सितंबर को समाचार-पत्रों को दिये गये एक वक्तव्य में उन्होंने कहा—"जोश

से चीखनेवाली भीड़ के सामने जाने से कुछ नहीं बनता। कम-से-कम कल रात कुछ नहीं बना। जो बात मेरे शब्द से नहीं हो सकी, वह शायद मेरे उपवास से हो सके। अगर कलकत्ता में मैं लड़नेवाले बलवाइयों के दिलों पर असर कर सका, तो पंजाब में भी कर सकूंगा। इसलिए मैं आज रात को ८-१५ बजे से उपवास शुरू कर रहा हूं और यह उस समय समाप्त होगा, जब कलकत्तावालों में सद्बुद्धि फिर लौट आयगी।"

यह आमरण उपवास था। यदि सद्बुद्धि न लौटे, तो महात्माजी मर जायंगे।

२ सितंबर को टोलियों तथा शिष्टमंडलों का गांधीजी के निवास-स्थान पर तांता लग गया। उन्होंने कहा कि गांधीजी की प्राण-रक्षा के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं। गांधीजी ने बतलाया कि यह दृष्टिकोण ही गलत है। उनके उपवास का अभिप्राय था अंतरात्मा को जगाना और दिमागी सुस्ती दूर करना। हृदय-परिवर्तन मुख्य बात थी और उनके जीवन की रक्षा गौण।

सारे संप्रदायों तथा अनेक संस्थाओं के नेतागण महात्माजी से मिलने आये। गांधीजी ने सबसे बातें कीं। जबतक सांप्रदायिक मेल फिर स्थापित न हो जाय, वह उपवास नहीं तोड़ेंगे। कुछ प्रमुख मुसलमान तथा पाकिस्तान सीमैंस यूनियन के एक पदाधिकारी गांधीजी से मिले और उन्होंने आश्वासन दिया कि शांति कायम रखने का वह भरसक प्रयत्न करेंगे और मुसलमान भी आये। उपवास का उन पर असर पड़ा था। यह उपवास उनकी सुरक्षा के लिए तथा उनके विनष्ट घरों के पुनर्वास के लिए था।

४ सितंबर को म्युनिसिपल अधिकारियों ने सूचना दी कि गत चौबीस घंटों में शहर में पूरी शांति रही। लोगों ने गांधीजी को यह भी बताया कि सांप्रदायिक शांति की अपनी इच्छा का सबूत देने के लिए उत्तर कलकत्ता के ५०० पुलिस सिपाहियों ने, जिनमें अंग्रेज पुलिस-अफसर भी थे, ड्यूटी पर काम करते हुए ही सहानुभूति में चौबीस घंटे का उपवास शुरू कर दिया है। हुल्लड़बाज गिरोहों के सरदार, लंब-तड़ंग हत्यारे, गांधीजी के बिस्तर के पास बैठकर रोने लगे और उन्होंने वादा किया कि अपनी स्वाभाविक लूट-मार बंद कर देंगे। हिंदुओं, मुसलमानों तथा ईसाईयों के प्रतिनिधियों ने, कार्यकर्ताओं ने, व्यापारियों तथा दूकानदारों ने, गांधीजी के सामने प्रतिज्ञा की कि कलकत्ता में आगे से झगड़े नहीं होंगे। गांधीजी ने कहा कि वह उनका विश्वास तो करते हैं, परंतु इस बार लिखित प्रतिज्ञा चाहते हैं और प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने से पहले उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अगर

प्रतिज्ञा भंग की गई, तो वह अखंड उपवास शुरू कर देंगे, जिसे उनकी मृत्यु तक पृथ्वी की कोई भी वस्तु नहीं रोक सकेगी।

शहर के नेतागण मंत्रणा के लिए अलग चले गये। यह बड़ा महत्वपूर्ण क्षण था और वे लोग अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते थे। फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा का मसविदा बनाया और उस पर हस्ताक्षर कर दिये। ४ सितंबर को रात के ६-४५ पर गांधीजी ने सुहरावर्दी के हाथ से नीबू के शरबत का एक गिलास पिया। उन्होंने तिहत्तर घंटे उपवास किया था।

इस दिन से कलकत्ता तथा बंगाल के दोनों भाग दंगों से मुक्त रहे, हालांकि आगे के कितने ही महीनों तक पंजाब तथा अन्य प्रांत मजहबी हत्याओं से थर्राते रहे। बंगाल अपने वचन पर ईमानदारी से डटा रहा।

७ सितंबर को गांधीजी दिल्ली होकर पंजाब जाने के लिए कलकत्ता से रवाना हो गये। बाग के दूसरे भाग में गुड़ाई की आवश्यकता थी।

स्टेशन पर गांधीजी को सरदार पटेल, राजकुमारी अमृतकौर आदि मिले। इनके चेहरों पर निराशा छाई हुई थी। दिल्ली में दंगों का जोर था। पंजाब की आग से भागे हुए सिख तथा हिंदू शरणार्थी दिल्ली में भरते जा रहे थे। अछूतों की जिस बस्ती में महात्माजी ठहरा करते थे, वह इन लोगों ने घेर ली थी। इसलिए गांधीजी को बिड़ला-भवन में रहना पड़ा।

बिड़ला भवन में गांधीजी का कमरा नीचे की मंजिल में था। जब गांधीजी यहां पहुंचे, तो उन्होंने सारा फर्नीचर हटवा दिया। आगंतुक लोग फर्श पर बैठते थे और गांधीजी कमरे के बाहर बरामदे में सोते थे।

बिड़ला भवन पहुंचने पर गांधीजी को मालूम हुआ कि दिल्ली में ताजा फल और सब्जियां मिलना दुश्वार था। दंगों ने सब कारोबार ठप कर दिया था।

अब गांधीजी तेजी के साथ और पूरी तरह खुलकर दिल्ली की अक्ल ठिकाने लाने के काम में जुट गये, दिल्ली की भी और पंजाब की भी। दूसरी कोई बात महत्व नहीं रखती थी। पिछले वर्षों में गांधीजी डाक्टरों को अपना रक्तचाप नाप लेने देते थे। अब उन्होंने कह दिया—"मुझे तंग मत करो। मैं तो काम करना चाहता हूं और अपने रक्तचाप के बारे में कुछ नहीं जानना चाहता।" डाक्टरों का कहना था कि पिछले दस वर्षों में उनके रक्त-परिभ्रमण संस्थान में कोई गिरावट नहीं आई थी, न उनके चेहरे अथवा शरीर पर ज्यादा झुर्रियां पड़ी थीं। जोर की आवाज उनके कानों को सहन नहीं होती थी। वह रात में पांच-छः घंटे और दिन

में आधा या एक घंटा सोते थे। वह खूब गहरी नींद सोते थे। सुबह उनमें खूब ताजगी और फुर्ती रहती थी।

राजनैतिक स्थिति पर तीव्र विक्षोभ के बावजूद गांधीजी अपने शरीर पर बहुत अधिक ध्यान देते थे। खूब गर्म पानी के टब में १० से २० मिनट तक पड़ा रहना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। अगर गुसलखाने में फुहारेवाली टोंटी होती, तो वह बाद में ठंडे पानी से स्नान करते थे।

कठिन यात्राओं तथा जबरदस्त मानसिक खिंचाव के इन महीनों में वह अल्प भोजन करते थे। उनका गुर था : बूते से ज्यादा काम करना पड़े, तो कम खाओ। उनके लिए तो अभी बहुत काम करने को पड़ा था।

बिड़ला भवन पहुंचने के पहले ही दिन गांधीजी दिल्ली से चौदह मील दूर ओखला में डा० ज़ाकिरहुसैन से मिलने गये।

ज़ाकिरहुसैन ओखला की जामिआ मिल्लिया इस्लामिया के अध्यक्ष थे। यह बहुत ऊंचे दिमाग और चरित्रवाले भव्य विद्वान हैं। इस स्कूल के लिए गांधीजी ने चंदा इक्ट्ठा किया था। उन्होंने डा० ज़ाकिरहुसैन को 'तालीमी संघ' का अध्यक्ष भी बनाया था।

अगस्त १९४७ में जामिआ मिल्लिया पर क्रोधित हिंदुओं तथा सिखों का समुद्र लहरें मारने लगा, क्योंकि इनके लिए सारी मुस्लिम चीजें, चाहे आदमी हो या इमारत, घृणास्पद थीं। रात को जामिआ के अध्यापक तथा विद्यार्थी हमले की आशंका में पहरा देते थे। चारों ओर के गांवों में मुसलमानों के घर जल रहे थे। हमलावरों का घेरा नजदीक आता जा रहा था। एक अंधेरी रात को एक टैक्सी जामिआ के अहाते में पहुंची। इसमें से जवाहरलाल नेहरू उतरे। दिल्ली को घेरने-वाले दीवानों के घेरे में होकर वह अकेले ही वहां जा पहुंचे थे, ताकि डा० हुसैन और उनके विद्यार्थियों के पास रहें और उन्हें हमले से बचायें।

ज्योंही गांधीजी ने जामिआ के सामने खड़े खतरे की बात सुनी, वह कार में वहां जा पहुंचे और डा० ज़ाकिरहुसैन तथा विद्यार्थियों के साथ एक घंटा ठहरे। गांधीजी के पदार्पण से जामिआ पवित्र हो गई। इसके बाद उस पर हमले की आशंका नहीं रही।

उसी दिन गांधीजी ने कई शरणार्थी कैंपों का दौरा किया। उनसे अनुरोध किया गया कि हथियारबंद रक्षक साथ ले जायं। संभव था हिंदू तथा सिख उन्हें मुस्लिम परस्त मानकर उन पर हमला कर दें और मुसलमान उन्हें हिंदू मानकर।

परंतु वह अपनी रक्षा के लिए किसीको नहीं ले गये।

सावधानी और तंदुरुस्ती को ताक में रखकर गांधीजी ने अब असाधारण शक्ति का प्रदर्शन किया। वह दिन में कितनी ही बार शहर में इधर-उधर दौड़ते थे, कभी दंगेवाले क्षेत्रों का दौरा करते, कभी शहर में या बाहर शरणार्थी डेरों में जाते और कई बार मानवता के कटुता भरे, जड़ से उखड़े, नमूनों की हजारों की भीड़ में भाषण देते। २० सितंबर की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा था—"मैं दिल्ली के और पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी पंजाब के दीन-हीन शरणार्थियों का विचार करता हूं। मैंने सुना है कि हिंदुओं और सिखों का सत्तावन मील लंबा काफिला पश्चिमी पंजाब से भारत में प्रवेश कर रहा है। यह सोचकर मेरा सिर चकराता है कि ऐसा कैसे हो सकता है। इस प्रकार की घटना संसार के इतिहास में दूसरी नहीं मिलेगी। इससे मेरा सिर शर्म से झुक जाता है और आप लोगों का भी झुक जाना चाहिए।"

मुर्दों और पागलों के इस शहर में गांधीजी प्रेम और शांति का उपदेश देने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कहा—"जो हिंदू और सिख मुसलमानों को सताते हैं, वे अपने धर्म को बदनाम करते हैं और भारत को ऐसी क्षति पहुंचाते हैं, जो कभी पूरी नहीं हो सकती।"

गांधीजी एक तूफानी बाढ़ के सामने अकेले ही जमकर खड़े हो गये थे।

वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के करीब पांचसौ सदस्यों की एक सभा में गये। उन्होंने कहा कि अपनी असहिष्णुता से संघ हिंदू धर्म की हत्या कर डालेगा।

भाषण के बाद गांधीजी ने प्रश्न आमंत्रित किये। एक सवाल और उसका जवाब लिखे गये थे।

"क्या हिंदू धर्म अत्याचारी को मारने की अनुमति देता है?"

"एक अत्याचारी दूसरे अत्याचारी को सजा नहीं दे सकता," गांधीजी ने उत्तर दिया—"सजा देना सरकार का काम है, जनता का नहीं।"

२ अक्तूबर १९४७ को गांधीजी का अठहत्तरवां जन्म-दिन था। लेडी माउंट-बैटन तथा विदेशी कूटनीतिक प्रतिनिधि गांधीजी को मुबारकबाद देने आये। बहुत-से मुसलमानों ने शुभ-कामनाएं भेजीं। धनवानों ने रुपया भेजा, शरणार्थियों ने फूल भेजे। गांधीजी ने पूछा—"मुबारकबाद का मौका कहां है? क्या संवेदनाएं भेजना अधिक उचित नहीं होगा? मेरे हृदय में तीव्र वेदना के सिवा कुछ नहीं है। एक समय था, जब जन-समूह पूरी तरह मेरे कहने के अनुसार चलता था। आज मेरी

आवाज अरण्यरोदन के समान हो गई है।... मैंने १२५ वर्ष तो क्या, ज्यादा जीवित रहने की भी सारी इच्छा छोड़ दी है। जब विद्वेष तथा मार-काट वातावरण को दूषित कर रहे हैं, तब मैं नहीं रह सकता। ...इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मौजूदा पागलपन छोड़ दीजिये।"

गांधीजी अपने को निरुत्साहित महसूस नहीं करते थे, वह अपने को निरुपाय महसूस कर रहे थे। "सर्व-समावेशक शक्ति से मैं सहायता की याचना करता हूं कि वह मुझे इस आंसुओं की घाटी से उठाले तो बेहतर होगा, बजाय इसके कि वहशी बने हुए मनुष्य के कसाईपन का मुझे निरुपाय दर्शक बनाये।"

वह शरणार्थियों के उन कैंपों में गये, जो गंदे थे। सवर्ण शरणार्थियों ने इनकी सफाई से इन्कार कर दिया। गांधीजी ने हिंदुओं की इस कमजोरी की भर्त्सना की। सर्दी का मौसम आ रहा था। उन्होंने बेघरों के लिए कंबलों, रजाइयों और चादरों की अपील की।

रोज शाम को वह बतलाते थे कि उन्हें कितने कंबल प्राप्त हुए। एक दिन गांधीजी दिल्ली केंद्रीय जेल में गये और ३००० कैदियों के साथ प्रार्थना की। उन्होंने हंसते हुए कहा—"मैं तो एक अभ्यस्त पुराना कैदी हूं।" उन्होंने पूछा—"स्वतंत्र भारत में जेल कैसे होंगी ? सारे अपराधियों के साथ रोगी जैसा व्यवहार होगा और जेल अस्पताल बनेंगी, जिनमें इलाज और सेहत के लिए रोगी भरती किये जायंगे।" अंत में उन्होंने कहा कि मेरी इच्छा है कि हिंदू-मुसलमान-सिख कैदी मिलकर भाईचारे से रहें।

कलकत्ता से अच्छे समाचार आ रहे थे। गांधीजी ने अपनी प्रार्थना सभा में पूछा कि दिल्ली भी कलकत्ता के शांतिपूर्ण उदाहरण का अनुकरण क्यों नहीं करती ?

प्रतिशोध के डर से भारतीय संघ के मुसलमानों ने पाकिस्तान जाने का निश्चय किया। बदला लिये जाने के डर से पाकिस्तान के हिंदू तथा सिख भारतीय संघ की ओर चले आ रहे थे। एक विशाल प्रदेश में विद्वेष, हत्या तथा लाखों के निष्कासन से तूफान आ रहा था। इस उथल-पुथल के बीच एक लंगोटीवाला छोटा-सा आदमी खड़ा था। वह कह रहा था कि अदले का बदला, मौत के बदले मौत, भारत के लिए मौत के समान है।

दिल्ली में मार-काट की छुटपुट घटनाएं हो रही थीं। मस्जिदों के तोड़े जाने तथा मंदिर बनाये जाने को गांधीजी ने हिंदू-धर्म तथा सिख धर्म के लिए कलंक

बतलाया। वह सिखों के एक समारोह में गये। वहां उन्होंने सिखों द्वारा मुसलमानों की मार-काट की निंदा की।

गांधीजी ने भारत सरकार की भी ग्रालोचना की। सेना पर बढ़ते हुए खर्च के भारी बोझ को उन्होंने पश्चिम के झूठे ग्राडंबर की भ्रांतिपूर्ण नकल बतलाया, परंतु साथ ही उन्होंने ग्राशा प्रकट की कि भारत मृत्यु के इस तांडव से बच जायगा ग्रौर "उस नैतिक ऊंचाई पर पहुंच जायगा, जिस पर बत्तीस वर्ष से लगातार मिलनेवाली ग्रहिंसा की शिक्षा के फलस्वरूप उसे पहुंचना चाहिए।"

गांधीजी ने लिखा था—"जिस समय प्रासंगिक हो, उस समय सच बोलना ही पड़ता है, चाहे वह कितना ही नागवार क्यों न हो।...ग्रगर पाकिस्तान में मुसलमानों के कुकृत्यों को रोकना या बंद करना ग्रभीष्ट है, तो भारतीय संघ में हिंदुग्रों के कुकृत्यों का छत पर खड़े होकर ऐलान करना होगा।" हिंदू होने के नाते गांधीजी हिंदुग्रों के प्रति सबसे ग्रधिक निष्ठुर थे।

: ८ :

भारत का भविष्य

गांधीजी ठोस इलाज सुझाये बिना कभी कोई प्रतिकूल ग्रालोचना नहीं करते थे। उन्होंने कांग्रेस-दल की तथा स्वाधीन भारत की नई सरकार की ग्रालोचना की थी। वह क्या सुझाव पेश कर रहे थे ?

गांधीजी ने बहुत जल्दी देख लिया कि भारत की ग्राजादी के साथ भारत में ग्राजादी का प्रश्न उठ खड़ा हुग्रा है। भारत लोकतंत्र कैसे बना रह सकता है ?

गांधीजी के सामने विचारणीय प्रश्न था : क्या कांग्रेस-दल सरकार को मार्ग दिखा सकता है ग्रौर उस पर ग्रंकुश लगा सकता है ? उन्होंने सोवियत संघ की, या फ्रैंको के स्पेन की, या ग्रन्य ग्रधिनायकशाही देशों की राजनैतिक ग्रवस्थाग्रों का ग्रध्ययन नहीं किया था, परंतु सहज ग्रंतःप्रेरणा से वह उन परिणामों पर पहुंच गये थे, जिन पर दूसरे लोग लंबे ग्रनुभवों तथा विश्लेषण के बाद पहुंच पाये थे। उन्होंने जान लिया था कि एकदल-प्रणाली व्यवहार में दलहीन-प्रणाली हो जाती है, क्योंकि जब सरकार ग्रौर दल एक ही होते हैं, तो दल केवल रबड़ की मुहर बन जाता है ग्रौर उसका ग्रस्तित्व काल्पनिक हो जाता है।

यदि भारत का एकमात्र महत्वपूर्ण राजनैतिक दल, कांग्रेस, सरकार के प्रति

स्वतंत्र और आलोचनात्मक दृष्टिकोण न रखे, तो सरकार में पैदा होनेवाली संभावित निरंकुश प्रवृत्तियों के अवरोधक का काम कौन करेगा ?

क्या गांधीजी तथा स्वतंत्र समाचार-पत्रों की सहायता से कांग्रेस-दल द्वारा भारत में इस संभावना को रोका जा सकता है ?

१५ नवंबर १९४७ को, गांधीजी की उपस्थिति में, कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपालानी ने कांग्रेस महा-समिति को सूचित किया कि वह अपने पद से त्याग-पत्र दे रहे हैं। सरकार ने न तो उनसे परामर्श किया और न उन्हें पूरी तरह विश्वास में लिया। कृपालानी ने बतलाया कि गांधीजी की राय में ऐसी परिस्थिति में त्याग-पत्र उचित था।

कांग्रेस कार्य-समिति की जिस बैठक में नये अध्यक्ष का चुनाव होनेवाला था, उसमें गांधीजी भी उपस्थित थे। यह महात्माजी का मौन दिवस था। जब नाम-जदगियां खोली गईं, तो गांधीजी ने अपने उम्मीदवार का नाम एक पर्चे पर लिखा और उसे नेहरू के पास पहुंचा दिया। नेहरू ने सबको सुनाकर नाम पढ़ा—नरेंद्र-देव। नेहरू ने नरेंद्रदेव के नाम का समर्थन किया। दूसरों ने विरोध किया।

कार्य-समिति की सुबह की बैठक १० बजे उठ गई, मत नहीं लिये गये।

दोपहर को नेहरू और पटेल ने राजेंद्रबाबू को बुलाया और गांधीजी से बिना पूछे उनसे अनुरोध किया कि कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए खड़े हो जायं।

राजेंद्रबाबू १ बजे बिड़ला भवन में गांधीजी के पास गये और इस प्रस्ताव का गांधीजी से जिक्र किया। गांधीजी ने कहा—"यह प्रस्ताव मुझे पसंद नहीं है।"

इन घटनाओं का वर्णन करते हुए राजेंद्रबाबू ने बताया—"मुझे याद नहीं कि मैंने कभी गांधीजी के विरोध का साहस किया हो। अगर कभी उनसे मेरा मतभेद भी होता, तो मुझे लगता कि उनकी बात ठीक होनी चाहिए और मैं उनके पीछे चलता था।"

इस अवसर पर भी राजेंद्रबाबू गांधीजी की बात से सहमत हो गये और उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस लेने का वादा किया।

परंतु बाद में राजेंद्रबाबू को समझा-बुझाकर उनका विचार बदलवा लिया गया। वह कांग्रेस के नये अध्यक्ष बन गये।

कांग्रेस-यंत्र ने तथा सरकार के प्रमुख व्यक्तियों ने गांधीजी को पराजित कर दिया।

१९४७ के दिसंबर के पूर्वार्द्ध में गांधीजी ने अपने सबसे अधिक विश्वस्त सह-

योगियों के साथ कई बार सम्मिलित रूप से बात-चीत की। ये लोग सरकार से बाहर थे और रचनात्मक कार्यों में लगे हुए थे। ये गांधीजी द्वारा स्थापित रचनात्मक संस्थाओं का संचालन करते थे।

गांधीजी चाहते थे कि ये सब संस्थाएं मिलकर एक हो जायं, परंतु वह यह नहीं चाहते थे कि रचनात्मक कार्यकर्ता "सत्ता प्राप्त करने की राजनीति में पड़ जायं, क्योंकि इससे सर्वनाश हो जायगा।" उन्होंने कहा—"अगर यह बात न होती, तो क्या मैं खुद ही राजनीति में न पड़ जाता और अपने ढंग से सरकार चलाने की कोशिश न करता? आज जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर है, वे आसानी से हटकर मेरे लिए जगह कर देते।"

"परंतु मैं अपने हाथों में सत्ता नहीं लेना चाहता," गांधीजी ने अपने मित्रों को विश्वास दिलाया—"सत्ता का त्याग करके और शुद्ध निःस्वार्थ सेवा में लगकर हम मतदाताओं को मार्ग दिखा सकते हैं और प्रभावित कर सकते हैं। इससे हमें जो सत्ता प्राप्त होगी, वह इस सत्ता से बहुत अधिक वास्तविक होगी, जो सरकार में जाने से प्राप्त होती। ऐसी स्थिति आ सकती है, जब लोग खुद महसूस करें और कहें कि वे चाहते हैं कि सत्ता का उपयोग हमारे ही द्वारा हो, अन्य किसीके द्वारा नहीं। उस समय इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। तब तक शायद मैं जीवित न रहूं।"

जब गांधीजी ने देखा कि वह कांग्रेस को मार्ग दिखाने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने एक नया वाहन रचने की योजना बनाई, जो सरकार को धक्का देकर आगे बढ़ाये और संकट के समय सरकार का भार भी उठाकर ले चले। यह राजनीति में रहे, परंतु राजनैतिक सत्ता ग्रहण न करे, सिवा उस अवस्था के, जब अन्य कोई चारा न रहे। मत प्राप्त करने की कोशिश के बजाय, गांधीजी के शब्दों में, यह जनता को सिखाये कि वह "अपने मताधिकार का उपयोग बुद्धिमानी से करे।"

एक प्रतिनिधि ने सवाल किया कि कांग्रेस या सरकार रचनात्मक जन-हितकारी कार्य क्यों नहीं कर सकती ?

गांधीजी ने सरलता से उत्तर दिया—"क्योंकि रचनात्मक कार्य में कांग्रेसजनों को काफी दिलचस्पी नहीं है। हमें इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि हमारे स्वप्नों की सामाजिक-व्यवस्था आज की कांग्रेस के द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकती।"

गांधीजी ने दृढ़ता से कहा—"आज इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है कि मुझे डर लग रहा है। आदमी अपनी जेब में इतने सारे मत रखना चाहता है, क्योंकि

मतों से सत्ता मिलती है। इसलिए सत्ता हस्तगत करने का विचार मिटा दीजिये, तो आप सत्ता को ठीक मार्ग पर ले जा सकेंगे। जो भ्रष्टाचार हमारी स्वाधीनता का जन्मते ही गला घोंटने को तैयार खड़ा है, उसे मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

गांधीजी महसूस करते थे कि सत्ताधारी व्यक्तियों का तगड़ा विरोध वही कर सकता है, जो खुद सत्ता के प्रलोभन से मुक्त हो। सरकार से बाहर रहनेवाले ही सरकार में रहनेवालों को रोक और साध सकते हैं, ऐसा गांधीजी का मत था।

फिर भी गांधीजी की ऊंची अधिकारपूर्ण स्थिति उस सरकार की सत्ता का मुकाबला नहीं कर पा रही थी, जो उनके प्रयत्नों से बनी थी और जिसके सदस्य उनके चरणों में शीश झुकाते थे।

: ६ :

आखिरी उपवास

रिचर्ड सिमंड्स नामक एक अंग्रेज मित्र, जो बंगाल में गांधीजी से मिले थे, नवंबर १९४७ में नई दिल्ली में बीमार पड़ गये। गांधीजी ने उन्हें बिड़ला भवन बुला लिया।

डाक्टर ने सिमंड्स के लिए ब्रांडी तजवीज की। गांधीजी से पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि सिमंड्स को ब्रांडी दिये जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

सिमंड्स काश्मीर गये थे और वहां की स्थिति के बारे में गांधीजी से चर्चा करना चाहते थे, लेकिन गांधीजी ने उन्हें मौका ही नहीं दिया।

सितंबर १९४७ में पाकिस्तान ने सरहद के कबीलों को काश्मीर में घुसने के लिए परोक्ष रूप से सहायता दी थी। बाद में पाकिस्तान की फौज के सैनिकों ने काश्मीर पर धावा बोल दिया। काश्मीर के महाराजा ने घबराकर तथा लाचार होकर प्रार्थना की कि उनकी रियासत भारतीय संघ में शामिल कर ली जाय। २९ अक्तूबर को काश्मीर का विलय सरकारी तौर पर घोषित कर दिया गया और महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। साथ ही नई दिल्ली की सरकार ने वायु तथा थल मार्ग से काश्मीर में सैनिक भेज दिये। अगर हवाई जहाजों से सैनिक न पहुंचाये गये होते, तो पाकिस्तान काश्मीर को जीतकर अपने राज्य में मिला लेता। शीघ्र ही काश्मीर और जम्मू की भूमि

भारत और पाकिस्तान के बीच छोटे-से युद्ध का क्षेत्र बन गई।

बड़े दिन पर आकाशवाणी से बोलते हुए गांधीजी ने भारत द्वारा काश्मीर में सैनिक भेजे जाने की कार्रवाई का समर्थन किया। भारत और पाकिस्तान के बीच रियासत के बंटवारे के प्रस्ताव की उन्होंने निंदा की। उन्होंने इस पर दुख प्रकट किया कि नेहरू ने यह झगड़ा संयुक्त-राष्ट्र-संघ को सौंप दिया। अंग्रेज शांतिवादी होरेस अलेक्ज़ेंडर से उन्होंने कहा था कि काश्मीर के मुद्दे पर देशों का रुख अंतर्राष्ट्रीय 'सत्तागत राजनीति' के आधार पर निश्चित होगा, न्याय पर नहीं। इसलिए गांधीजी ने भारत तथा पाकिस्तान से अनुरोध किया कि निष्पक्ष भारत-वासियों की सहायता से दोनों आपस में मैत्रीपूर्ण समझौता कर लें, जिससे भारतीय संघ संयुक्त-राष्ट्र-संघ से अपना आवेदन-पत्र वापस ले ले।

गांधीजी सदा ऊंची राजनीति को नीची राजनीति से मिला देते थे। एक दिन अगर वह नेहरू से काश्मीर के बारे में बातचीत करते, तो दूसरे दिन वह किसी गांव में जाकर किसानों को मैले की खाद बनाने की तरकीब बताते।

गांधीजी इतने महान थे कि उनकी सफलता संभव नहीं थी। उनके लक्ष्य अत्यधिक ऊंचे थे, उनके अनुगामी अत्यधिक मानवी तथा दुर्बल!

गांधीजी केवल भारत की ही संपत्ति नहीं थे। भारत में उनकी असफलताओं से संसार के लिए उनके संदेश तथा उसके अर्थ का महत्व कम नहीं होता। संभव है, वह भारत में बिल्कुल मर जायं और भारत के बाहर उत्कट रूप से जीवित रहें। अंत में जाकर शायद वह वहां भी जीवित रहें और यहां भी।

गांधीजी के जीवन का ढंग ही है कि जो असली महत्व रखता है, न कि उनके निकटवर्ती पड़ोस में उनका तत्कालीन प्रभाव।

ईसा ने सोचा होगा कि ईश्वर ने उन्हें छोड़ दिया और गांधीजी ने सोचा होगा कि उनके लोगों ने उन्हें छोड़ दिया। इतिहास के निर्माता इतिहास के निर्णय को पहले से नहीं जान सकते।

मनुष्य की महानता देखनेवाले की निगाहें होती हैं। गांधीजी इतने परेशान, दुखी तथा अपने भक्तों द्वारा अवरुद्ध थे कि वह नहीं देख सकते थे कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों में वह कितनी ऊंचाई पर पहुंच गये थे। इस अल्प समय में उन्होंने वह किया, जो किसी भी समाज के लिए अपरिमित मूल्य रखता है। उन्होंने भारत के सामने एक निराले तथा श्रेष्ठतर जीवन का नमूना रखा। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मनुष्य भाई-भाई की तरह रह सकते हैं और रक्त-रंजित हाथोंवाला

पाशविक मनुष्य भी ग्रात्मा के स्पर्श से प्रभावित हो सकता है, चाहे थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो। ऐसे क्षणों के बिना मानवता ग्रपने-ग्राप में विश्वास खो देगी। समाज को ग्रनंत काल तक प्रकाश की इस झलक की तुलना साधारण जीवन-स्थिति के ग्रंधकार से करनी चाहिए।

१३ जनवरी १९४८ को महात्मा गांधीजी ने ग्रपना ग्रंतिम उपवास प्रारंभ किया। इसने भारत के मस्तिष्क में सद्भावना की मूर्ति स्थापित कर दी।

दिल्ली की मार-काट बंद हो गई। शहर में गांधीजी की उपस्थिति का ग्रसर हो गया। परंतु उन्हें ग्रब भी 'तीव्र वेदना' थी। उन्होंने कहा था—"यह ग्रसहनीय है कि डा० ज़ाकिरहुसैन जैसे व्यक्ति या शहीद सुहरावर्दी दिल्ली में मेरी तरह ग्राजादी ग्रौर हिफाजत के साथ घूम-फिर नहीं सकते। ...मैंने ग्रपने जीवन में कभी ऐसी निराशा का ग्रनुभव नहीं किया।"

इसलिए उन्होंने ग्रनशन कर दिया। यह ग्रामरण-ग्रनशन होनेवाला था। इसके लिए उन्हें ग्रकस्मात प्रेरणा हुई थी। उन्होंने नेहरू या पटेल या ग्रपने डाक्टरों से कोई परामर्श नहीं किया था। साल भर से दंगे शुरू हुए थे, वह धीरज के साथ ठहरे हुए थे; मजहबों के बीच ग्रापसी मार-काट की भावना देश में ग्रभी तक फैली हुई थी। "मानव-प्रयत्न के रूप में मेरे सारे साधन समाप्त हो गये। ...तब मैंने ग्रपना सिर ईश्वर की गोद में रख दिया। ...ईश्वर ने मेरे लिए उपवास भेजा।" उपवास का निश्चय करने के बाद उन्होंने महीनों बाद पहली बार ग्रानंद ग्रनुभव किया।

वह जानते थे कि उनकी मृत्यु हो सकती है, "परंतु मृत्यु मेरे लिए यशस्वी उद्धार होगी ग्रौर इससे तो ग्रच्छी ही होगी कि मैं भारत, हिंदू-धर्म, सिख-धर्म तथा इस्लाम का विनाश निरुपाय होकर देखता रहूं।"

उपवास के पहले दिन वह प्रार्थना-स्थान को गये ग्रौर रोज की तरह प्रार्थना कराई। एक पर्चे पर उनके पास भेजे गये लिखित प्रश्न में पूछा गया कि उपवास का दोष किस पर है ? उन्होंने उत्तर दिया—"किसी पर नहीं, परंतु यदि हिंदू ग्रौर सिख मुसलमानों को दिल्ली से निकालने पर ग्रामादा हैं, तो वे भारत तथा ग्रपने धर्मों के साथ विश्वासघात करेंगे ग्रौर इससे मुझे चोट लगती है। कुछ लोग ताना देते हैं कि मैं मुसलमानों की खातिर उपवास कर रहा हूं। वे ठीक कहते हैं। ग्रपने जीवन भर मैंने ग्रल्पसंख्यकों की ग्रौर जरूरतमंदों की हिमायत की है।"

उन्होंने बताया कि "वह अपना उपवास तभी तोड़ेंगे, जब दिल्ली वास्तविक अर्थों" में शांत हो जायगी।

उपवास के दूसरे दिन डाक्टरों ने गांधीजी को प्रार्थना में जाने से मना किया, इसलिए उन्होंने प्रार्थना-सभा में पढ़े जाने के लिए एक संदेश लिखा दिया। परंतु बाद में उन्होंने जाने का निश्चय किया। उन्होंने बताया कि उनके पास आनेवाले संदेशों का तांता बंध गया है। सबसे अधिक खुशी देनेवाला संदेश लाहौर से मृदुला साराभाई का था। मृदुला ने तार भेजा था कि गांधीजी के मुसलमान मित्र, जिनमें कुछ मुस्लिम लीगी तथा पाकिस्तान के मंत्री भी शामिल थे, उनके जीवन के लिए चिंतित थे और पूछते थे कि वे क्या करें।

गांधीजी का उत्तर था—"मेरा उपवास आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया है और इसका अभिप्राय उन सबको आत्म-शुद्धि की इस प्रक्रिया में भाग लेने को आमंत्रित करता है, जिनकी इस उपवास के उद्देश्य से सहानुभूति हो।...फर्ज कीजिये कि भारत के दोनों भागों में आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ जाती है, तब पाकिस्तान 'पाक' बन जायगा।...ऐसा पाकिस्तान कभी नहीं मर सकता। तभी, और उसी समय, मुझे पछतावा होगा कि मैंने विभाजन को पाप बताया। आज तो मैं इसे पाप ही समझता हूं।"

गांधीजी ने उपस्थित समुदाय को विश्वास दिलाया—"मेरी जरा भी इच्छा नहीं है कि उपवास जल्दी-से-जल्दी समाप्त हो। यदि मेरे जैसे मूर्ख की उन्मादभरी इच्छाएं कभी पूरी न हों और उपवास कभी न टूटे, तो कोई चिंता की बात नहीं है। जब तक जरूरी हो, तब तक प्रतीक्षा करने में मुझे संतोष है, परंतु यह सोचकर मुझे चोट लगेगी कि लोगों ने सिर्फ मेरी जान बचाने की खातिर कार्रवाई की है।"

इस उपवास में गांधीजी ने चिकित्सकों द्वारा अपनी परीक्षा किया जाना पसंद नहीं किया। उन्होंने कहा—"मैंने अपने को भगवान के भरोसे पर छोड़ दिया है।" परंतु डा० गिल्डर ने कहा कि डाक्टर लोग दैनिक विज्ञप्तियां निकालना चाहते हैं और उनकी परीक्षा किये बिना वह सच्ची बात नहीं बता सकते। इस पर महात्माजी ढीले पड़ गये। डा० सुशीला ने बताया कि उनके पेशाब में कुछ एसिटोन आने लगा है।

"इसका कारण यह है कि मुझमें काफी श्रद्धा नहीं है...।" गांधीजी ने जवाब दिया।

"परंतु एसिटोन तो एक रासायनिक पदार्थ है," डा० सुशीला ने उनकी बात काटते हुए कहा।

गांधीजी ने डा० सुशीला पर दृष्टि डाली, मानो वह बहुत दूर देख रहे हों ग्रौर कहा—"विज्ञान कितना कम जानता है। विज्ञान में जो कुछ है, उससे ग्रधिक जीवन में है ग्रौर रसायन में जो कुछ है, उससे ग्रधिक ईश्वर में है।"

वह पानी नहीं पी सकते थे, इससे जी मतलाने लगता था। मतली रोकने के लिए उन्होंने पानी में नीबू का रस या शहद मिलाने से इन्कार कर दिया। गुर्दे ठीक तरह काम नहीं कर रहे थे। वह काफी कमजोर हो गये थे। रोज उनका वजन एक सेर के करीब कम हो रहा था।

तीसरे दिन वह एनिमा लेने पर राजी हो गये। पिछली रात २-३० बजे उनकी ग्रांख खुल गई ग्रौर उन्होंने गर्म पानी से स्नान की इच्छा प्रकट की। टब में बैठे-बैठे उन्होंने प्यारेलाल को एक वक्तव्य लिखाया, जिसमें भारत सरकार से पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया देने को कहा गया था। लिखाने के बाद उन्हें चक्कर ग्राने लगा ग्रौर प्यारेलाल ने उन्हें टब से उठाकर कुर्सी पर बैठा दिया।

उस दिन गांधीजी बिड़ला भवन की एक बंद बरसाती में चारपाई पर घुटने पेट में दबाये लेटे रहे। उनकी ग्रांखें बंद थीं ग्रौर वह सोये हुए या ग्रर्द्ध-मूर्छित मालूम होते थे। करीब दस फुट की दूरी पर दर्शनार्थियों की ग्रनंत कतार चल रही थी। गांधीजी को देखकर कतार में जानेवाले भारतवासियों तथा विदेशियों के हृदय करुणा से भर गये, बहुत-से तो रो पड़े ग्रौर हाथ जोड़कर मन-ही-मन विनती करने लगे। गांधीजी के चेहरे पर तीव्र यंत्रणा प्रकट हो रही थी। परंतु इस ग्रवस्था में भी यह यातना लोकोत्तर प्रतीत होती थी। यह यातना श्रद्धा के उल्लास से प्रशमित हो गई थी, सेवा की ग्रवगति से कम हो गई थी। उनकी ग्रंतरात्मा जानती थी कि वह शांति में योगदान कर रहे हैं, इसलिए उनके मन में शांति थी।

सायं ५ बजे, प्रार्थना से पहले, वह पूरी तरह जाग रहे थे, परंतु प्रार्थना-स्थान तक चल नहीं सकते थे। इसलिए उनके बिस्तर के पास माइक्रोफोन लगा दिया गया, जिससे लाउडस्पीकर के द्वारा प्रार्थना-स्थान पर उनका प्रवचन सुना जा सके तथा ग्राकाशवाणी से प्रसारित किया जा सके।

क्षीण ग्रावाज में उन्होंने कहा—"दूसरे लोग क्या कर रहे हैं, इससे विकल नहीं होना चाहिए। हममें से हर एक को ग्रपने भीतर रोशनी डालनी चाहिए ग्रौर जितना ग्रधिक हो सके, ग्रपने हृदय को शुद्ध करना चाहिए।...मृत्यु से कोई नहीं

बच सकता। फिर उससे डरना क्या ? वास्तव में मृत्यु तो एक मित्र है, जो यातना से मुक्ति दिलाती है।"

चौथे दिन गांधीजी की नब्ज की चाल में गड़बड़ी होने लगी।

१७ जनवरी को गांधीजी का वजन १०७ पौंड पर स्थिर हो गया। उन्हें मतलियां आती थीं और वह बेचैन थे। परंतु घंटों तक वह चुपचाप पड़े रहते थे या सो जाते थे। नेहरू आये और रोने लगे। गांधीजी ने प्यारेलाल को यह देखने के लिए शहर भेजा कि मुसलमान लोग बिना खतरे के वापस आ सकते हैं या नहीं।

१८ जनवरी को गांधीजी की तबीयत पहले से अच्छी मालूम हुई। उन्होंने हल्के-हल्के मालिश कराई। उनका वजन १०७ पौंड बना रहा।

१३ तारीख को ११ बजे से, जब से गांधीजी ने उपवास शुरू किया था, विभिन्न जातियों, संगठनों तथा शरणार्थी समूहों के प्रतिनिधियों की कमेटियों की बैठकें डा० राजेंद्रप्रसाद के मकान पर हो रही थीं और विरोधी तत्वों के बीच वास्तविक शांति स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इस बार किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराने का सवाल नहीं था। इससे गांधीजी का संतोष होनेवाला नहीं था। लोगों को ठोस प्रतिज्ञाएं करनी थीं, जिनका उनके अनुगामी पालन करें। इस जिम्मेदारी को महसूस करके कुछ प्रतिनिधिगण हिचकिचा रहे थे और अपने विवेक तथा अपने मातहतों से परामर्श करने के लिए चले गये थे।

आखिर १८ तारीख़ की सुबह प्रतिज्ञा-पत्र का मसविदा तैयार हो गया और उस पर हस्ताक्षर हो गये। इसे लेकर लगभग सौ प्रतिनिधि राजेंद्रबाबू के मकान से बिड़ला भवन पहुंचे। नेहरू और आज़ाद पहले ही वहां मौजूद थे। दिल्ली पुलिस के मुख्य अधिकारी तथा उनके सहायक भी मौजूद थे। इन लोगों ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यहूदी सभी उपस्थित थे। हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि भी थे।

पाकिस्तान के उच्च आयुक्त जनाब ज़ाहिदहुसैन भी उपस्थित थे।

राजेंद्रबाबू ने महात्माजी को बतलाया कि उनके प्रतिज्ञा-पत्र में वचन है और उसे पूरा करने का कार्यक्रम है। प्रतिज्ञाएं निश्चयात्मक थीं : "हम वचनबद्ध हैं कि मुसलमानों के जान, माल और ईमान की रक्षा करेंगे और दिल्ली में जो घटनाएं हुई हैं, वे फिर नहीं होंगी।"

गांधीजी सुनते जाते थे और सम्मति सूचक सिर हिलाते जाते थे।

"मुसलमानों की छोड़ी हुई मस्जिदें, जिन पर हिंदुओं और सिखों ने कब्जा कर लिया है, वापस लौटा दी जायंगी।...

"भागे हुए मुसलमान वापस आ सकते हैं और पहले की तरह अपने कारोबार चला सकते हैं।

"ये सब हम अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से करेंगे, पुलिस या फौज की मदद से नहीं।"

अंत में राजेंद्रबाबू ने गांधीजी से प्रार्थना कि वह अपना उपवास तोड़ दें।

राजेंद्रबाबू के मकान पर होनेवाली चर्चाओं की सूचना गांधीजी को मिलती रहती थी। प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार की गई कुछ बातें तो प्रारंभ में उन्होंने ही सुझाई थीं।

गांधीजी ने अब उपस्थित जनों को संबोधन किया—"आपके शब्दों ने मुझे प्रभावित किया है। परंतु यदि आप लोग अपने को सिर्फ दिल्ली की सांप्रदायिक शांति के लिए जिम्मेदार मानते हैं, तो आपके आश्वासन का कोई मूल्य नहीं है और मैं तथा आप एक दिन महसूस करेंगे कि उपवास तोड़कर मैंने महान भूल की।... हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि इस कमरे में मौजूद हैं। यदि ये लोग अपने वचनों के प्रति ईमानदार हैं, तो दिल्ली के अलावा दूसरे स्थानों पर प्रकट होनेवाले पागलपन से उदासीन नहीं रह सकते।... दिल्ली भारत का हृदय है और आप लोग दिल्ली का सार-तत्व हैं। यदि आप सारे भारत को यह महसूस नहीं करा सकते कि हिंदू, सिख और मुसलमान सब भाई-भाई हैं, तो भारत तथा पाकिस्तान दोनों के भविष्य की अशुभ घड़ी आनेवाली है।"

इस स्थल पर आवेग से अभिभूत होकर गांधीजी रो पड़े। उनके गालों पर आंसू बहने लगे। दर्शक भी सिसकियां भरने लगे, बहुत-से रोने लगे।

जब गांधीजी ने दुबारा बोलना शुरू किया, तो उनकी आवाज इतनी धीमी थी कि सुनाई नहीं देती थी। डा० सुशीला नैयर उनके शब्द दुहराती गईं। गांधीजी ने पूछा—"आप लोग मुझे धोखा तो नहीं दे रहे? आप लोग सिर्फ मेरी जान बचाने की कोशिश तो नहीं कर रहे?"

मौलाना आज़ाद और अन्य मुस्लिम विद्वानों ने, हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से गणेशदत्त गोस्वामी ने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यह बात नहीं है और उनसे उपवास तोड़ने की प्रार्थना की।

गांधीजी चारपाई पर बैठे हुए गंभीर विचार में मग्न हो गये। उपस्थित जन प्रतीक्षा

करने लगे। अंत में गांधीजी ने घोषणा की कि वह अपना उपवास तोड़ देंगे। पारसी, मुस्लिम तथा जापानी धर्म-ग्रंथों का पाठ हुआ और फिर यह मंत्र बोला गया :

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय

इसके बाद मौलाना आजाद ने पाव भर नारंगी के रस का गिलास गांधीजी को दिया और गांधीजी ने धीरे-धीरे रस पिया।

उस दिन सुबह उठते ही नेहरू ने गांधीजी के साथ शाम तक उपवास का निश्चय किया था। उन्हें बिड़ला भवन बुलाया गया, जहां उन्होंने वचन दिया जाना तथा उपवास का समाप्त किया जाना देखा। मजाक करते हुए नेहरू ने गांधीजी से कहा—"देखिये, मैं उपवास कर रहा हूं और अब मुझे समय से पहले अपना उपवास तोड़ना पड़ेगा।"

गांधीजी प्रसन्न हो गये। तीसरे पहर उन्होंने नेहरू के पास कुछ कागजात एक पर्चे के साथ भेजे, जिसमें लिखा था—"मुझे आशा है, तुमने अपना उपवास समाप्त कर दिया होगा। ईश्वर करे, तुम बहुत समय तक भारत के जवाहर बने रहो।"

पाकिस्तान के विदेश-मंत्री सर मोहम्मद ज़फरुल्ला खां ने संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सुरक्षा-परिषद को सूचना दी थी—"उपवास की प्रतिक्रिया-स्वरूप दोनों उपनिवेशों के बीच मैत्री की भावना तथा इच्छा की एक नई और जबरदस्त लहर ने संपूर्ण उपमहाद्वीप को ढक लिया है।"

पाकिस्तान और भारत के बीच की राष्ट्रीय सीमा भारत के हृदय में लगाया गया चीरा है, जो जुड़ा नहीं, और दोनों के बीच मैत्री दुष्कर है। फिर भी गांधीजी के उपवास ने यह चमत्कार दिखाया कि केवल दिल्ली में ही शांति स्थापित नहीं हुई, बल्कि दोनों उपनिवेशों में मजहबी दंगों और मार-काट का अंत हो गया।

विश्व-व्यापी समस्या का यह आंशिक हल उस व्यक्ति के नैतिक बल की यादगार के रूप में है, जिसकी सेवा करने की इच्छा प्राणों की ममता से कहीं अधिक थी। गांधीजी जीवन को प्रेम करते थे और जीवित रहना चाहते थे। लेकिन मरने के लिए उद्यत रहने में उन्हें सेवा की शक्ति प्राप्त हुई और उसीमें आनंद था। उपवास के बाद के बारह दिनों में वह प्रसन्न और विनोदपूर्ण थे। निराशा काफूर हो

गई थी और भविष्य के कार्य के लिए उनके मन में अनेक योजनाएं थीं। उन्होंने मृत्यु का आह्वान किया और उन्हें जीवन का नया पट्टा मिल गया।

: १० :

अंतिम अध्याय

उपवास समाप्त होने के बाद पहले दिन गांधीजी को कुर्सी पर बिठाकर प्रार्थना-स्थल पहुंचाया गया। अपने भाषण में, जिसकी आवाज बहुत धीमी थी, उन्होंने बताया कि हिंदू-महासभा के एक पदाधिकारी ने दिल्ली की शांति-प्रतिज्ञा को मानने से इन्कार कर दिया है। गांधीजी ने इस पर दुख प्रकट किया।

दूसरे दिन भी प्रार्थना के लिए उन्हें उठाकर ले जाया गया। अपने प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने जल्दी स्वास्थ्य-लाभ की तथा शांति का मिशन आगे बढ़ाने के लिए पाकिस्तान जाने की आशा व्यक्त की।

प्रश्नोत्तर के समय एक आदमी ने गांधीजी से कहा कि वह अपने को अवतार घोषित कर दें। गांधीजी ने परिश्रांत मुस्कराहट से कहा—"चुपचाप बैठ जाओ।"

गांधीजी जिस समय बोल रहे थे, तभी धड़ाके की आवाज सुनाई दी। "यह क्या हुआ?" उन्होंने पूछा, और फिर कहा—"मालूम नहीं, क्या है?" श्रोताओं में घबराहट फैल गई। "इस पर ध्यान मत दो," वह बोले—"मेरी बात सुनो।"

पास ही बाग की दीवार से महात्माजी पर बम फेंका गया था।

अगले दिन गांधीजी जब खुद चलकर प्रार्थना-सभा में पहुंचे, तो उन्होंने बताया कि कल की घटना के समय अविचलित रहने के लिए उनके पास बधाइयां चली आ रही हैं। वह कहने लगे—"इसके लिए मैं प्रशंसा का पात्र नहीं हूं। मैंने समझा था कि सेना अभ्यास कर रही है। प्रशंसा का पात्र तो तब होऊंगा, जब ऐसे धड़ाके से मैं आहत हो जाऊं और फिर भी मेरे चेहरे पर मुस्कराहट बनी रहे और मारनेवाले के प्रति द्वेष न हो। जिस पथ-भ्रष्ट युवक ने बम फेंका है, उससे किसीको घृणा नहीं होनी चाहिए। वह शायद मुझे हिंदू-धर्म का शत्रु समझता है।... परंतु हिंदू-धर्म को बचाने का यह तरीका नहीं है। हिंदू-धर्म तो मेरे ही तरीके से बच सकता है।"

एक बेपढ़ी बुढ़िया ने बम फेंकनेवाले के साथ धर-पकड़ की थी और पुलिस के आने तक उसे पकड़े रखा था। गांधीजी ने इस अशिक्षित बहन के सहज साहस

की सरहना की। पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल से उन्होंने कहा कि उस नौजवान को तंग न करें।

इस नौजवान का नाम मदनलाल था। वह पंजाब से आया हुआ शरणार्थी था और उसने दिल्ली की एक मस्जिद में आश्रय ले रखा था। गांधीजी की इच्छा के अनुसार उसे मस्जिद से निकाल दिया गया था।

रोष में भरकर मदनलाल उन लोगों के दल में शामिल हो गया, जो गांधीजी की हत्या की साजिश कर रहे थे। जब बम ने अपना काम नहीं किया और मदन-लाल गिरफ्तार हो गया, तो उसका साथी षड्यंत्रकारी नाथूराम विनायक गोडसे दिल्ली आया।

गोडसे बिड़ला-भवन के आस-पास चक्कर लगाने लगा। वह खाकी जाकट पहने रहता था। जाकट की जेब में एक छोटा पिस्तौल रखता था।

रविवार, २५ जनवरी को गांधीजी की प्रार्थना-सभा में रोज की अपेक्षा भारी भीड़ थी। गांधीजी खुश हुए। उन्होंने लोगों से कहा कि वे अपने साथ आसन या मोटी खादी का कपड़ा बैठने के लिए ले आया करें, क्योंकि जाड़ों में घास ठंडी और नम रहती है। उन्होंने बताया कि उन्हें हिंदू और मुसलमानों से यह जानकर बड़ा हर्ष है कि दिल्ली ने हृदयों का ऐसा मिलन कभी अनुभव नहीं किया। इस सुधार की अवस्था में क्या यह नहीं हो सकता कि प्रार्थना में जो भी हिंदू या सिख आयें, वे अपने साथ कम-से-कम एक-एक मुसलमान लेते आयें? गांधीजी के लिए यह भाई-चारे का एक ठोस उदाहरण होगा।

लेकिन मदनलाल, गोडसे तथा उनके सिद्धांतों के संयोजकों जैसे हिंदू प्रार्थना में मुसलमानों की उपस्थिति और कुरान की आयतों के पाठ से कुपित हो उठे थे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी आशा जान पड़ती थी कि हिंसात्मक ढंग से भारत को फिर से जोड़ने की दिशा में गांधीजी की मृत्यु पहला कदम होगी। वे चाहते थे कि गांधीजी को अपने बीच से हटाकर मुसलमानों को अरक्षित कर दें। उन्होंने यह नहीं समझा कि गांधाजी की हत्या से देश के सामने यह प्रकट हो जायगा कि मुसलमानों के कट्टर विरोधी कितने खतरनाक और अनुशासनहीन हैं और इस प्रकार उस हत्या का उलटा ही प्रभाव पड़ेगा।

उपवास के बाद तनाव में कमी होने के बावजूद गांधीजी उन महान कठिना-इयों को जानते थे, जो नई अनुभवहीन सरकार के सामने आ रही थीं। कांग्रेस की क्षमता में उनका विश्वास जाता रहा था। अब तो बहुत-कुछ चोटी के दो

नेताओं पर निर्भर था—प्रधान मंत्री नहरू तथा उप-प्रधान मंत्री पटेल। ये दोनों सदा एक-दूसरे से सहमत नहीं होते थे। दोनों के स्वभाव परस्पर विरोधी थे। दोनों के बीच संघर्ष हो रहा था। गांधीजी इससे परेशान थे। वास्तव में मामला यहां तक बढ़ गया था कि गांधीजी को आशंका हाने लगी कि नेहरू और पटेल सरकार में साथ-साथ काम कर सकेंगे या नहीं। यदि दोनों में से एक को पसंद करने की नौबत आती, तो गांधीजी शायद नेहरू को पसंद करते। पटेल को वह एक पुराने मित्र तथा कुशल प्रशासक के रूप में अच्छा समझते थे, परंतु नेहरू को वह प्यार करते थे और उन्हें भरोसा था कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के प्रति नेहरू का समभाव है। पटेल पर हिंदुओं के प्रति पक्षपात का संदेह किया जाता था।

अंत में गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि नहरू तथा पटल दोनों एक-दूसरे के लि ए अपरिहार्य हैं। दोनों में से एक के बिना सरकार बिल्कुल कमजोर हो जायगी। इसलिए गांधीजी ने नेहरू को अंग्रेजी में एक पर्चा भेजा, जिसमें लिखा था कि उन्हें तथा पटेल को देश के हित में "साथ बने रहना चाहिए।" ३० जनवरी को शाम के ४ बजे पटेल बिड़ला भवन में गांधीजी से मिलने और यही संदेश सुनने आये थे।

५ बजकर ५ मिनट पर गांधीजी प्रार्थना में देर होने से बेचैन हो गये और उन्होंने पटेल को बिदा किया। आभा और मनु के कंधों पर हाथ रखकर वह जल्दी-जल्दी प्रार्थना-स्थल की ओर चल दिये। ज्योंही प्रार्थना-स्थल पर आये, नाथूराम गोडसे क ह भीड़ का हटाता हुआ आगे आया और ऐसा जान पड़ा कि वह झुककर गांधीजी का प्रणाम करेगा। उसका हाथ जेब में रखी हुई पिस्तौल को पकड़े हुए था।

गोडसे के नमस्कार को तथा उपस्थित व्यक्तियों के आदर-सूचक अभिवादन को स्वीकार करते हुए गांधीजा ने हाथ जोड़ लिये और मुस्कराते हुए सबको आशीर्वाद दिया। इसी क्षण गोडसे ने पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। गांधीजी गिर पड़े और उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उनके मुंह से अंतिम शब्द निकले—"हे राम!"

●

इस पुस्तक में

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार ने महात्मा गांधी का बड़े ही सजीव एवं सुंदर ढंग से जीवन-परिचय दिया है। गांधीजी का जीवन भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम से इतना जुड़ा हुआ था कि यह कहानी एक प्रकार से आजादी की लड़ाई का इतिहास बन गई है। इतना ही नहीं गांधीजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर भी इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। एक विदेशी द्वारा गांधीजी का यह मूल्यांकन अपना विशेष महत्व रखता है।

इस माला में

चुनी हुई लोकोपयोगी पुस्तकें सस्ते-से-सस्ते मूल्य में दी जा रही हैं। डेढ़ सौ पृष्ठ तक की पुस्तक का मूल्य बारह आने, ढाई सौ तक की का डेढ़ रुपया और साढ़े तीन सौ तक की का ढाई रुपये होगा। फिर भी इनमें अधिक मूल्यवाली बड़ी पुस्तकों से सामग्री में किसी प्रकार की कमी न होगी। प्रति वर्ष बारह पुस्तकें निकालने का विचार है।